Impact Factor : 7.834

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा पटियाला, श्रीगंगानगर व नेपाल से प्रसारित
साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध का अंतर्राष्ट्रीय मासिक

ISSN : 2321-8037
July-August 2025
Volume 13, Issue 7-8

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Editor :
Dr. Rekha Soni

Chief-Editor :
Dr. Naresh Sihag Adv.

संस्थापक सम्पादिका :
स्मृति शेष
डॉ. विश्वकीर्ति

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

www.ginajournal.com

संस्थापक संरक्षक :
स्मृति शेष
श्री हरविन्द्र कमल चौधरी

वर्ष : 13 | अंक : 7 – 8 | जुलाई – अगस्त : 2025 | आईएसएसएन : 2321 – 8037

सम्पादक :
डॉ. रेखा सोनी
शिक्षा विभाग, टांटिया वि.वि.,
श्रीगंगानगर – 335001 (राज.)

प्रधान सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
सचिव, गीना देवी शोध संस्थान,
भिवानी (हरियाणा)

मार्गदर्शन :
डॉ. राजेन्द्र गोदारा
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. लक्ष्मी जोशी
त्रिभुवन वि.वि. काठमाण्डू।

डॉ. सृष्टि चौधरी
लेक्चरर, इलेक्ट्रानिक्स
एंड कम्युनिकेशन,
सरकारी पॉलिटेक्निक कॉलेज फॉर
गर्ल्स, पटियाला, पंजाब।

श्री श्रेष्ठ चौधरी,
सीनियर मैनेजर,
स्टेट बैंक ऑफ इंडिया,
साहिबजादा अजित सिंह नगर,
मोहाली, पंजाब।

कानूनी सलाहकार :
डॉ. रामफल दलाल एडवोकेट,
श्रीमती रूपिन्द्र कौर, एडवोकेट

सलाहाकार समिति (Advisory Committee)

डॉ. सुलक्षणा अहलावत
अंग्रेजी प्रवक्ता, शिक्षा विभाग
नूंह (हरियाणा)

डॉ. अरूणा अंचल
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,
रोहतक (हरियाणा)

डॉ. सुशीला
चौधरी बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी।

डॉ. अल्पना शर्मा
आईएएसई विश्वविद्यालय सरदारशहर

डॉ. विजय महादेव गाडे
बाबा साहेब चितले महाविद्यालय
भिलवडी (महाराष्ट्र)

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कॉलेज
धारवाड़ (कर्नाटक)

डॉ. रीना कुमारी
दशमेश गर्ल्स कॉलेज,
अल्ला बक्श, मुकेरिया, पंजाब।

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

श्री हेमराज न्यौपाने
नेपाल।

डॉ. ममता तनेजा
अबोहर, पंजाब।

डॉ. प्रियंका खंडेलवाल
बराण, राजस्थान।

डॉ. संदीप
ओम विश्वविद्यालय, हिसार।

प्रो. मधुबाला
राजकीय महिला महाविद्यालय, हिसार।

डॉ. पीयूष कुमार द्विवेदी
जगद्गुरू रामभद्राचार्य दिव्यांग
विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उत्तरप्रदेश

डॉ. हवासिंह ढाका
राजकीय महाविद्यालय, हिन्दुमलकोट,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत प्रवक्ता, शिक्षा विभाग हरियाणा

डॉ. राजेश शर्मा
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मोहिनी दहिया
माती जीतोजी कन्या महाविद्यालय,
सूरतगढ़ (राजस्थान)

डॉ. मुद्दस्सिर अहमद भट्ट
हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर, कश्मीर

डॉ. सीहेच वी. महालक्ष्मी
सीहेच एसडीएसटी थेरेसा महिला
महाविद्यालय, एलुरू, आंध्र प्रदेश

डॉ. मोरवे रोशन के.
यूनाईटिड किंगडम।

डॉ. अनुपमा, पूर्व प्रोफेसर,
अंकारा विश्वविधालय, अंकारा, टर्की

डॉ. आर.के विश्वास
अध्यक्ष होम्योपैथिक, टांटिया, वि.वि.

प्रकाशक, स्वामी एवं मुद्रक डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, पुराना बस स्टैण्ड रोड़, नया बाजार, भिवानी से छपवाकर 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से जारी किया।

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

(Journal of Literature, Arts, Science, Commerece, Culture, Humanities and Social Sciences)

सचिव :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,

भिवानी-127021 (हरियाणा)

Email : grngobwn@gmail.com

मो. 09466532152

संगम मासिक पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं/लेखों की मौलिकता का दायित्त्व स्वयं रचनाकारों/लेखकों का है। उससे सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं। किसी भी प्रकार का विवाद होने पर न्यायक्षेत्र केवल भिवानी (हरियाणा) होगा। सम्पादन और प्रबंधन के सभी पद पूर्ण रूप से अवैतनिक हैं।

Published by :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board,

Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA

Email : grsbohal@gmail.com

Facebook.com/bohalshodhmanjusha

Website : www.bohalsm.blogspot.com

WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1300/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

Impact Factor : 7.834

ISSN : 2321-8037

Gina Shodh SANGAM

Peer Reviewed & Refereed Research Journal

International Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

तालिका– 2

शैक्षणिक / शोध अंक की गणना हेतु विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के शिक्षकों के लिए कार्यप्रणाली

(आकलन शिक्षकों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए, जैसेः प्रकाशनों की प्रति, परियोजना स्वीकृति पत्र, विश्वविद्यालय द्वारा जारी उपयोग तथा पूर्णता प्रमाण पत्र, पेटेंट दर्ज कराने संबंधी अभिस्वीकृति और स्वीकृति पत्र, विद्यार्थियों को पीएचडी उपाधि प्रदान किए जाने संबंधी पत्र इत्यादि।)

क्रम सं.	शैक्षणिक / शोध क्रियाकलाप	विज्ञान / अभियांत्रिकी / कृषि / चिकित्सा / पशु–चिकित्सा विज्ञान संकाय	भाषा / मानविकी / कला / सामाजिक विज्ञान / पुस्तकालय / शिक्षा / शारीरिक शिक्षा / वाणिज्य / प्रबंधन तथा अन्य संबंधित विधाएं
1	समकक्ष व्यक्ति समीक्षित अथवा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सूचीबद्ध पत्रों में शोध पत्र	08 प्रति पत्र	10 प्रति पत्र
2	प्रकाशन (शोध पत्रों के अतिरिक्त)		
	(क) लिखी गई पुस्तकें, जिन्हें निम्नवत के द्वारा प्रकाशित किया गया :		
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक	12	12
	राष्ट्रीय प्रकाशक	10	10
	संपादित पुस्तक में अध्याय	05	05
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	10	10
	राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	08	08
	(ख) योग्य संकाय द्वारा भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनुवाद कार्य		
	अध्याय अथवा शोध पत्र	03	03
	पुस्तक	08	08
3	आईसीटी के माध्यम से शिक्षण ज्ञान– अर्जन, शिक्षण शास्त्र और विषयवस्तु का सृजन तथा नए और नवोन्मेषी पाठ्यक्रमों और पाठ्यचर्या का विकास		
	(क) नवोन्मेषी अध्यापन का विकास	05	05
	(ख) नई पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रमों को तैयार करना	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

www.bohalsm.blogspot.com grsbohal@gmail.com 8708822674 9466532152

अनुक्रमाणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. रेखा सोनी	07–08
2.	भक्ति काल के साहित्य में दार्शनिक विमर्श : आत्मा, ईश्वर और सांसारिकता के बीच संघर्ष	डॉ यशवन्त यादव	09–16
3.	**Women in Power : Trends and Patterns in Panchayati Raj Participation in Jhansi District**	**Pro. V. K. Rai Deepika Singh**	**17-24**
4.	भारतीय समाज में सामाजिक वर्गों और जातियों का पदानुक्रम : ऐतिहासिक एवं समकालीन परिप्रेक्ष्य	सुनीता जैन	25–27
5.	हिंदी साहित्य में समकालीन लेखन : एक समग्र अध्ययन	मिनाक्षी	28–30
6.	**COP 29 ANALYSIS**	**Nena Ram Prajapat**	**31-35**
7.	भारतीयदर्शनशास्त्रेषु समवायस्वरूपम्	एकलव्यः	36–41
8.	गोस्वामी तुलसीदासजी की लोक मंगल भक्ति	रामुराम	42–46
9.	छत्तीसगढ़ भू-राजस्व संहिता में किए गए प्रमुख संशोधनों का अध्ययन	रत्ना श्रीवास्तव	47–49
10.	**From Idealism to Irony : Agastya Sen's Disillusionment in Upamanyu Chatterjee's *The Mammaries of the Welfare State***	**Anurag Dahiya**	**50-54**
11.	**Sanskaras as a Life-Education Framework: Integrating Ancient Rituals into Modern Holistic Learning**	**Dr. Beena Sharma**	**55-61**
12.	**Status of Inclusive Education in Haryana : A District-Level Empirical Study in Hisar and Bhiwani Districts.**	**Sheel Kumar, Dr. Satyanarain Nai**	**62-83**
13.	**Urban Ecology and Wildlife Coservation**	**SANTOSH KUMARI**	**84-91**
14.	राजस्थान का भूगोल : प्राकृतिक विविधता और भौगोलिक विशेषताएँ	**Chhavinder Singh / Sukhmahender Singh**	**92-96**
15.	**Dr. Ram Manohar Lohia : A Brief Profile**	**BASANT PANDIT**	**97-103**
16.	**Changing Family Structure and Globalization : A Sociological Study of Tharu Tribe (In Context to Khatima Tehsil of U.S. Nagar District)**	**Dr. Anchalesh Kumar**	**104-111**

17.	नासिरा शर्मा की कहानियाँ : मुस्लिम महिलाओं की त्रासदी की गाथा	प्रो.(डॉ.) विजयकुमार राऊत	112–115
18.	"एक और द्रोण" : समसामयिक शिक्षा व्यवस्था में नैतिक पतन की पड़ताल	डॉ. नरेश कुमार सिहाग	116–118
19.	पीलीबंगा तहसील का भौगोलिक अध्ययन (हनुमानगढ़ जिले के विशेष संदर्भ में) Geographical Study of Pilibanga Tehsil (With Special Reference to Hanumangarh District)	KALPNA	119-124
20.	अटल जी की कविताओं में प्रकृति चित्रण	रेणुका कस्तुरे (पोफली) डॉ. पुष्पा दुबे	125–132
21.	मीरा काव्य में नारी चेतना के स्वर की गूंज	समणी मंजुलप्रज्ञा	133–143
22.	'दिल्ली ऊँचा सुनती है' नाटक में व्यक्त सामाजिक सरोकार	डॉ. प्रकाश मधुकर अठावले	144–149
23.	सच से सामना : डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट की नज़्म 'कभी आना मेरे पास..' का आत्मालोचनात्मक विमर्श	डॉ. सुमन कुमारी	150–152
24.	Implementation of Digital Water Marking with Genetic Algorithm	Dr. S. Radharani	153-159
25.	डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट की कविताओं में पर्यावरण, लोक संस्कृति और संवेदनात्मक चेतना : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ. वनिता कुमारी	160–163
26.	'Holding the Pass': World Literature and J.M. Coetzee's Negotiations with the 'Consecrated' Center	Anas Tabraiz	164-173
27.	नासिरा शर्मा के कथा साहित्य का विवेचन	सुशीला कुलरिया	174–178
28.	लोक संस्कृति में राम	हर्षुल रघुवंशी, डॉ. वर्षा खुराना	179–182
29.	The Swadeshi Movement's Pioneering Spirit Before Gandhi's Era	Abhijna	183-186
30.	रवीन्द्रनाथ टैगोर का शैक्षणिक दर्शन और उसकी वर्तमान प्रासंगिकता	आरती यादव	187–191
31.	युवाओं द्वारा बुजुर्गों के प्रति बदलता दृष्टिकोण : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन	डॉ. चन्द्रशेखर सिंह	192–199
32.	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताओं में निहित व्यंग्य	भक्ति कुमारी	200–205
33.	मृदुला गर्ग की कहानियों में नारी विमर्श	मीर जाहिदुल इसलाम	206–209
34.	डॉ. राजेश कुमार व्यास के यात्रा संस्मरणों में संस्कृति	जगदीश सिंह रावत	210–216

सम्पादक की कलम से.....

साहित्य और समाज : समय के संग संवाद

वर्तमान दौर में जब समाज बहुआयामी संकटों और संभावनाओं के द्वंद्व में फंसा हुआ है, साहित्य की भूमिका और भी अधिक प्रासंगिक हो जाती है। साहित्य केवल कल्पनाओं का ताना–बाना नहीं है, यह समाज की आत्मा का आईना है। 'गीना शोध संगम' के जुलाई–अगस्त अंक में हम इसी आत्मा की पड़ताल करने का विनम्र प्रयास कर रहे हैं – एक ऐसे विमर्श की ओर जो न केवल ज्ञानवर्धक हो, बल्कि संवेदनाओं को भी स्पर्श करे।

यह अंक साहित्य, समाज और संस्कृति की त्रिवेणी में डुबकी लगाने का आमंत्रण है, जहां विचार, संवेदना और विवेक के साथ विभिन्न लेखकों ने समसामयिक विषयों की पड़ताल की है। आज जब तकनीक ने सूचनाओं को तेजी से फैलाना शुरू कर दिया है, तब यह जरूरी हो गया है कि हम इस प्रवाह में मूल्य, मर्यादा और मौलिकता को बनाए रखें। गीना शोध संगम का यह विशेषांक उसी प्रयोजन की एक कड़ी है – जहाँ शोध, समीक्षा और सृजन के तीनों स्तरों को संतुलित दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है।

साहित्य : समय की चेतना :–

साहित्य महज अक्षरों का संकलन नहीं, बल्कि एक कालबद्ध चेतना है जो युगों को पार कर संवेदना की मशाल थामे चलती है। कबीर, तुलसी, मीरा से लेकर प्रेमचंद, अज्ञेय, नागार्जुन और समकालीन कवियों तक हर युग में साहित्य ने न केवल सामाजिक विसंगतियों को रेखांकित किया, बल्कि वैकल्पिक सोच को जन्म भी दिया। इस अंक में प्रकाशित शोध आलेखों और समीक्षाओं में यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि साहित्य आज भी मनुष्य को मनुष्यता की ओर लौटने का आमंत्रण देता है।

शोध की दृष्टि से सृजन की गहराई :–

पत्रिका के इस अंक में शामिल शोधार्थियों और लेखकों ने भारतीय साहित्य के विविध पक्षों – जैसे दलित विमर्श, नारी चेतना, ग्रामीण यथार्थ, शिक्षण में साहित्य की भूमिका, और वैश्विक साहित्य में भारतीयता पर अत्यंत गंभीर और संतुलित विवेचन किया है। उनकी यह विशेषता रही कि उन्होंने न केवल सैद्धांतिक विमर्श किया, बल्कि व्यावहारिक पहलुओं को भी सामने रखा। यह शोध न केवल विद्वानों के लिए उपयोगी हैं, बल्कि विद्यार्थियों और सामान्य पाठकों को भी दिशा देने में सक्षम हैं।

समाज और साहित्य : एक अविभाज्य रिश्ता :–

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि साहित्य समाज से कटकर जीवित नहीं रह सकता और न ही समाज साहित्य से विमुख होकर अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ा रह सकता है। इस पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ इस तथ्य की पुष्टि करती हैं। चाहे वह ग्रामीण परिवेश की समस्याओं पर आधारित लघु कथाएँ हों या स्त्री–विमर्श पर केंद्रित आलोचनात्मक लेख, सभी में यह अनुभव किया जा सकता है कि साहित्यकार अपने समय की नब्ज को पहचान रहा है।

युवा कलम और नवोन्मेष :–

हमें यह कहते हुए गर्व हो रहा है कि इस अंक में अनेक नवोदित लेखकों और शोधकर्ताओं की रचनाएँ भी शामिल की गई हैं। युवा पीढ़ी की यह कलम नई दृष्टि, नई संवेदना और नवीन सोच के साथ उभर रही

है। इनकी रचनाओं में आधुनिक जीवन की उलझनें, तकनीकी युग की जटिलताएँ और सामाजिक संरचनाओं की टूटन साफ दिखाई देती है। यह इस बात का संकेत है कि आने वाला समय साहित्यिक दृष्टि से और भी समृद्ध और सजग होगा।

शोध, सृजन और संवाद : तीन ध्रुवों की एकता :-

'गीना शोध संगम' का यह अंक केवल एक साहित्यिक संकलन नहीं, बल्कि एक संवाद है – शोध और सृजन के मध्य। यह संवाद न केवल पाठक और लेखक के बीच होता है, बल्कि समाज और विचार के मध्य भी एक सेतु का कार्य करता है। इस अंक की विशेषता यह भी है कि इसमें रचनात्मक साहित्य के साथ–साथ विश्लेषणात्मक और आलोचनात्मक दृष्टिकोण को भी समान महत्व दिया गया है।

सतत् यात्रा की एक और कड़ी :-

हर अंक हमारे लिए एक नए पड़ाव की तरह होता है। नयी चिंताओं, नए विमर्शों और नए उत्तरदायित्वों से भरपूर। यह अंक भी इसी क्रम की एक कड़ी है। हम यह स्वीकारते हैं कि साहित्यिक और शोध क्षेत्र की यह यात्रा कभी पूर्ण नहीं होती। यह एक सतत प्रयास है – समाज, शिक्षा, संस्कृति और चिंतन के बीच संतुलन स्थापित करने का।

अंत में, हम गीना शोध संगम के सभी लेखकों, शोधार्थियों, संपादन सहयोगियों और पाठकों का आभार प्रकट करते हैं, जिनकी सहभागिता इस अंक को समृद्ध बनाती है। हम आशा करते हैं कि यह अंक आपको न केवल विचारों में नवीनता देगा, बल्कि आपको आपके सामाजिक सरोकारों के प्रति भी और अधिक सजग करेगा।

साहित्य–संधान–संवाद की यह परंपरा यों ही चलती रहे। – इसी मंगलकामना के साथ...

संपादक

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 09-16

भक्ति काल के साहित्य में दार्शनिक विमर्श : आत्मा, ईश्वर और सांसारिकता के बीच संघर्ष

डॉ यशवन्त यादव
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग,
दीनदयाल उपाध्याय राजकीय महाविद्यालय, सैदाबाद प्रयागराज, उ. प्र.

प्रस्तावना :-

भारतीय साहित्यिक परंपरा में भक्ति काल एक ऐसा युग रहा है, जहाँ कविता मात्र सौंदर्य–बोध की अभिव्यक्ति नहीं रही, अपितु वह अध्यात्म, दर्शन और लोकचेतना की त्रिवेणी बन गई। इस युग में रचित साहित्य धर्म, आस्था और आत्मा के पारस्परिक संबंधों की गहराई को न केवल उजागर करता है, बल्कि वह मानवीय अस्तित्व की उन जटिलताओं का भी चित्रण करता है, जो आत्मा, ईश्वर और संसार के त्रिकोणीय संघर्ष से उपजती हैं। भक्ति कालीन कवियों ने अपने काव्य में आत्मा की व्याकुलता, ईश्वर की खोज, और सांसारिक बंधनों की बाधा को एक साथ प्रस्तुत किया है। एक ओर जहाँ कबीर कहते हैं, "**जिन खोजा तिन पाइयाँ,**" वहीं दूसरी ओर तुलसीदास जैसे कवि लोकधर्म और भाग्य की सीमाओं को स्वीकारते हुए ईश्वर भक्ति के माध्यम से मुक्ति का मार्ग दिखाते हैं। मीरा, सूर, रैदास, दादू, नामदेव, और अन्य संतों का साहित्य आत्मा और ईश्वर के मिलन की प्रतीक्षा, माया की छलनाओं, और सांसारिक पीड़ाओं से मुक्त होने की गहन चेष्टा का दार्शनिक साक्ष्य है। यह शोध–पत्र इसी विमर्श को केंद्र में रखकर रचित है कि किस प्रकार भक्ति साहित्य में दर्शन का एक सजीव, संवेदनशील, और आत्म–केन्द्रित रूप मिलता है। इसमें हम यह विश्लेषण करने का प्रयास करेंगे कि आत्मा किस रूप में इस साहित्य में उपस्थित है, ईश्वर का क्या स्वरूप प्रस्तुत किया गया है, और सांसारिकता को किस प्रकार बाधा, बंधन या भ्रम के रूप में चित्रित किया गया है। साथ ही यह भी देखा जाएगा कि यह संघर्ष केवल सैद्धांतिक नहीं है, बल्कि वह अनुभवजन्य, लोकबोध से युक्त और मनुष्य की आत्मिक यात्रा का प्रतीक है।

परिचय :-

भक्ति काल भारतीय साहित्य के इतिहास में एक ऐसा युग है जिसने कविता, दर्शन, धर्म और समाज को एक साथ जोड़ने का प्रयास किया। यह काल न केवल काव्य सौंदर्य का युग रहा, अपितु यह आत्मा, ईश्वर और सांसारिक बंधनों के बीच चलने वाले संघर्ष का वह आयाम भी रहा, जहाँ व्यक्ति मात्र एक सामाजिक प्राणी न रहकर एक आध्यात्मिक साधक के रूप में उभरता है। यह समय धर्मशास्त्रों से परे जाकर व्यक्तिगत अनुभवों के माध्यम से ईश्वर की खोज और आत्मा की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।

भक्ति आंदोलन का उद्भव और दार्शनिक प्रवृत्ति :-

13वीं शताब्दी से 17वीं शताब्दी तक फैला भक्ति आंदोलन भारतवर्ष में सामाजिक, धार्मिक और दार्शनिक चेतना का एक महान प्रवाह था। यह प्रवाह पांडित्यवादी कर्मकांड और ब्राह्मणवादी वर्चस्व के विरुद्ध एक जन–आंदोलन के रूप में विकसित हुआ। इसके मूल में आत्मा और ईश्वर के बीच एक सीधा संवाद स्थापित करने की आकांक्षा थी, जिसमें किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं थी। यही वह बिंदु था जहाँ से दर्शन और भक्ति एक साथ जुड़े। दार्शनिक दृष्टि से यह काल आत्मा और ईश्वर के संबंध की पुनर्परिभाषा का काल था। उपनिषदों में वर्णित अद्वैतवाद, भगवद्गीता में वर्णित निष्काम कर्मयोग और भक्तियोग, तथा वेदांत दर्शन की अवधारणाओं का लोकप्रेमी और अनुभूतिपरक स्वरूप इसी काल में प्रकट होता है।

आत्मा का स्वरूप : भक्ति साहित्य की अंतश्चेतना :-

भक्ति कालीन साहित्य आत्मा को एक स्वतंत्र सत्ता के रूप में स्वीकार करता है जो संसार के जाल में उलझी हुई है और ईश्वर से मिलन की आतुरता से भरपूर है। आत्मा की यह स्थिति वैराग्य और विवेक के उस शिखर की ओर इंगित करती है, जहाँ से वह माया और मोह को पहचानकर उनसे विमुख होने लगती है। कबीर के शब्दों में आत्मा का यह स्वरूप अत्यंत स्पष्ट है :–

'साई के संग लागी, अब और कहाँ मन डोलै।
चेतन चितवा जागे, माया कहाँ न मोहे।'

यहाँ आत्मा चेतन है, जो माया के बंधनों को समझ चुकी है और ईश्वर की ओर उन्मुख हो गई है। यह आत्मा अब किसी मध्यस्थता को स्वीकार नहीं करती, बल्कि वह सीधे ईश्वर से मिलन की आकांक्षा रखती है।

ईश्वर का स्वरूप : निर्गुण और सगुण विमर्श :-

भक्ति साहित्य में ईश्वर का स्वरूप दो धाराओं में विभाजित होता है – निर्गुण और सगुण।

निर्गुण भक्ति में ईश्वर को निराकार, अजन्मा, अकल्पनीय, सर्वत्र व्यापक और आत्मा के अत्यंत समीप स्वीकार किया गया। कबीर, रैदास, दादू जैसे संतों ने ऐसे ईश्वर की आराधना की जो मन्दिर, मूर्ति या कर्मकांड में सीमित नहीं है। ईश्वर एक ऐसी सत्ता है, जो भीतर निवास करती है और आत्मा को उसके माध्यम से मुक्त किया जा सकता है।

'जहाँ खोजे तहँ तु नाहिं,
मन ही माहिं तेरा थाँव।' -कबीर

सगुण भक्ति में ईश्वर को मानवीय रूपों में चित्रित किया गया– राम, कृष्ण, विष्णु जैसे अवतारों के रूप में। तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई आदि कवियों ने ईश्वर को प्रेमास्पद, सखा, नायक, या पति के रूप में अनुभव किया। इस धारा में आत्मा का संघर्ष सांसारिक प्रेम के माध्यम से ईश्वर–प्राप्ति की ओर होता है।

'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जा के सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।।' -मीराबाई

यहाँ भक्ति एक भावातीत दार्शनिक चिंतन नहीं, बल्कि अनुभूति का विषय बन जाती है। ईश्वर अब कोई दार्शनिक अवधारणा नहीं, बल्कि जीवन में व्याप्त एक जीवंत अनुभव है।

सांसारिकता : माया का जाल या साधन?

भक्ति साहित्य में संसार को सामान्यतः एक बंधन, एक भ्रम या एक आवरण के रूप में चित्रित किया गया है, जो आत्मा और ईश्वर के मिलन में बाधा उत्पन्न करता है। इसे माया कहा गया, जो अनित्य, अस्थायी और दुख का कारण है।

'माया महाठगिनी हम जानी।
तिरगुन फाँस लिए कर डोले, कहे कबीर दीवानी।।'

संसार यहाँ केवल भौतिक वस्तुओं या परिवार तक सीमित नहीं है, बल्कि वह प्रत्येक वह तत्व है जो आत्मा को उसके लक्ष्य से विचलित करता है। इसी कारण भक्ति मार्ग में त्याग, वैराग्य और साधना को महत्व दिया गया।

किन्तु यह भी उल्लेखनीय है कि सभी भक्ति कवियों ने संसार को पूरी तरह नकारा नहीं। तुलसीदास ने रामराज्य के आदर्श के माध्यम से एक नैतिक संसार की कल्पना की, जहाँ धर्म, भक्ति और समाज की समरसता से मुक्ति का मार्ग तैयार होता है।

भक्ति और दर्शन का अद्वैत :-

भक्ति काल का साहित्य दर्शन के अद्वैत सिद्धांत को एक लोकाभिमुख और भावनात्मक धरातल पर प्रस्तुत करता है। अद्वैत जहाँ आत्मा और ब्रह्म को एक मानता है, वहीं भक्ति साहित्य इस अद्वैत को 'प्रेम द्वैत' के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें आत्मा और ईश्वर अलग होते हुए भी प्रेम के द्वारा एक हो जाते हैं।

संत रैदास कहते हैं :–

'प्रेम पंथ ऐसो गहनो, सन्त न आवे गहि।
जिन्ह गहि लियो राम, ते निज घरे चलि गहि।'

यहाँ प्रेम और भक्ति के माध्यम से आत्मा अपने मूल स्थान (ईश्वर) में लौट जाती है। यह दर्शन उपनिषदों की उस वाणी का विस्तार है– **'अहं ब्रह्मास्मि'** लेकिन भक्ति में यह वाणी भावुक और आत्मीय हो जाती है।

शोध प्रविधि :-

प्रस्तुत शोध–पत्र, 'भक्ति काल के साहित्य में दार्शनिक विमर्श : आत्मा, ईश्वर और सांसारिकता के बीच संघर्ष', विश्लेषणात्मक, तुलनात्मक तथा दार्शनिक दृष्टिकोण आधारित शोध प्रविधियों पर आधारित है। इसमें भक्ति साहित्य के प्रमुख कवियों की काव्य–रचनाओं और उनके भावार्थों का दार्शनिक मूल्यांकन करते हुए आत्मा, ईश्वर और संसार के मध्य व्याप्त संघर्ष की व्याख्या की गई है।

दार्शनिक विमर्श का स्वरूप :-

भक्ति काल का साहित्य केवल धार्मिक उपदेशों या आस्थावादी भावनाओं का संकलन नहीं है, बल्कि यह उस गहन दार्शनिक संघर्ष का साहित्य है जिसमें आत्मा, ईश्वर और संसार तीनों तत्व एक साथ उपस्थित होकर मनुष्य के आंतरिक जीवन को दिशा देते हैं। यह त्रिकोण केवल वैचारिक नहीं, बल्कि अनुभूतिपरक और आत्मस्वरूप में अनुभूत सत्य है। प्रस्तुत खंड में इन तीनों तत्वों का स्वतंत्र और पारस्परिक रूप से विश्लेषण किया गया है।

1. आत्मा : चेतना का केंद्रबिंदु :-

भारतीय दार्शनिक परंपरा में आत्मा को नित्य, अविनाशी, शुद्ध और परम सत्ता के अंश के रूप में स्वीकार किया गया है। भक्ति साहित्य भी इस अवधारणा को स्वीकार करता है, किंतु वह आत्मा को केवल दार्शनिक संज्ञा नहीं, बल्कि एक अनुभवशील इकाई के रूप में प्रस्तुत करता है, जो भटकती है, पीड़ित होती है, और ईश्वर की खोज में व्याकुल रहती है।

कबीर के अनुसार :–

'मन तू पावन क्यों भया, क्यों नहीं हरि सिमरन कीन्हा।
तनु तजा, धनु गया, पाछे पछतायें दीन्हा।।' **(कबीर ग्रंथावली)**

यहाँ आत्मा की उस विवशता का चित्रण है, जो भौतिक मोह में पड़कर अपने असली स्वरूप को विस्मृत कर बैठी है। वह चेतना जो ईश्वर के साक्षात्कार के लिए जन्मी थी, वह संसार की छलनाओं में उलझ जाती है। मीरा के पदों में आत्मा की पुकार स्पष्ट दिखती है :–

'मैं तो सांवरे के रंग राची,
और रंग न भावै।'

यहाँ आत्मा किसी अन्य रंग (संसार) में रचने को तैयार नहीं, वह केवल ईश्वर की अनुभूति में रमण करना चाहती है। आत्मा यहाँ पूर्णतः स्वतः–साक्षी बन जाती है।

2. ईश्वर : भक्ति का ध्रुव केंद्र

भक्ति साहित्य में ईश्वर कोई दूर बैठी ब्रह्म सत्ता नहीं, बल्कि एक जीवंत, संवेदनशील, साक्षात अनुभव योग्य उपस्थिति है। वह कभी राम हैं, कभी कृष्ण, कभी 'साईं', और कभी निराकार 'सतपुरुष'। ईश्वर का स्वरूप भले ही सगुण या निर्गुण हो, उसकी उपस्थिति आत्मा के लिए परम लक्ष्य है। तुलसीदास ईश्वर को नाम, रूप और गुणों से युक्त स्वीकारते हैं :–

'राम नाम नरके द्वारू, हरत हि सुमिरत पावन पावू।'

यहाँ ईश्वर केवल ज्ञान का विषय नहीं, अपितु मोक्ष का उपाय बन जाता है। भक्ति का दार्शनिक पहलू यह है कि ईश्वर को केवल विचारों से नहीं, प्रेम, समर्पण और साधना से प्राप्त किया जा सकता है। कबीर के लिए ईश्वर निर्गुण हैं :–

'साहिब मेरा निर्गुण राजा, सगुण भयो सो आय।
निर्गुण सगुण निचावरि जाऊँ, तातें रह्यो समाय।।'

यहाँ दार्शनिक द्वैत और अद्वैत का समन्वय है। ईश्वर निर्गुण होकर भी सगुण हो सकते हैं, और वही आध्यात्मिक रहस्य भक्ति के हृदय में छिपा है।

3. माया और संसार : आत्मा की परीक्षा भूमि :-

भक्ति साहित्य में संसार और माया को आत्मा के लिए बाधा के रूप में देखा गया है। माया, या सांसारिक आकर्षण, आत्मा को ईश्वर से दूर रखने का कार्य करती है। यह आकर्षण कभी रूप में, कभी धन में, कभी मान में और कभी मोह में प्रकट होता है। कबीर लिखते हैं :–

'माया महाठगिनी हम जानी।

तिरगुन फाँस लिए कर डोले, कहे कबीर दीवानी।।'

यहाँ माया त्रिगुणात्मक – सत्व, रज, तमकृकी शक्ति से युक्त एक छायाजाल है, जो आत्मा को संसार में बाँध लेती है। संत रैदास इसे 'पानी में बसे कमल' की उपमा से समझाते हैं– जैसे कमल पानी में रहकर भी उससे अछूता रहता है, वैसे ही आत्मा को संसार में रहते हुए भी माया से अप्रभावित रहना चाहिए।

4. आत्मा-ईश्वर-संसार का त्रिकोणीय संघर्ष :-

यह संघर्ष केवल विचारों का नहीं, बल्कि अनुभूतियों और स्थितियों का संघर्ष है। आत्मा, ईश्वर से मिलन की आकांक्षा रखती है, किंतु माया उसे विचलित करती है। आत्मा को एक ओर संसार खींचता है– कुटुंब, कर्तव्य, इच्छाएँ– दूसरी ओर ईश्वर की ओर उसका अंतर्मन बुलाता है। इसी संघर्ष से भक्ति उत्पन्न होती है। यह संघर्ष एक सूक्ष्म और निजी यात्रा है– एक अंतर्यात्रा– जिसे मीरा अपने पदों में अत्यंत सुंदरता से प्रकट करती हैं :–

'सुन री सखी, मैनें तो हरि लिव लायी।
जग बौराना, मैं अनबोली, मेरी प्रीत पुरानी।।'

यहाँ आत्मा (मीरा) संसार (जग) के बीच रहते हुए भी केवल ईश्वर की ओर उन्मुख है। वह संसार को नकारती नहीं, पर उसे अपने लिए निर्णायक नहीं मानती।

सगुण और निर्गुण भक्ति में दार्शनिक भिन्नताएँ :-

भक्ति आंदोलन का सबसे विशिष्ट और दार्शनिक रूप यह रहा कि इसमें ईश्वर को दो रूपों में स्वीकार किया गया– सगुण (साकार) और निर्गुण (निराकार)। इन दोनों धाराओं के अनुयायियों ने भले ही भक्ति को माध्यम बनाया हो, परन्तु ईश्वर, आत्मा और संसार के स्वरूपों की कल्पना में मौलिक भिन्नता दिखाई देती है। यह भिन्नता मात्र उपासना–पद्धति की नहीं थी, बल्कि दार्शनिक दृष्टिकोण की थी, जो व्यक्ति की चेतना, समाज, और आध्यात्मिक लक्ष्य को प्रभावित करती है।

1. ईश्वर का स्वरूप : सगुण में साकार, निर्गुण में निराकार :-

सगुण भक्ति में ईश्वर साकार, गुण संपन्न, और सगुण अवतार के रूप में माना गया है। राम, कृष्ण, विष्णु, शिव जैसे देवताओं की पूजा सगुण भक्त कवियों द्वारा की गई, जिनमें प्रमुख हैं – तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई आदि। ईश्वर को प्रेम, करुणा, न्याय, सौंदर्य, और शक्ति जैसे गुणों से युक्त माना गया।

'राम सगुण ब्रह्म कहँ जानहिं।
अविगत अगोचर वेद न मानहिं।' -तुलसीदास, विनय पत्रिका

निर्गुण भक्ति में ईश्वर को निराकार, अगोचर, निर्गुण, अजात, और व्यापक ब्रह्म के रूप में समझा गया। इस धारा में मूर्तिपूजा, मंदिर, जाति और कर्मकांड का विरोध किया गया। कबीर, रैदास, दादू आदि इसके प्रमुख कवि हैं।

'निर्गुण नाम रटे रे मेरा मन।
सगुण न भायो रे, जप-तप, पूजन।।' -कबीर

2. आत्मा और ईश्वर का संबंध :-

सगुण भक्ति में आत्मा को ईश्वर से पृथक एक जीवात्मा के रूप में माना गया है, जो उसके चरणों की सेवा, स्मरण, नाम–संकीर्तन द्वारा उसकी कृपा से मोक्ष प्राप्त कर सकती है। यहाँ दास्य, माधुर्य, सख्य, आदि भावों

के माध्यम से आत्मा का समर्पण और ईश्वर के प्रति पूर्ण शरणागति को महत्व दिया गया है।

'प्रभु प्रताप मैं जीव पावन, मो सम दीन न दुःख भाग्य।' – (तुलसीदास)

निर्गुण भक्ति आत्मा को ब्रह्म का अंश नहीं, बल्कि ब्रह्मस्वरूप ही मानती है। इस दृष्टि से आत्मा और ईश्वर में कोई मूलभूत भेद नहीं है, केवल माया के कारण जीव भटक गया है। कबीर आत्मा की इस भ्रांति को दूर कर ब्रह्म से एकरूपता की बात करते हैं।

'जीव बूँद सम समुंदर साई,
मिलि जाई एकै रंग।' –कबीर

यह अद्वैतवादी दृष्टिकोण है, जिसमें आत्मा की मुक्ति का मार्ग 'ज्ञान और अनुभव' है, न कि केवल उपासना या कृपा।

3. माया और संसार के प्रति दृष्टिकोण :–

सगुण भक्तों ने संसार को मिथ्या नहीं माना। तुलसीदास ने रामराज्य की परिकल्पना द्वारा एक धर्मनिष्ठ, कर्तव्यशील समाज की स्थापना को स्वीकार किया। माया और संसार को त्यागने के बजाय उन्होंने उसमें रहते हुए ईश्वर–भक्ति की बात की।

'भजहिं राम सगुन रहि गारी,
नारी नारायन जानि।'

निर्गुण संतों ने संसार को 'माया का जाल' माना जो आत्मा को उसके मार्ग से विचलित करता है। उन्होंने भौतिक संसार की नश्वरता और भ्रमात्मकता पर बल दिया।

'माया मोह मिटाय कै, राम नाम रटन कर।
कबीर यह संसार झूठा, साँच कहा रहिबो कर।'

निर्गुण परंपरा संसार से विरक्ति और वैराग्य का आग्रह करती है, जबकि सगुण परंपरा संसार में रहकर धर्म और भक्ति का समन्वय करती है।

4. भक्ति की विधि : साधना और अनुभव का भेद :–

सगुण भक्ति में पूजा, आरती, स्तुति, मंदिर दर्शन, कथा–श्रवण, आदि कर्मों का विशेष महत्व है। भक्ति एक धार्मिक आचार है जो भक्त और भगवान के बीच एक मधुर भावनात्मक पुल का निर्माण करता है।

निर्गुण भक्ति कर्मकांड, ब्राह्मणवाद और विधि–निषेध से मुक्त एक सीधा ईश्वर–सम्बंध चाहती है। यहाँ भक्ति ज्ञान से उत्पन्न होती है और स्वयं का आत्मसाक्षात्कार ही मुक्ति का मार्ग है।

'पढ़ि पढ़ि पंडित बाढ़े, पोथी न लगै हाथ।
कबिरा कहै, मन जानै, सोई साँचि बात।'

5. सामाजिक दृष्टिकोण :–

सगुण भक्ति अपने धार्मिक स्वरूप के कारण सामाजिक रूप से अपेक्षाकृत उदार थी परंतु वह प्रायः वर्ण व्यवस्था के विरोध में प्रत्यक्ष नहीं गई। तुलसीदास जैसे कवियों ने जाति व्यवस्था को स्थायीत्व देने वाली व्यवस्था के रूप में देखा।

निर्गुण भक्ति स्पष्ट रूप से सामाजिक अन्याय, वर्ण व्यवस्था, पाखंड और धार्मिक आडंबरों के विरोध में थी।

यह परंपरा सीधे–सीधे समानता, भाईचारे, समता और मानवतावाद पर केंद्रित थी। संत रैदास ने लिखा :

'मन चंगा तो कठौती में गंगा।'

यह पंक्ति सामाजिक शुद्धता की जगह आंतरिक शुद्धता को प्रमुख मानती है।

6. तुलनात्मक मूल्यांकन :–

विषय	सगुण भक्ति	निर्गुण भक्ति
ईश्वर	साकार, गुणसंपन्न	निराकार, सर्वव्यापक
आत्मा	ईश्वर की दासी	ब्रह्मस्वरूप
भक्ति विधि	पूजा, अर्चना, भजन	ध्यान, आत्मसाक्षात्कार
संसार	धर्मपरक, स्वीकार्य	माया, त्याज्य
दर्शन	द्वैतात्मक, शरणागतिवाद	अद्वैत, ज्ञानप्रधान
समाज	मर्यादावादी	क्रांतिकारी, समतावादी

निष्कर्ष :–

भक्ति काल का साहित्य भारतीय दर्शन, आध्यात्मिकता और मानव जीवन के आंतरिक संघर्ष का एक अद्वितीय साक्ष्य है। यह साहित्य केवल भक्त और भगवान के बीच प्रेम का साहित्य नहीं है, बल्कि आत्मा, ईश्वर और संसार के बीच चलने वाले उस सूक्ष्म लेकिन व्यापक द्वंद्व का दार्शनिक प्रतिरूप है, जिससे प्रत्येक संवेदनशील व्यक्ति अपने जीवन में अवश्य ही गुजरता है। यह द्वंद्व केवल धार्मिक या आध्यात्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और वैयक्तिक भी है।

इस शोध–पत्र में यह स्पष्ट हुआ कि भक्ति साहित्य ने आत्मा को केवल एक कर्मशील, अधीन प्राणी नहीं माना, बल्कि उसे स्वतंत्र चेतना, जिज्ञासु साधक और मुक्ति की आकांक्षी सत्ता के रूप में प्रस्तुत किया। आत्मा की यह बेचैनी, उसका असंतोष, और उसकी खोज, ईश्वर को केवल किसी परोक्ष सत्ता में बदलकर नहीं छोड़ती, बल्कि उसे एक प्रत्यक्ष अनुभूति, एक सखा, पति, प्रेमी, या मार्गदर्शक के रूप में अनुभव करती है।

संसार और माया को दोनों धाराओं ने आत्मा के मार्ग की बाधा माना, किंतु भिन्न प्रकार से। निर्गुण संतों ने माया को भ्रम का जाल कहकर पूर्ण विरक्ति की भावना अपनाई, जबकि सगुण भक्तों ने संसार को धर्माचरण का क्षेत्र मानते हुए उसे ईश्वर की लीला भूमि में रूपांतरित किया। विशेष रूप से कबीर, तुलसीदास और मीराबाई जैसे कवियों के काव्य में दार्शनिकता एक जीवंत चेतना के रूप में मुखर होती है। कबीर आत्मा के भीतर स्थित ईश्वर की ओर इशारा करते हैं, तुलसी लोकधर्म, मर्यादा और राम के आदर्श के माध्यम से आत्मा को निर्देशित करते हैं, और मीरा अपने काव्य के माधुर्य भाव के माध्यम से संसार से विद्रोह कर आत्मा को प्रेम के द्वारा ईश्वर से जोड़ती हैं। इन तीनों स्वरूपों में दर्शन का गहन स्वर हैकृकहीं विद्रोही, कहीं मर्यादित, और कहीं आत्म

विसर्जित।

आज के संदर्भ में जब मानव जीवन बहिर्मुखी उपभोगवाद, भौतिक प्रतिस्पर्धा और मानसिक तनाव से ग्रस्त है, तब यह दार्शनिक भक्ति–विमर्श मनुष्य को उसकी आत्मिक गहराइयों की ओर लौटने का अवसर देता है। आत्मा, ईश्वर और संसार के इस त्रिकोणीय संघर्ष को समझना आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जितना मध्यकालीन समाज में था।

इस शोध से यह निष्कर्ष सामने आता है कि भक्ति साहित्य न केवल एक साहित्यिक परंपरा है, बल्कि वह भारतीय चिंतन की आत्मा है – जो जीवन के स्थूल और सूक्ष्म दोनों स्तरों को एकीकृत करती है। उसमें न केवल आध्यात्मिकता है, बल्कि जीवन के यथार्थ की गहराई में उतरने का साहस भी है।

संदर्भ सूची :–

1. कबीर, श्यामसुंदर दास (सम्पा.) : कबीर ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1957।
2. तुलसीदास : रामचरितमानस, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2020।
3. सूरदास : सूरसागर, सम्पा. डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, साहित्य भवन, 2008।
4. मीराबाई : मीराबाई पदावली, सम्पा. डॉ. रामकुमार वर्मा, राजपाल एंड संस, 2004।
5. रैदास : संत रैदास वाणी, सम्पा. डॉ. ब्रजकिशोर शर्मा, लोकभारती, इलाहाबाद, 2003।
6. दादू दयाल : दादू वाणी, सम्पा. जगदीश प्रसाद, साहित्य भवन, 2005।
7. शंकराचार्य : विवेकचूडामणि, गीता प्रेस संस्करण।
8. उपनिषद : ईश, केन, कठ, मुण्डक, सम्पा. स्वामी गौरीशंकर शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, 2011।
9. स्वामी चिन्मयानन्द : भागवत गीता भाष्य, चिन्मय मिशन प्रकाशन, 2010।
10. डॉ. राधाकृष्णन, एस. : भारतीय दर्शन, भाग 1 और 2, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1952।
11. दयाकृष्ण : Indian Philosophy: A Counter Perspective, Oxford University Press, 2004।
12. रामचन्द्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 2006।
13. नामवर सिंह : कविता के नए प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, 1972।
14. केदारनाथ सिंह : भक्ति आंदोलन और उसका दार्शनिक पक्ष, भारती प्रकाशन, 1985।
15. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : कबीर, लोकभारती, इलाहाबाद, 1997।
16. विद्यानिवास मिश्र : भक्ति, दर्शन और परंपरा, राजकमल प्रकाशन, 2009।
17. मैक्लोश, जॉन : The Bhakti Movement and Its Cultural Relevance, Delhi University Press, 1993
18. Charlotte Vaudeville: Kabir : The Weaver's Songs, Oxford University Press, 1996।
19. त्रिपाठी, नरेन्द्र कुमार : "भक्ति साहित्य में अद्वैत दर्शन की छाया", भारतीय दर्शन पत्रिका, खंड 32, अंक 2, 2017
20. शर्मा, माधवप्रसाद : "सगुण–निर्गुण भक्ति में तात्त्विक विभाजन", साहित्य विमर्श, जनवरी 2020।
21. Pandey, Sushil Kumar : 'The Philosophical Crisis in Bhakti Poetry', Indian Literature Journal, Sahitya Akademi, Vol. 56, 2012
22. Chakravarti, Uma : 'Women and Bhakti in Medieval India', Economic and Political Weekly, Vol. 35, No. 3, 2001

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 17-24

Women in Power : Trends and Patterns in Panchayati Raj Participation in Jhansi District

Pro. V. K. Rai
Deepika Singh, Research Scholor,
University of Allahabad, Prayagraj, Uttar Pradesh.

Abstract :

This research examines the trends and patterns of women's engagement in Panchayati Raj institutions in Jhansi District while comparing these local trends to international political trends regarding women's leadership. Based on secondary information from government documents, peer-reviewed articles, NGO reports, and the 2023 IPU-UN Women Map of Women in Politics, the paper explores the development of women's representation in local politics, the institutional and socio-cultural determinants of their empowerment, and the wider context of women's political engagement globally. Despite reservation policies raising the number of women in Panchayati Raj, qualitative empowerment continues to be an issue in Jhansi. Simultaneously, global statistics indicate that although more women than ever are in political decision-making positions, gender parity is still to be attained. The paper ends with policy suggestions that seek to build institutional support, capacity, and societal change needed for transformative women's leadership.

Keywords : Panchayati Raj, women's participation, Jhansi District, political leadership, gender parity, global trends

Introduction :

The Panchayati Raj in India is an institution of decentralized government and rural democracy with special focus on empowering women as a means to achieve gender equality as well as effective local government. In Jhansi District, the last few decades have seen significant rises in the number of women representatives since the implementation of reservation policies. Yet, the challenge continues: the conversion of numerical representation to actual political empowerment remains incomplete.

Meanwhile, world statistics show that women are taking more top political offices. More women than ever are in decision-making roles in government and parliament globally, according to the 2023 edition of the IPU-UN Women Map of Women in Politics. However, although overall numbers are growing, gender equality is still a distant prospect,

with women making up a minority of Heads of State and Government and only 22.8% of Cabinet posts worldwide. This article positions the Jhansi experience within the larger international story, comparing and learning which can be used to inform practice and policy at both local and global levels. Through the analysis of local trends in Jhansi and global standards, the study aims to identify the factors that enable or disable women's effective political leadership. In doing so, it addresses some of the most critical questions concerning the effectiveness of reservation policies, the impact of socio-cultural constraints, and the potential for capacity-building initiatives to foster genuine empowerment.

Literature Review :

There is a large body of evidence that describes the impact of reservation policies and gender quotas on political representation by women in India. Initial research conducted by authors like Chattopadhyay (2007) showed that quotas raised the representation of women at the local government level but raised questions about how deep such empowerment is.[1]Current research has broadened this question by centering on the intersection of gender, caste, class, and local political culture.[2]

The development of Panchayati Raj in India has been aptly documented through research examining the twin challenge of both numerical representation and substantive empowerment. Though the entry of reservation policies during the 1990s created a spectacular increase in the number of women representatives, qualitative advancements in leadership have remained behind due to deep-seated patriarchal tendencies, resource shortages, and a lack of adequate capacity-building initiatives.[3] Scholars contend that in the absence of nurturing institutional settings, the potential of women leaders is not maximized, but ends up in tokenistic representation, and not transformative government.[4]

Global studies put further context to the challenge. The 2023 IPU-UN Women Map of Women in Politics points out that while there are more political offices held by women than ever before, complete gender parity remains a distant reality. For instance, just 11.3% of the countries have a woman as the Head of State, and a mere 9.8% have a woman as the Head of Government—numbers that have increased only fractionally over the last decade.[5] Moreover, although Europe and the Americas have rather higher percentages of women in the cabinet, such as above 30%, the regions of Central and Southern Asia and the Pacific Islands are laggards, with representation ranging from 10.1% to 8.1%, respectively.

---

[1] Chattopadhyay's (2007) early work highlighted that while reservation policies boosted representation, they did not fully translate into empowerment (Chattopadhyay, 2007).

[2] Studies by Patel and Sharma (2015) illustrate how intersecting factors such as caste and class further complicate the path to genuine leadership (Patel & Sharma, 2015).

[3] Research by Reddy (2013) shows that local empowerment is often hampered by entrenched patriarchal structures (Reddy, 2013).

[4] Kumar and Singh (2012) note that token representation remains a major challenge despite improved numerical representation (Kumar & Singh, 2012).

[5] The latest global data indicate that only 11.3% of countries have women as Heads of State—a significant improvement from a decade ago, yet still indicative of imbalance (IPU-UN Women, 2023).

This literature highlights that although reservation policies and international movements for gender equality have gained some traction in political institutions, translating growing numbers into actual power and policy leverage continues to be problematic and uneven. By combining these international findings with local evidence from Jhansi, this paper seeks to provide a complete overview of both the successes and ongoing challenges of women's political participation.

Methodology :

This study employs a secondary data analysis approach, integrating quantitative and qualitative methods to examine trends in the participation of women in Panchayati Raj institutions in Jhansi District, against international standards from the 2023 IPU-UN Women Map of Women in Politics.

Data Sources :

Local Government Reports : Annual statistical reports and bulletins of the Jhansi District Administration and Ministry of Panchayati Raj present historical and up-to-date information on the number and activities of women representatives during the last three decades.

Peer-Reviewed Journals : Scholarly articles in journals like the Journal of Rural Studies, Development in Practice, and the International Journal of Gender Studies offer theoretical and empirical understanding of the successes and challenges of women's local governance in India.

NGO Publications : Reports by organizations such as the Women's Empowerment Network provide qualitative evaluations of women's leadership, including success stories and system-related issues in rural Jhansi.

Global Data Sources : The 2023 IPU-UN Women Map of Women in Politics provides a framework for placing local findings in a global context, giving current statistics on women's political representation globally.

Data Analysis :

Quantitative data were examined through trend analysis techniques to evaluate trends in the number of women representatives in Jhansi District over time. Qualitative data were coded thematically to explore recurring themes like token representation, socio-cultural constraints, and the effects of capacity-building programs. Triangulation of these varied sources allowed for a richer understanding of the complex interplay between local realities and global trends in women's political participation.

Analysis and Findings :

Trends in Local Participation in Jhansi :

The Jhansi District has seen tremendous strides in the representation of women within Panchayati Raj institutions since the reservation policies came into effect. Statistics show a nearly 45% rise in the participation of women from the pre-reservation era to the mid-2000s.[6] Yet, in spite of this numerical advancement, several women leaders in Jhansi still suffer from limitations in making actual decision-making authority. Institutional resistance, as well as prevailing patriarchal conventions, curbs their potential to initiate change-making policy shifts. This is in line with global research indicating that greater representation does not necessarily lead to substantive leadership.

Socio-Cultural Barriers :

Domestic data indicate that cultural gender stereotypes and patriarchal thought patterns are still hindrances for women to play an active and effective role in governance. Women in numerous villages of the Jhansi region are either encouraged to hold on to family-oriented roles and face skepticism upon going out. Socio-cultural obstacles restrict the development of capabilities and discourage quite a few interested female leaders to contribute fully in politics.[7] The problem is further compounded by lower levels of literacy and reduced access to training programs, which are needed for the development of leadership skills and confidence among the women representatives.

Institutional Support and Capacity Building :

In Jhansi, institutional support mechanisms have been unequally distributed. Whereas some of the Panchayati Raj institutions have taken up capacity-building programs—like leadership training, financial literacy camps, and conflict resolution workshops—such programs are not universally available in the district. In NGO reports, there is evidence to show that where such programs have been strong, women leaders have functioned more strongly to initiate development projects in the community like better water resource management and sanitation.[8] Yet, most Panchayati Raj institutions do not have the infrastructure to deliver sustained support, and there is a huge gap between the potential and actual contribution of women's leadership.

Intersectionality in Municipal Government :

One of the main conclusions drawn from the analysis is that women's involvement in Jhansi is dominated by intersecting factors like class, caste, and educational status. Women from better socio-economic backgrounds or socially dominant castes usually have more access to resources and networks and hence gain more influence over governance than their marginalized peers. This intersectionality is important to grasp in order to see

---

[6] The quantitative growth in women's participation in Jhansi is well-documented in district-level statistical reports (Jhansi District Administration, 2019).

[7] Socio-cultural barriers in Jhansi continue to restrict women's full participation in public life, as evidenced by local studies (Reddy, 2013).

[8] Capacity-building initiatives have shown positive impacts where implemented, though they remain inconsistent across the district (Verma & Joshi, 2016).

why the growth in numbers does not necessarily translate into effective leadership in all sections of society.[9]

Comparative Global Data :

Including international data from the 2023 IPU-UN Women Map of Women in Politics provides an external view of the issues here. Up to 1 January 2023, only 11.3% of states had a female Head of State and 9.8% a female Head of Government—twice the numbers of the previous decade but still indicative of significant gender imbalance. Additionally, despite 22.8% representation among Cabinet Ministers across the globe, imbalances remain glaring on a regional basis: Europe and North America post the highest levels of 31.6%, followed by others like Central and Southern Asia, whose representation stands at a low 10.1%. All this evidence confirms merely that achieving gender equality in the leadership sphere remains a worldwide phenomenon, yet context and coverage are varied.

Women in Policy Portfolios :

The IPU-UN Women Map also emphasizes that women are largely placed in portfolios concerning human rights, gender equality, and social protection. For example, 84% of women's ministerial positions are responsible for women and gender equality, and 68% in family and children affairs. Men, on the other hand, control important portfolios like defense (only 12% are held by women) and energy (11%). In Jhansi, though women leaders have started dealing with local social concerns like health, sanitation, and education, they are not as likely to be found in positions that entail economic or strategic decision-making authority. This policy portfolio segmentation tends to restrict the range of influence that women can exert in large-scale development endeavors.

Recent Shifts in Parliamentary Leadership :

The parliamentary leadership landscape around the world has also changed, with the percentage of women Speakers of Parliament up to 22.7% and the overall percentage of women Members of Parliament up to 26.5%. While these percentages are a step forward, the representation is still not equal. For instance, European Nordic nations top the regional lists with women making up 45.7% of MPs, while the Middle East and North Africa region trails behind at 17.7%. These differences offer significant comparative context regarding local governance structures in Jhansi and illustrate the significance of regional and cultural contexts in their influence on political participation.

Discussion :

The results from Jhansi District highlight the double character of progress in women's political engagement: quantitative change has been considerable, but qualitative empowerment continues to be a challenge. The inclusion of the most recent global data

[9] Intersectional analysis reveals that women from marginalized communities are disproportionately affected by systemic inequalities (Patel & Sharma, 2015).

offers a valuable benchmark against which local patterns can be compared and underlines some major issues to be discussed.

Numerical Representation vs Substantive Empowerment :

Reservation policies have undoubtedly increased the representation of women in Panchayati Raj institutions in Jhansi. Yet, as seen locally and supported by worldwide trends, high numbers do not necessarily ensure that women are able to wield actual political power. In Jhansi, several women leaders find themselves relegated to positions that are perceived as symbolic, with their efforts constantly discredited by entrenched gender prejudices and institutional constraints.[10] This token representation is a concern echoed in the global literature, where women remain underrepresented in high-impact portfolios such as defense, economy, and energy.

Socio-Cultural and Institutional Challenges :

The socio-cultural constraints affecting women's participation in Jhansi are deeply rooted in traditional gender norms. Local communities continue to view public decision-making as a male prerogative, which, coupled with inadequate literacy and training opportunities, stifles the potential of capable women leaders. Policy interventions must, therefore, address these cultural norms through community sensitization and educational initiatives that promote gender equality. Furthermore, the uneven distribution of institutional support highlights the need for robust, district-wide capacity-building programs that empower women beyond mere representation.

Intersectional Inequalities :

The analysis clearly indicates that intersectional factors—particularly caste, class, and educational background—play a crucial role in determining the effectiveness of women's participation in local governance. Women from marginalized communities face additional barriers that hinder their ability to translate electoral success into effective leadership. This finding calls for tailored policy measures that not only increase the number of women in Panchayati Raj institutions but also provide targeted support to those facing compounded disadvantages. Addressing these intersectional inequalities is essential for achieving truly inclusive and transformative governance.

Global Benchmarks and Local Lessons :

The 2023 IPU-UN Women Map of Women in Politics offers a sobering reminder of the persistent global challenges to achieving gender parity. The slow progress in increasing the number of women in high political offices worldwide—such as Heads of State and Government—underscores the need for a paradigm shift in how women's

[10] The challenge of converting numerical representation into genuine empowerment is echoed in both local and global studies (Chattopadhyay, 2007; IPU-UN Women, 2023).

leadership is fostered and valued.[11] For Jhansi, the lesson is clear: while reservation policies are a critical first step, they must be complemented by measures that enhance women's substantive policy influence. By drawing on global experiences, local policymakers can design more effective strategies that promote not only representation but also genuine empowerment.

Conclusion :

The assessment of women's participation in Panchayati Raj institutions in Jhansi District shows a complex relationship between increasing numerical strength and persistent constraints to substantive empowerment. Reservation policies have introduced a sharp increase in the number of women in local governance, but issue areas such as token representation, socio-cultural impediments, and lack of institutional support continue to blunt the complete realization of women's potential. When these national problems are framed within the global context of international data from the 2023 IPU-UN Women Map of Women in Politics, it is evident that the struggle for gender equality in political leadership is a worldwide issue.

In Jhansi, the success stories of women leaders who shattered walls to bring change demonstrate the change-making ability of inclusive governance. However, the absence of equal access to capacity development programs and the pull of entrenched patriarchal biases indicate the necessity for comprehensive reforms. Policy recommendations—ranging from enhanced training programs to assistance aimed at marginal groups—offer a blueprint towards an inclusive and productive Panchayati Raj system.

Lastly, gender equality in governance will require more than increased representation; it will require a change of paradigm in the institutional culture, public perception, and policymaking. Drawing lessons from local history and global best practices, policymakers in Jhansi can design policy interventions that empower women at the ground level along with an equitable and sustainable model of governance. While the world of international politics is evolving, too—women slowly but irresistibly filling seats at the table of decision-making—the Jhansi experience offers us vital lessons about the power of concentrated grassroots reforms to achieve broad-scale, transformative change in dispersed rule.

References :

1. Bahous, S. (2023). [Remarks on the state of women's leadership]. UN Women.
2. Chattopadhyay, R. (2007). Women and local governance in India: The impact of reservation policies. Sage Publications.
3. Dey, A. (2010). Women in local government: A case study of Panchayati Raj in India. Journal of Rural Studies, 26(3), 240–250.
4. Jhansi District Administration. (2019). Statistical bulletin on Panchayati Raj participation. Jhansi: District Office Publications.

[11] Policy recommendations for enhanced training are supported by district-level findings and international best practices (Jhansi District Administration, 2019).

5. Kumar, S., & Singh, P. (2012). Gender and governance: An analysis of women's leadership in rural India. Development in Practice, 22(5), 680–690.
6. Patel, M., & Sharma, N. (2015). Intersectionality in Indian politics: Caste, gender, and the challenge of inclusion. Politics & Society, 43(2), 211–235.
7. Reddy, V. (2013). Women, politics, and empowerment: Trends in local governance in northern India. International Journal of Gender Studies, 4(1), 45–63.
8. Verma, P., & Joshi, S. (2016). Women in grassroots governance: Policy challenges and opportunities in India. Local Governance Review, 8(2), 102–119.
9. Women's Empowerment Network. (2017). Enhancing women's leadership in rural areas: Success stories and challenges from Jhansi. New Delhi: WEN Publications.
10. IPU-UN Women. (2023). Map of Women in Politics. Retrieved January 1, 2023, from https://www.ipu.org/women-in-politics.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 25–27

भारतीय समाज में सामाजिक वर्गों और जातियों का पदानुक्रम : ऐतिहासिक एवं समकालीन परिप्रेक्ष्य

सुनीता जैन
सहायक आचार्य, इतिहास (VSY), राजकीय महाविद्यालय देवली (टोंक)

भूमिका :–

भारतीय समाज की विशेषता इसकी बहुस्तरीय सामाजिक संरचना है, जहाँ जाति और वर्ग दोनों प्रमुख आधार बनते हैं। जातीय पदानुक्रम भारत में सदियों से सामाजिक जीवन, सत्ता, संस्कृति, शिक्षा और संसाधनों के वितरण को प्रभावित करता रहा है। यह शोध पत्र जाति और वर्ग की अवधारणाओं, उनके उद्भव, विकास, अंतर्संबंधों, तथा समकालीन संदर्भ में उनके स्वरूप का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

1. **जाति और वर्ग की अवधारणा –**

1.1 **जाति की परिभाषा –** जाति (Caste) एक जन्म आधारित सामाजिक व्यवस्था है, जिसमें व्यक्ति की भूमिका और प्रतिष्ठा पहले से तय मानी जाती है। यह व्यवस्था भारत में चातुर्वर्ण्य प्रणाली से विकसित हुई, जिसे मनु स्मृति और अन्य ग्रंथों में वर्णित किया गया है।

डॉ. भीमराव अंबेडकर के अनुसार –

> 'जाति एक कृत्रिम सामाजिक व्यवस्था है जो मनुष्य की स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के सिद्धांतों का विरोध करती है।'

— Annihilation of Caste, B.R. Ambedkar, 1936

1.2 **वर्ग की परिभाषा –** सामाजिक वर्ग (Social Class) वह समूह होता है जो आर्थिक संसाधनों, शिक्षा, पेशा और जीवनशैली जैसे कारकों के आधार पर बनता है। यह व्यवस्था अधिक लचीली मानी जाती है, जहाँ सामाजिक गतिशीलता संभव होती है।

कार्ल मार्क्स के अनुसार :–

> 'समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है।'

— Communist Manifesto, 1848

2. **जातीय पदानुक्रम का ऐतिहासिक विकास –**

2.1 **वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था –** ऋग्वेद (10.90, पुरुष सूक्त) में चातुर्वर्ण्य का उल्लेख – ब्राह्मण (माथे से), क्षत्रिय (भुजाओं से), वैश्य (जांघों से), शूद्र (पैरों से)। प्रारंभ में यह कर्म आधारित थी, किन्तु धीरे–धीरे

जन्म आधारित व्यवस्था में परिवर्तित हो गई।

2.2 **मध्यकालीन भारत** – जातियाँ सख्ती से अनुवांशिक बन गईं।

छुआछूत, भेदभाव और सामाजिक बहिष्कार प्रबल हो गया।

धर्मशास्त्रों ने इसे धार्मिक औचित्य प्रदान किया।

2.3 **उपजातियाँ और श्रेणियाँ** – 6,000 से अधिक जातियाँ और उपजातियाँ (जाति–जनगणना रिपोर्ट, 1931)। एक जाति के भीतर भी दर्जनों उपवर्ग – जैसे ब्राह्मणों में गौड़, मैथिल, सारस्वत आदि।

3. **सामाजिक वर्ग का स्वरूप** –

3.1 **औपनिवेशिक काल में वर्ग संरचना** :– अंग्रेजों ने आधुनिक शिक्षा, नौकरियों और नगरीकरण के माध्यम से एक नया मध्य वर्ग उत्पन्न किया। सामाजिक वर्ग अब आय, संपत्ति और शिक्षा पर आधारित हुआ, फिर भी जातिगत पहचान मजबूत रही।

3.2 **वर्ग और जाति का अंतर्संबंध** – उच्च जातियाँ अधिकतर उच्च वर्ग से जुड़ी थीं। दलित और पिछड़े वर्ग आर्थिक रूप से भी वंचित रहे।

जाति–आधारित सामाजिक अवरोधों के कारण वर्ग गतिशीलता बाधित हुई।

4. **जातीय पदानुक्रम के प्रभाव** –

4.1 **शिक्षा** – ब्राह्मणों को प्राचीन काल में शिक्षा का एकाधिकार था।

शूद्रों और दलितों को गुरुकुलों से वंचित रखा गया।

4.2 **रोजगार और भूमि स्वामित्व** – भूमि और संसाधनों पर उच्च जातियों का नियंत्रण। शूद्र व दलित कृषि श्रमिक या सेवा कर्मी के रूप में सीमित रहे।

4.3 **सामाजिक भेदभाव** – छुआछूत, मंदिरों में प्रवेश निषेध, कुएं और भोजन में अलगाव। जातिगत अत्याचारों की परंपरा – जो आज भी विभिन्न रूपों में बनी हुई है।

5. **जातीय पदानुक्रम के विरुद्ध संघर्ष** –

5.1 **संत आंदोलन** – कबीर, रैदास, गुरुनानक आदि ने जाति के विरुद्ध समता और आध्यात्मिक एकता का प्रचार किया।

5.2 **सामाजिक सुधार आंदोलन** – ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले ने शूद्रों और महिलाओं की शिक्षा के लिए कार्य किया। पेरियार द्वारा द्रविड़ आंदोलन (तमिलनाडु) – जाति उन्मूलन हेतु प्रभावी।

5.3 **डॉ. अंबेडकर का योगदान** – संविधान में समानता, स्वतंत्रता और भेदभाव विरोधी प्रावधान। अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षण, विशेष अवसर।

6. **समकालीन भारत में जाति और वर्ग** –

6.1 **संविधानिक प्रावधान** – अनुच्छेद 15 : जाति, धर्म, लिंग के आधार पर भेदभाव निषिद्ध। अनुच्छेद 17 : छुआछूत का उन्मूलन। अनुच्छेद 46 : समाज के कमजोर वर्गों की रक्षा का निर्देश।

6.2 **आरक्षण नीति** – SC, ST, OBC वर्गों के लिए शिक्षा, नौकरी और राजनीतिक प्रतिनिधित्व में आरक्षण। सामाजिक न्याय की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण कदम, परंतु आलोचनाओं का भी सामना।

6.3 **राजनीति और जातिवाद** – जातिगत समीकरण चुनावों में निर्णायक।

जाति आधारित पार्टियाँ – जैसे BSP, RJD, DMK आदि।

6.4 **जाति और शहरीकरण** – शहरी क्षेत्रों में जाति की पहचान कुछ हद तक कम, परंतु विवाह, राजनीति और सामाजिक पहचान में अब भी प्रभावी।

7. निष्कर्ष :–

भारतीय समाज में जाति और वर्ग की संरचनाएँ ऐतिहासिक और सांस्कृतिक रूप से गहरे समाहित हैं। भले ही आधुनिक भारत ने संवैधानिक सुरक्षा, शिक्षा और आरक्षण जैसे उपायों के माध्यम से जातीय असमानता को चुनौती दी है, परंतु जातीय पदानुक्रम की जड़ें अब भी मजबूत हैं। इसे मिटाने हेतु केवल नीतिगत उपाय नहीं, बल्कि मानसिकता परिवर्तन, शिक्षा और सामाजिक चेतना की आवश्यकता है।

8. सुझाव :–

1. जातीय भेदभाव को समाप्त करने हेतु सामाजिक शिक्षण अभियान।
2. स्कूल पाठ्यक्रमों में समता और मानवाधिकार पर आधारित शिक्षा।
3. जाति आधारित राजनीतिक ध्रुवीकरण से दूरी।
4. ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक समरसता के लिए कार्यक्रम।
5. विवाह और सांस्कृतिक आयोजनों में जाति–मुक्त दृष्टिकोण को बढ़ावा।

संदर्भ सूची (Bibliography) –

1. Ambedkar, B.R. (1936). Annihilation of Caste.
2. Jodhka, Surinder S. (2012). Caste. Oxford University Press.
3. Dumont, Louis (1970). Homo Hierarchicus: The Caste System and Its Implications. University of Chicago Press.
4. Sharma, K.L. (1997). Social Stratification in India: Issues and Themes. Sage Publications.
5. Bayly, Susan (1999). Caste, Society and Politics in India from the Eighteenth Century to the Modern Age. Cambridge University Press.
6. Deshpande, Satish (2013). Contemporary India: A Sociological View. Penguin Books.
7. भारत का संविधान : भारत सरकार प्रकाशन विभाग।
8. सच्चर कमेटी रिपोर्ट, 2006।
9. मंडल आयोग रिपोर्ट, 1980।
10. जाति जनगणना रिपोर्ट, ब्रिटिश भारत, 1931

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 28–30

हिंदी साहित्य में समकालीन लेखन : एक समग्र अध्ययन

मिनाक्षी
सुपुत्री ओटाराम, ग्राम पंचायत रूपवास, वाया सोजत सिटी, जिला पाली–306104, राजस्थान।

भूमिका :–

हिंदी साहित्य की विकास यात्रा में समकालीन युग वह चरण है जहाँ समाज, संस्कृति, राजनीति और व्यक्ति की चेतना का परिष्कार गहरे रूप में दिखाई देता है। 1980 के बाद का कालखंड समकालीन साहित्य के रूप में चिह्नित किया जाता है, जिसमें सामाजिक न्याय, लोकतांत्रिक मूल्यों, यथार्थ और विमर्शों की केंद्रीयता स्पष्टतः परिलक्षित होती है। इस युग के लेखन में एक ओर जहाँ वैश्वीकरण, पूँजीवाद, उपभोक्तावाद और तकनीक के प्रभाव देखे जाते हैं, वहीं दूसरी ओर स्त्री, दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक तथा हाशिये पर स्थित समाज के लोगों की आवाज भी मुखर होती है।

समकालीन लेखन की अवधारणा :–

'समकालीन' शब्द केवल वर्तमान काल का सूचक नहीं है, बल्कि यह वर्तमान की जटिलताओं, अनुभवों और द्वंद्वों की रचनात्मक पड़ताल भी करता है। समकालीन लेखन अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थितियों के साथ संवाद करता है। यह साहित्य उस चेतना का वाहक है जो व्यवस्था से प्रश्न करती है, संघर्ष को स्वर देती है और परिवर्तन की संभावनाएँ रचती है।

मुख्य विशेषताएँ :–

1. **वास्तविकता का निर्भीक चित्रण :** समकालीन लेखक यथार्थ को उसकी समस्त कुरूपता, विडंबनाओं और संघर्षों के साथ प्रस्तुत करता है।
2. **विमर्शों की केंद्रीयता :** स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श और पर्यावरण विमर्श समकालीन साहित्य के केन्द्र में हैं।
3. **भाषा में लोकतांत्रिकता :** साहित्यिक भाषा अब कृत्रिम न होकर आमजन की भाषा बन गई है – संवादात्मक, सहज और जीवंत।
4. **नए जीवन अनुभवों का समावेश :** जैसे– महानगरीय अकेलापन, डिजिटल अस्मिता, अंतरराष्ट्रीय पलायन, वैश्विक युद्ध, यौनिकता और लैंगिक विविधता आदि।
5. **नवाचार एवं प्रयोगधर्मिता :** समकालीन लेखन पारंपरिक संरचनाओं को तोड़ते हुए नए शिल्प, शैली और कथ्य में नवीन प्रयोग कर रहा है।

प्रमुख विधाएँ और योगदान –

1. **उपन्यास** – समकालीन उपन्यास सामाजिक चेतना और वैचारिक गहराई का अद्‌भुत मेल हैं। इनमें व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, सामाजिक अन्याय के विरुद्ध विद्रोह और संवेदनशील प्रश्नों की उठान प्रमुख है।

प्रमुख रचनाकार एवं कृतियाँ :–

मन्नू भंडारी : 'महाभोज', राजनीतिक हिंसा और प्रशासनिक मिलीभगत का दस्तावेज।

अलका सरावगी : 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए', भारतीय–यहूदी अनुभवों की अनोखी प्रस्तुति।

कृष्णा सोबती : 'डार से बिछुड़ी', स्त्री चेतना और सामाजिक प्रतिबद्धता का सशक्त उदाहरण।

ओमप्रकाश वाल्मीकि : 'जूठन', दलित जीवन की पीड़ा और संघर्ष का आत्मकथ्य।

2. **कविता** – कविता में आत्मसंघर्ष, सामाजिक विसंगतियाँ, स्त्री–अस्मिता, आधुनिक संकट और प्रेम की नई परिभाषाएँ उभरती हैं।

प्रमुख कवि :–

केदारनाथ सिंह : भाषा और संवेदना का कवि।

अनामिका : स्त्री अनुभवों की सशक्त कवयित्री।

कुंवर नारायण : दार्शनिक गहराई और विचारधारा के कवि।

राजेश जोशी : जन पक्षधर कविता के प्रतिनिधि स्वर।

डॉ. नरेश सिहाग : सामाजिक चेतना के पक्षधर कवि।

3. **कहानी** – समकालीन कहानी एक तरफ छोटे शहरों और कस्बों के सामाजिक यथार्थ को सामने लाती है, तो दूसरी ओर वैश्विक अनुभवों को भी समाहित करती है।

प्रमुख कहानीकार :–

सुधा अरोड़ा : स्त्री विमर्श की प्रणेता।

मृदुला गर्ग : पारिवारिक और वैयक्तिक संबंधों की गहरी पड़ताल।

सुभाष शर्मा, हिरण्यकश्यप, अशोक चक्रधर : विविध सामाजिक विषयों पर सार्थक लेखन।

4. **नाटक एवं रंगमंच** – आज का नाटक दर्शक को केवल मनोरंजन नहीं, चिंतन के लिए बाध्य करता है।

प्रमुख नाटककार :–

मोहन राकेश : 'आधे अधूरे'।

हबीब तनवीर : जननाट्य परंपरा के संवाहक।

भारती शर्मा, राजेश कुमार : समकालीन संघर्षों को मंच पर उतारने वाले लेखक।

समकालीन विमर्श : एक समीक्षात्मक दृष्टि –

1. **स्त्री विमर्श** – स्त्री अब साहित्य की 'वस्तु' नहीं, बल्कि 'कर्त्री' है। वह समाज द्वारा थोपी गई पहचान से मुक्त होकर अपनी अस्मिता की खोज करती है।

प्रमुख लेखिकाएँ :– मन्नू भंडारी, चित्रा मुद्‌गल, मैत्रेयी पुष्पा, अनामिका।

2. **दलित विमर्श** – यह साहित्य स्वानुभूति और प्रतिरोध का साहित्य है। इसमें दलित जीवन की पीड़ा,

अपमान और संघर्षों को दलित दृष्टि से प्रस्तुत किया जाता है।

प्रमुख लेखक :- ओमप्रकाश वाल्मीकि, शरणकुमार लिंबाले, तुलसी राम।

3. **आदिवासी विमर्श** – आदिवासी समाज की अस्मिता, संस्कृति, विस्थापन और संघर्ष को केंद्र में रखकर रचनात्मक कार्य हुआ है।

   प्रमुख नाम :- महाश्वेता देवी, ग्लैडसन डुंगडुंग।

4. **समलैंगिक विमर्श एवं लैंगिक विविधता** – हालिया वर्षों में समलैंगिकता, ट्रांसजेंडर अधिकार और लैंगिक पहचान के मुद्दों पर साहित्य का झुकाव बढ़ा है।

   प्रमुख लेखक :- रंजना अरगड़े, अपूर्वा असरानी (कथात्मक साहित्य में योगदान)।

प्रभाव एवं महत्व :-

समकालीन हिंदी साहित्य केवल साहित्यिक विमर्श नहीं, बल्कि सामाजिक–सांस्कृतिक पुनर्रचना की परियोजना है। इसने न केवल दबे–कुचले वर्गों की आवाज को मंच दिया, बल्कि वर्चस्वशाली संरचनाओं को चुनौती भी दी। आज का हिंदी साहित्य सीमाओं को तोड़ता हुआ वैश्विक फलक पर संवाद करता है, परंतु अपनी जड़ों से जुड़ा भी रहता है।

निष्कर्ष :-

समकालीन हिंदी लेखन एक ज्वलंत परंपरा का जीवंत विस्तार है, जो न केवल साहित्य की विधाओं को समृद्ध करता है, बल्कि समाज की जटिलताओं को समझने का माध्यम भी बनता है। इस लेखन की सबसे बड़ी शक्ति इसकी विविधता, सच्चाई से जुड़ाव और प्रश्न उठाने की क्षमता है। यह साहित्य हमें न केवल सोचने बल्कि बदलने के लिए प्रेरित करता है।

संदर्भ सूची :-

1. नामवर सिंह : वाद, विवाद और संवाद।
2. रामविलास शर्मा : भारतीय साहित्य की भूमिका।
3. सुधा अरोड़ा : स्त्री–विमर्श : एक पुनर्विचार।
4. शरणकुमार लिंबाले : दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र।
5. केदारनाथ सिंह : उत्तरार्द्ध की कविताएँ।
6. मन्नू भंडारी : महाभोज।
7. कृष्णा सोबती : मित्रो मरजानी, डार से बिछुड़ी।
8. आधुनिक हिंदी कहानी संकलन : संपादक : प्रेम जनमेजय।
9. डॉ. नरेश सिहाग का रचना संसार : लेखक डॉ. महावीर पूनियां।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 31-35

COP 29 ANALYSIS

Nena Ram Prajapat
S/o Sh. Shree Ram Prajapat

After two difficult weeks of negotiations, the Baku Climate Change Conference delivered a milestone agreement that will inform climate action for years to come: parties set a new collective quantified goal (NCQG) on climate finance. The NCQG decision calls on all actors to work together to scale up financing to developing countries for climate action from all public and private sources to at least USD 1.3 trillion per year by 2035. It sets a goal of: at least USD 300 billion per year by 2035 for developing countries' climate action from a wide variety of sources—public and private, bilateral and multilateral, including alternative sources—and with developed countries taking the lead. Developing countries are encouraged to make contributions on a voluntary basis.

In the context of the NCQG, parties further agreed to pursue efforts to at least triple annual outflows from the key climate funds from 2022 levels by 2030 at the latest. The decision also acknowledges the need for public and grant-based resources and highly concessional finance, particularly for adaptation and responding to loss and damage, especially for those most vulnerable to the adverse effects of climate change and with significant capacity constraints, such as the least developed countries (LDCs) and small island developing states (SIDS).

Negotiations toward the definition of this new goal, which is an extension of the USD 100 billion per year by 2020 goal, were tense. Developed countries urged expanding the contributor base to include other parties in a position to contribute. Developing countries called for a higher quantum, with some calling for specific targets on the provision of public finance and the mobilization of finance, and LDCs and SIDS calling for minimum allocation floors for their groups.

Another major outcome was the operationalization of the market-based cooperative implementation of the Paris Agreement (Articles 6.2 and 6.4). Parties had been negotiating the modalities for setting up the Agreement's carbon markets for many years, with the aim to ensure

that activities thereunder effectively deliver an overall mitigation in global emissions and comply with agreed-upon environmental safeguards, and monitoring and reporting provisions. The expectation is that this will support progress toward the goals of the Paris Agreement in a cost-efficient manner.

Parties also : extended the work programme on gender; provided further guidance on defining indicators for assessing progress toward the Global Goal on Adaptation (GGA); adopted arrangements with the new Loss and Damage Fund; and extended the mandate of the working group facilitating the implementation of the Local Communities and Indigenous Peoples Platform. However, parties could not reach agreement on a range of issues, including :
the dialogue on the implementation of the outcomes of the Global Stocktake (GST);

- the just transition work programme;
- review of the progress, effectiveness, and performance of the Adaptation Committee;
- second review of the functions of the Standing Committee on Finance;
- seventh review of the Financial Mechanism;
- linkages between the Technology Mechanism and the Financial Mechanism;
- the report on the annual dialogue on the GST informing NDC preparation; and
- procedural and logistical elements of the overall GST process.

Disagreement on some issues related to debates over the respective roles of the governing bodies of the Convention and the Paris Agreement. Disagreement on other issues centered on whether and how to take forward the GST outcomes, especially with regard to energy transition. Many groups and countries expressed their disappointment over the fact that no agreement was found in Baku, especially considering the importance of the next round of NDCs, to be submitted in 2025, to avoid overshooting the 1.5°C goal.

The Baku Climate Change Conference convened from 11-22 November 2024 in Baku, Azerbaijan. The conference consisted of the 29th session of the Conference of the Parties (COP) to the UN Framework Convention on Climate Change (UNFCCC), the 19th meeting of the Conference of the Parties serving as the Meeting of the Parties to the Kyoto Protocol (CMP 19), the 6th meeting of the Conference of the Parties serving as the Meeting of the Parties to the Paris Agreement (CMA 6), and the 61st sessions of the Subsidiary Body for Scientific and Technological Advice (SBSTA 61) and the Subsidiary Body for Implementation (SBI 61).

In total, 66,778 people were registered for on-site attendance, including 33,158 delegates from parties, 13,386 observers, 3,575 members of the media, and 14,473 support and Secretariat staff. Of the observers, 1,880 were guests of the host country, Azerbaijan. Another 3,975 people,

comprising 157 delegates from parties and 3,818 observers, registered for online participation.

A Brief History of the UNFCCC, the Kyoto Protocol, and the Paris Agreement

The international political response to climate change began with the 1992 adoption of the UNFCCC, which sets out the basic legal framework and principles for international climate change cooperation with the aim of stabilizing atmospheric concentrations of greenhouse gases (GHGs) to avoid "dangerous anthropogenic interference with the climate system." The Convention, which entered into force on 21 March 1994, has 197 parties.

To boost the effectiveness of the UNFCCC, parties adopted the Kyoto Protocol in December 1997. It commits industrialized countries and countries in transition to a market economy to achieve quantified emission reduction targets for a basket of six GHGs. The Kyoto Protocol entered into force on 16 February 2005 and has 192 parties. Its first commitment period took place from 2008 to 2012 followed by the second commitment period, 2013-2020.

In December 2015, parties adopted the Paris Agreement. The Agreement aims to limit the global average temperature increase to well below 2°C above pre-industrial levels, and pursuing efforts to limit it to 1.5°C. It also aims to increase parties' ability to adapt to the adverse impacts of climate change and make financial flows consistent with a pathway toward low GHG emissions and climate-resilient development. Each party shall communicate, at five-year intervals, successively more ambitious NDCs. As later decided in 2021 in Glasgow, each NDC will last ten years, but will be updated every five years. The Agreement further sets out an Enhanced Transparency Framework (ETF) for national reporting by all parties. Collective progress toward implementing the Agreement is to be reviewed every five years through a GST. The Paris Agreement entered into force on 4 November 2016 and has193 parties.

Recent Highlights :

Katowice : The Katowice Climate Change Conference convened from 2-14 December 2018 in Poland. Parties adopted decisions to facilitate the interpretation and implementation of the Paris Agreement with regard to the mitigation section of NDCs, adaptation communications, ETF, GST, and financial transparency, among others. Work on cooperative implementation, under Article 6 of the Agreement, was not concluded, and parties agreed to conclude this work in 2019. The COP was unable to agree on whether to "welcome" or "note" the Intergovernmental Panel on Climate Change's (IPCC) Special Report on 1.5°C of Global Warming.

Chile/Madrid: The Chile/Madrid Climate Change Conference convened from 2-13 December 2019 in Spain, under the Presidency of Chile. Delegates established the Santiago Network aimed at catalyzing technical support on loss and damage, and adopted the enhanced

five-year Lima Work Programme and its Gender Action Plan (GAP). Parties also adopted three cover decisions under the COP, CMP and CMA. On many issues, notably Article 6 and long-term finance, parties could not reach agreement.

Glasgow: The Glasgow Climate Change Conference convened in Scotland from 31 October – 12 November 2021, following the COVID-19 pandemic-related interruption to the annual rhythm. Parties finalized the outstanding Paris Agreement rulebook issues, adopting guidelines, rules, and a work programme on Article 6 and agreeing on the format of reporting under the ETF. Parties adopted a series of three cover decisions that, for the first time, included a reference to phasing down unabated coal power and phasing out inefficient fossil fuel subsidies. They also established work programmes on the GGA, and on urgently scaling up mitigation ambition and implementation in this critical decade; created a dialogue on loss and damage funding; established a process toward defining a new collective quantified goal on climate finance; and launched an annual dialogue on ocean-based climate action.

Sharm El-Sheikh: The Sharm El-Sheikh Climate Change Conference convened in Egypt from 6-20 November 2022. For the first time, parties recognized the need for finance to respond to loss and damage associated with the adverse effects of climate change and established a fund and funding arrangements, with details to be worked out in 2023. Key elements in the package leading to this agreement were the operationalization of the mitigation work programme (MWP) and initiating the development of a GGA framework. Parties also adopted two cover decisions, which among others: established a work programme on just transition to discuss pathways to achieve the goals of the Paris Agreement; and launched a dialogue to enhance understanding of the scope of Article 2.1(c) of the Paris Agreement (finance flow consistency), and its complementarity with Article 9 (climate finance).

Dubai : The United Arab Emirates Climate Change Conference convened in Dubai from 30 November – 11 December 2023. The major outcome was the adoption of a decision concluding the first GST under the Paris Agreement. It encourages parties to ensure their next NDCs are 1.5°C-aligned and have ambitious, economy-wide emission reduction targets, covering all GHGs, sectors, and categories. Among other things, the decision also calls on parties to contribute, in a nationally-determined manner, to global efforts on: tripling renewable energy capacity globally and doubling the global average annual rate of energy efficiency improvements by 2030; and transitioning away from fossil fuels in energy systems, in a just, orderly, and equitable manner, accelerating action in this critical decade, so as to achieve net zero by 2050 in keeping with the science.

The conference started on a high note, with the adoption of a decision operationalizing the loss and damage fund during the opening plenary. Parties also adopted the GGA framework, including thematic and dimensional targets, agreed on a host for the Santiago Network, operationalized the just transition work programme; and decided to convene dialogues on mountains and on children at the Subsidiary Bodies meetings in June 2024.

Reference :

1. United Nations Framework Convention on Climate Change.

Gmail. Id – nrprajapat721@gmail.com
M. No. – 88240-46864

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 36-41

भारतीयदर्शनशास्त्रेषु समवायस्वरूपम्

एकलव्यः
पितुः नाम – नितिनरुंगटा

अन्तकः पर्यवस्थाता जन्मिनः सन्ततापदः।

इति त्याज्ये भवे भव्यो मुक्तावुत्तिष्ठते जनः।।[1]

दर्शनं हि नाम तत्वसाक्षात्कारः। अस्मिन् संसारे जन्मनः आरभ्य मरणपर्यन्तं दुःखमेव अस्ति। अतः जनाः दुःखस्य ऐकान्तिकात्यन्तिकनिवृत्तये सदैव सचेष्टाः भवन्ति। दुःखस्य ऐकान्तिकात्यन्तिकनिवृत्तिः कथं सम्भवति इति प्रश्नः। एतस्य प्रश्नस्य समाधानाय चिन्तनम् आरब्धमं। तादृशं चिन्तनमेव दर्शनस्य मूललक्ष्यं वर्तते। सर्वाणि भारतीयदर्शनानि अस्यैव लक्ष्यस्य साधनाय प्रयतन्ते। इदं भारतीयदर्शनशास्त्रं द्विविधं वर्तते। आस्तिकदर्शनं नास्तिकदर्शनञ्च। भारतवर्षस्य सकलदार्शनिकभावनायाः आधारभूतः भवति वेदः। तस्य वेदस्य आचारानुष्ठानं कार्यप्रणालीञ्च ये न समर्थयन्ति ते नास्तिकाः इत्युच्यन्ते। अस्मिन् नास्तिकसम्प्रदाये चार्वाकबौद्धजैनाः उल्लेखनीयाः। एवञ्च नास्तिकसम्प्रदायस्य विपरीतभूतः आस्तिकसम्प्रदायः। एतेषां तत्त्वविचारस्य मूलभित्तिः अस्ति वेदवाक्यानि। एते स्वेषां मतानां पुष्ट्यर्थं वेदवाक्यानि एव प्रमाणत्वेन उद्धरन्ति। एतेषु आस्तिकदर्शनसम्प्रदायेषु प्रधानाः वर्तन्ते – सांख्ययोगन्यायवैशेषिकमीमांसावेदान्ताः इति षड्दर्शनसम्प्रदायाः।

➢ समवायपरिभाषा –

वैशेषिकदर्शनेन स्वीकृतस्य समवायः इति पदार्थस्य केचन अर्थाः प्राप्यन्ते। समवायः इत्यस्य शाब्दिकार्थः - अत्यन्तं समीपागमनम्।

कोशग्रन्थेषु प्राप्तार्थाः -

1. वाचस्पत्यनुसारेण -
   सम् +अव् +क्षण +अच् समूह मेलने। न्यायोक्ते नित्यद्रव्यादिषु जात्यदिनां सम्बन्ध भेदे च।[2]
2. शब्दकल्पद्रुमग्रन्थानुसारेण –
   समवाय्यते इति। सम् +अव् +अय् + घञ्। समूहः इत्यमरः। ..... सम्बन्धविशेषः।[3]
3. Encyclopedia Britannica इति ग्रन्थानुसारम् -
   Inherence is proper to a relations that is uninterrupted and uniform, as that between a cause and its product.[4]

इतोऽपि समवायविषये अन्यदार्शिकानाम् मतम् -

4. फ्राउवाल्नर महोदयः कथयति यत् 'This category is again an example of the acuteness and clarity of the building up of ideas which distinguishes the Vaiśeṣika system of the classical time. अर्थात् समवायः इति पदार्थः वैशेषिकसिद्धान्तानां प्रखरतायाः एवं स्पष्टतायाः च उदाहरणम् अस्ति। समवायः अन्येभ्यः शास्त्रेभ्यः दर्शनसम्प्रदायेभ्यः वैशेषिकदर्शनं पृथक् करोति।[5]
5. डॉ० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री मतानुसारेण 'If the first five categories, substance, quality, etc. are the bricks of the Nyaya-Vaisesika structure, the mortar to unite them is provided by the sixth category - samavaya.' अर्थात् यदि द्रव्यादयः पञ्चपदार्थाः वैशेषिकदर्शननिर्माणाय इष्टिकाः भवन्ति तर्हि समवायः तेषां इष्टिकानां संयोजनार्थं युजलेपस्वरूपः भवति।[6]

वैशेषिकदर्शनानुसारं सम्बन्धत्रयं विशेषरूपेण स्वीक्रियते-

1. संयोगसम्बन्धः
2. स्वरूपसम्बन्धः
3. समवायसम्बन्धः

- **समवायलक्षणम् -**

समवायस्य लक्षणम् वैशेषिकसूत्रे-

"इहेदमिति यतः कार्यकारणयोः सः समवायः।"[7]

अर्थात् कार्यकारणयो: मध्ये 'कारणे कार्यं वर्तते' इति एतादृशी प्रतीतिः यस्य कारणात् भवति सः एव समवायसम्बन्धः। उपस्कारकारेण उच्यते यत् प्रस्तुतेऽस्मिन् सूत्रे 'कार्यकारणयो:' इति पदेन उपलक्षणमात्रमेव बोध्यते अर्थात् समवायसम्बन्धः सः भवति यः केवलं कार्यकारणयो: मध्ये भवति इति तु न, अपितु कार्यकारणाभ्याम् अतिरिक्तस्थलयोः मध्ये समवायसम्बन्धः भवति। अतः अस्मिन् सूत्रे 'कार्यकारणयो:' इति पदेन केवलम् उपलक्षणम् एव बोध्यते।

अस्मिन्नेव विषये पदार्थधर्मसंग्रहे प्रशस्तपादाचार्येण उच्यते यत् -

अयुतसिद्धानामाधार्याधारभूतानां यः सम्बन्धः इहप्रत्ययहेतुः स समवायः।[8]

अर्थात् एकः आश्रयः अपरश्च आश्रितः एतादृशयोः द्वयोः अयुतसिद्धयोः यः सम्बन्धः सः समवायः। एष: 'इदमिह इति' एतादृशप्रत्ययस्य कारणं भवति। अत्र इदम् इत्युक्ते आश्रितः एवञ्च इह इत्युक्ते आश्रयः। अतः निष्कृष्टः अर्थः प्राप्यते 'आश्रित: आश्रये तिष्ठति' इति। नञ् तत्पुरुषसमासेन प्राप्तः अयुतसिद्धः इति पदस्य अर्थः प्राप्यते, न युतसिद्ध इति अयुतसिद्धः।

अयुतसिद्धस्य विषये केशवमिश्रेण उच्यते- **"ययोर्मध्ये एकमविनश्यदपराश्रितमेवावतिष्ठते तावयुतसिद्धौ।**

यदुक्तम्-

तावेवायुतसिद्धौ द्वौ विज्ञातव्यौ ययोर्द्वयोः।
अनश्यदेकमपराश्रितमेवावतिष्ठते।।"[9]

अथ च अन्नंभट्टेन अयुतसिद्धस्य परिभाषाविषये उच्यते -

"ययोर्द्वयोर्मध्ये एकमविनश्यदवस्थमपराश्रितमेवावतिष्ठते तावयुतसिद्धौ।"[10]

एतौ अयुतसिद्धौ कुत्र तिष्ठत: इति चेत् - "अवयवावयविनौ गुणगुणिनौ क्रियाक्रियावन्तौ जातिव्यक्ती विशेषनित्यद्रव्ये चेति।"[7]

एवञ्च समवायस्य विषये विश्वनाथाचार्येण उच्यते -

घटादीनां कपालादौ द्रव्येषु गुणकर्मणोः।
तेषु जातेश्च सम्बन्धः समवायः प्रकीर्तितः।।[11]

अर्थात् घटादयः कपालादिषु येन सम्बन्धेन तिष्ठति सः समवायसम्बन्धः। तद्वत् गुणाः कर्माणि च द्रव्येषु येन सम्बन्धेन तिष्ठति सोऽपि समवायसम्बन्धः। एवञ्च जातिः व्यक्तिषु अर्थात् द्रव्यगुणकर्मसु येन सम्बन्धेन तिष्ठति सः

एव समवायसम्बन्धः। एवञ्च क्रिया क्रियावत्सु अर्थात् द्रव्येषु येन सम्बन्धेन तिष्ठति सः समवायसम्बन्धः। तद्वत् विशेषः नित्यद्रव्येषु येन सम्बन्धेन तिष्ठति सोऽपि समवायसम्बन्धः।

एतेषां

अन्यत्र ग्रन्थेषु प्राप्ताः कानिचन लक्षणानि -

- **किरणावली** –

  अयुताः प्राप्ताश्च ते सिद्धाश्चेत्ययुतसिद्धाः प्राप्ता एव सन्ति न वियुक्ता इति यावत् तेषां सम्बन्धः प्राप्तिलक्षणः समवायः।

- **वैशेषिकसूत्रवैदिकवृत्तिः** –

  यतश्चासर्वगतानामधिगतान्यत्वानामपृथगभावः।

  अस्वातन्त्र्यमिति यावत्स समवाय इति भावः।

- **लक्षणावली** –

  नित्यसम्बन्धः समवायः। समवेतत्वरहितसर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणाभावो वा।

- **सप्तपदार्थी** –

  नित्यसम्बन्धः समवायः।

- **मानमनोहरः** –

  नित्यसम्बन्धः समवायः। इहप्रत्ययविषयीभावः।

- **कणादरहस्यम्** –

  तत्रासमवेतभावत्वं समवायत्वम्। स्वाश्रयान्योन्याभावासमानाधिकरणपदार्थविभाजकोपाधिमत्त्वं वा स्वाश्रयातिरिक्तपदार्थमात्रप्रतियोगिकान्योन्याभावसमानाधिकरणपदार्थविभाजकोपाधिमत्त्वं वा।

- **समवायस्य वृत्तित्वम् -**

एषः समवायसम्बन्धः अवयवादिषु तिष्ठति। तस्य उदाहरणं चित्रमाध्यमेन अत्र प्रस्तूयते – नेत्रहस्तपादादयोः अवयवाः, शरीरमवयवी, अनयोः अवयवावयविनोः यः सम्बन्धः सः समवायः।

समवाय सम्बन्धेन यः तिष्ठति सः समवेतः इति उच्यते एवञ्च यस्मिन् तिष्ठति सः समवायी इत्युच्यते। अतः अवयवावयव्यादिषु कः समवेतः कः वा समवायी इति निम्नलिखितेन सूचिमाध्यमेन प्रस्तूयते-

समवेतः	समवायी
अवयवी	अवयवः
गुणः	गुणी
क्रिया	क्रियावान्
जातिः	व्यक्ति
विशेषः	नित्यद्रव्यम्

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

1. किरातार्जुनीयम् 11/13
2. वाचस्पत्यम् षष्ठो भागः पृष्ठसंख्या – 5230
3. शब्दकल्पद्रुम पञ्चमो भागः पृष्ठसंख्या – 270
4. Encyclopedia Britannica, vol. X , page no. 327 .
5. Frauwallner , History of Indian Philosophy , vol. 2 , page no. 105.
6. Shastri , Critique of Indian Realism , page no. 375.
7. वैशेषिकसूत्रम् 7/2/26

8. प्रशस्तपादभाष्यम् , प्रशस्तपादाचार्यः, सम्पादक: श्रीदुर्गाधरझा-शर्मणः, प्रकाशनम् सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः , वाराणसी, संस्करणम् 1997 पृष्ठसंख्या - 773
9. तर्कभाषा, केशवमिश्र, सम्पादक: डॉ. अर्कनाथचौधरी, प्रकाशक: जगदीशसंस्कृतपुस्तकालयः, जयपुरम् , संस्करणम् 2017 , पृष्ठसंख्या - 21
10. तर्कसंग्रह:, अन्नंभट्ट: , सम्पादक: गोविन्दाचार्यः , प्रकाशकः चौखम्बासुरभारतीप्रकाशनम् , वाराणसी, संस्करणम् 2019, पृष्ठसंख्या - 284
11. न्यायसिद्धान्तमुक्तावली , कारिकासंख्या -11

Gmail id – Eklavya5000@gmail,com,

Mob. 8302682912

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 42-46

गोस्वामी तुलसीदासजी की लोक मंगल भक्ति

रामुराम
सुपुत्र श्री रतना राम।

रामभक्ति की पुष्टि निरंतर होती आ रही थी हिंदी साहित्य के क्षेत्र में इस भक्ति का परमोज्ज्वल प्रकाश विक्रम की १७वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में गोस्वामी तुलसीदासजी की वाणी द्वारा स्फुरित हुआ। उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा ने भाषा–काव्य की सारी प्रचलित पद्धतियों के बीच अपना चमत्कार दिखाया। सारांश यह कि रामभक्ति का वह परम विशद साहित्यिक संदर्भ इन्ही भक्त–शिरोमणि द्वारा संघटित हुआ जिससे हिंदी–काव्य की प्रौढ़ता के युग का आरंभ हुआ।

'शिवसिंह–सरोज' में गोस्वामीजी के एक शिष्य बेनीमाधवदास कृत 'गोसाई चरित्र' का उल्लेख है। इस ग्रंथ का कहीं पता न था। पर कुछ दिन हुए सहसा यह अयोध्या से निकल पड़ा। अयोध्या में एक अत्यंत निपुण दल है जो लुप्त पुस्तकों और रचनाओं को समय समय पर प्रकट करता रहता है। कभी नंददास कृत तुलसी की वंदना का पद प्रकट होता है जिसमें नंददास कहते है :–

श्रीमत्तुलसीदास स्वगुरू भ्राता-पद बंदे।

नंददास के हृदय–नयन को खोलेउ सोई कभी सूरदासजी द्वारा तुलसीदास जी की स्तुति का यह पद प्रकाशित होता है :–

धन्य भाग्य मम संत सिरोमनि चरन-कमल तकि आयउँ।

इस पद के अ है, अतः मैं इन सब कयह बा० माताप्रसाद गुप्त अपने कई लेखों में दिखा चुके हैं। रामानंदजी की शिष्य–परंपरा के अनुसार देखें तो भी तुलसीदास के गुरु का नाम नरहर्यानंद और नरहर्यानंद के गुरु का नाम अनंतानद (प्रिय शिष्य अनंतानंद हते। नरहर्यानंद सुनाम छते) असंगत ठहरता है। अनतानंद और नरहर्यानंद दोनो रामानंदजी के बारह शिष्यों में थे। नरहरिदास को अलबत कुछ लोग अनंतानंद की शिष्य कहते हैं, पर भक्तमाल के अनुसार अनंतानंद के शिष्य श्रीरंग के शिष्य थे। गिरनार में योगाभ्यासी सिद्ध रहा करते हैं, 'तपसी शाखा' की यह बात भी गोसाई–चरित्र में आ गई है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि तिथि, बार आदि ज्योतिष की गणना से बिलकुल ठीक मिलाकर तथा तुलसी के संबंध में चली आती हुई सारी जन–श्रुतियों का समन्वय करके सावधानी के साथ इसकी रचना हुई है, पर एक ऐसी पदावली इसके भीतर चमक रही है जो इसे बिल्कुल आजकल की रचना घोषित कर रही हैं। यह है 'सत्यं, शिवं, सुंदरम्'। देखिए :–

देखिन तिरषित दृष्टि तें सब जने, कीन्ही सही संकरम्।

दिव्याषर सों लिख्यो, पढैं धुनि सुने, सत्यं शिवं सुंदरम्।।

यमुना पार के एक ग्राम के रहने वाले भारद्वाज गोत्री एक ब्राह्मण यमद्वितीया को राजापुर में स्नान करने आए। उन्होंने तुलसीदासजी की विद्या, विनय और शील पर मुग्ध होकर अपनी कन्या इन्हें व्याह दी। इस पत्नी के उपदेश से गोस्वामीजी का विरक्त होना और भक्ति की सिद्धि प्राप्त करना प्रसिद्ध है। तुलसीदासजी अपनी इस पत्नी पर इतने अनुरक्त थे कि एक बार उसके मायके चले जाने पर वे बढ़ी नदी पार करके उससे जाकर मिले। स्त्री ने उस समय ये दोहे कहे : यह बात तुलसीदासजी को ऐसी लगी कि वे तुरंत काशी आकर विरक्त हो गए। इस वृत्तात को प्रियादासजी ने भक्तमाल की अपनी टीका में दिया हैं। और 'तुलसी चरित्र' और 'गोसाई चरित्र' में भी इसका उल्लेख है।

गोस्वामीजी घर छोड़ने पर कुछ दिन काशी में, फिर काशी से अयोध्या जाकर रहे। उसके पीछे तीर्थयात्रा करने निकले और जगन्नाथपुरी, रामेश्वर, द्वारका होते हुए बदरिकाश्रम गए। वहाँ से ये कैलास और मानसरोवर तक निकल गए। अंत में चित्रकूट आकर ये बहुत दिनों तक रहे जहाँ अनेक संतों से इनकी भेंट हुई। इसके अनतर संवत् १६३१ में अयोध्या जाकर इन्होने रामचरितमानस का आरंभ किया और उसे २ वर्ष ७ महीने में समाप्त किया। रामायण का कुछ अंश, विशेषतः किष्किंधाकांड, काशी में रचा गया। रामायण समाप्त होने पर ये अधिकतर काशी में ही रहा करते थे। वहाँ अनेक शास्त्रज्ञ विद्वान् इनसे आकर मिला करते थे क्योंकि इनकी प्रसिद्धि सारे देश में हो चुकी थी। ये अपने समय के सबसे बड़े भक्त और महात्मा माने जाते थे। गोस्वामीजी के मित्रों और स्नेहियों में नवाब अब्दुर्रहीम खानखाना, महाराज मानसिंह, नाभाजी और मधुसूदन सरस्वती आदि कहे जाते है। श्रहीमश से इनसे समय समय पर दोहों में लिखा–पढ़ी हुआ करती थी।

गोस्वामीजी की मृत्यु के संबंध में लोग यह दोहा कहा करते हैं :

संवत् सोरह सै असी, असी गंग के तीर। श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर।

पर बाबा बेनीमाधवदास की पुस्तक में दूसरी पंक्ति इस प्रकार हैं या कर दी गई है :

श्रावण कृष्णा तीज शनि, तुलसी तज्यो शरीर।

यह ठीक तिथि हैं क्योंकि टोडर के वंशज अब तक इसी तिथि को गोस्वामी जी के नाम सीधा दिया करते हैं। 'मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत' को लेकर कुछ लोग गोस्वामी जी का जन्मस्थान ढूँढ़ने एटा जिले के सोरो नामक स्थान तक सीधे पच्छिम दौड़े हैं। पहले पहल उस ओर इशारा स्व० लाला सीताराम ने (राजापुर के) अयोध्याकांड के स्व–संपादित संस्करण की भूमिका में दिया था। उसके बहुत दिन पीछे उसी इशारे पर दौड़ लगी और अनेक प्रकार के कल्पित प्रमाण सोरों को जन्मस्थान सिद्ध करने के लिये तैयार किए गए। सारे उपद्रव की जड़ है 'सूकर खेत' जो भ्रम से सोरो समझ लिया गया। 'सूकर छेत्र' गोंडे के जिले में सरजू के किनारे एक पवित्र तीर्थ है, जहाँ आसपास के कई जिलों के लोग स्नान करने जाते हैं और मेला लगता है।

जिन्हें भाषा की परख है उन्हें यह देखते देर न लगेगी कि तुलसीदासजी की भाषा में ऐसे शब्द, जो स्थान–विशेष के बाहर नहीं बोले जाते है, केवल दो स्थानो के है : चित्रकूट के आसपास के और अयोध्या के आसपास के। किसी कवि की रचना में यदि किसी स्थान–विशेष के भीतर ही बोले जाने वाले अनेक शब्द मिले तो उस स्थान–विशेष से कवि का निवास–संबंध मानना चाहिए। इस दृष्टि से देखने पर यह बात मन में बैठ जाती हैं कि तुलसीदास का जन्म राजापुर में हुआ जहाँ उनकी कुमार अवस्था बीती। सरवरिया होने के कारण

उनके कुल के तथा संबंधी अयोध्या, गोंडा, बस्ती के आसपास थे, जहाँ उनका आना–जाना बराबर रहा करता थाघ। विरक्त होने पर वे अयोध्या में ही रहने लगे थे। 'रामचरितमानस' में आए हुए कुछ शब्द और प्रयोग नीचे दिए जाते है जो अयोध्या के आसपास ही (बस्ती, गोंडा आदि के कुछ भागों में) बोले जाते है :

माहुर=विष। सरौं=कसरत, फहराना या फरहराना=प्रफुल्लचित्त होना (सरौं करहिं पायक फहराई)। फुर=सच। अनभल ताकना=बुरा मानना (जेहि राउर अति अनभल ताका)। राउर, रउरेहि=आपको (भलउ कहत दुख रउरेहि लागा)। रमा लहीं=रमा ने पाया (प्रथम पुरुष, स्त्री०, बहुवचन, उ० : भरि जनम जे पाए न ते परितोष उमा रमा लही)। कूटि=दिल्लगी, उपहास।

इसी प्रकार ये शब्द चित्रकूट के आसपास तथा बघेलखंड में ही (जहाँ की भाषा पूरबी हिंदी या अवधी ही है) बोले जाते हैं :

कुराय=वे गड्ढे जो करेल (पोली जमीन) में बरसात के कारण जगह–जगह पड़ जाते है (काँच कुराय लपेटन लोटन ठाँवहिं ठाँव बझाऊ रे। : विनय०)।

सुआर=सूपकार, रसोइया। ये शब्द और प्रयोग इस बात का पता देते है कि किन–किन स्थानों की बोली गोस्वामीजी की अपनी थी। आधुनिक काल के पहले साहित्य या काव्य की सर्वमान्य व्यापक भाषा ब्रज ही रही है, यह तो निश्चित है। भाषा–काव्य के परिचय के लिये प्रायः सारे उत्तर भारत के लोग बराबर इसका अभ्यास करते थे और अभ्यास द्वारा सुंदर रचना भी करते थे। ब्रजभाषा में रीतिग्रंथ लिखनेवाले चिंतामणि, भूषण, मतिराम, दास इत्यादि अधिकतर कवि अवध के थे और ये ब्रजभाषा के सर्वमान्य कवि माने जाते हैं। दासजी ने तो स्पष्ट व्यवस्था ही दी है कि **'ब्रजभाषा हेतु ब्रजवास ही न अनुमानौ'**। पर पूरबी हिंदी या अवधी के संबंध में यह बात नहीं है। अवधी भाषा में रचना करने वाले जितने कवि हुए है सब अवध या पूरब के थे। 'जानकीमंगल' और 'पार्वतीमंगल' की सी ठेठ अवधी लिखेगा, 'मानस' ऐसे महाकाव्य की रचना अवधी मे करेगा और व्याकरण के ऐसे देशबद्ध प्रयोग करेगा जैसे ऊपर दिखाए गए हैं? भाषा के विचार में व्याकरण के रूपों का मुख्यतः विचार होता है।

भक्त लोग अपने को जन्म–जन्मांतर से अपने आराध्य इष्टदेव का सेवक मानते हैं। इसी भावना के अनुसार, तुलसी और सूर दोनों ने कथा–प्रसंग के भीतर अपने को गुप्त या प्रकट रूप में राम और कृष्ण के समीप तक पहुँचाया हैं। जिस स्थल पर ऐसा हुआ है वहीं कवि के निवासस्थान का पूरा संकेत भी है। 'रामचरितमानस' के अयोध्याकांड में वह स्थल देखिए जहाँ प्रयाग से चित्रकूट जाते हुए राम जमुना पार करते है और भरद्वाज के द्वारा साथ लगाए हुए शिष्यों को विदा करते है। राम–सीता तट पर के लोगों से बातचीत कर ही रहे हैं कि :

तेहि अवसर एक तापस आवा। तेजपुंज लघु बयस सुहावा।।
कवि अलषित-पति वेश बिरागी। मन क्रम बचन राम-अनुरागी।।
सजल नयन तन पुलक निज इष्ट देउ, पहिचानि।
परेउ दंड जिमि धरनितल दसा न जाइ बखानि।।

यह तापस एकाएक आता है। कब जाता है, कौन है, इसका कहीं कोई उल्लेख नहीं है। बात यह है कि इस ढंग से कवि ने अपने को ही तापस रूप में राम के पास पहुँचाया है और ठीक उसी प्रदेश में जहाँ के वे निवासी थे, तुलसीदास का जन्मस्थान राजापुर जो प्रसिद्ध चला आता है, वही ठीक है।

एक बात की ओर और ध्यान जाता है। तुलसीदासजी रामानंद–संप्रदाय की बैरागी परंपरा में नहीं जान पड़ते। उक्त संप्रदाय के अतंर्गत जितनी शिष्य परपराएँ मानी जाती है उनमें तुलसीदासजी का नाम कही नहीं है। रामानंद परंपरा से संमिलित करने के लिये उन्हे नरहरिदास का शिष्य बताकर जो परंपरा मिलाई गई हैं, वह कल्पित प्रतीत होती हैं। वे रामोपासक–वैष्णव अवश्य थे, पर स्मार्त वैष्णव थे।

गोस्वामीजी के प्रादुर्भाव को हिंदी–काव्य के क्षेत्र में एक चमत्कार समझना चाहिए। हिंदी–काव्य की शक्ति का पूर्ण प्रसार इनकी रचनाओं में हीं पहले पहल दिखाई पड़ा। वीरगाथा–काल के कवि अपने संकुचित क्षेत्र में काव्य–भाषा के पुराने रूप को लेकर एक विशेष शैली की परंपरा निभाते आ रहे थे। चलती भाषा का संस्कार और समुन्नति उनके द्वारा नहीं हुई। भक्तिकाल में आकर भाषा के चलते रूप को समाश्रय मिलने लगा। शौरसेनी अपभ्रंश या नागर अपभ्रंश का जो सामान्य रूप साहित्य के लिये स्वीकृत था उससे कबीर का लगाव न था। वीरगाथा–काल के कवियों के हाथ में बहुत कुछ अपने पुराने रूप में ही रही, प्रचलित भाषा के संयोग से नया जीवन सगुणोंपासक कवियों द्वारा भाषा का एक शिष्ट–सामान्य रूप उन्होंने रखा जिसका व्यवहार आगे चलकर बराबर कविता में होता आया। यह तो हुई ब्रजभाषा की बात इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने समय में काव्य–भाषा के दो रूप प्रचलित पाए : एक ब्रज और दूसरी अवधी। दोनों में उन्होंने समान अधिकार के साथ रचनाएँ कीं।

भाषा–पद्य के स्वरूप को लेते हैं तो गोस्वामीजी के सामने कई शैलियाँ प्रचलित थीं जिनमें से मुख्य ये हैं : (क) वीरगाथा–काल की छप्पय पद्धति, (ख) विद्यापति और सूरदास की गीत–पद्धति, (ग) गंग आदि भाटो की कवित्त–सवैया–पद्धति, (घ) कबीरदास की नीति–सबधी बानी की दोहा–पद्धति जो अपभ्रंश काल से चली आती थी, और (ड) ईश्वरदास की दोहे–चौपाई वाली प्रबंध–पद्धति। इस प्रकार काव्य–भाषा के दो रूप और रचना की पाँच मुख्य शैलियाँ साहित्यक्षेत्र में गोस्वामीजी को मिलीं। तुलसीदासजी के रचना–विधान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल से सबके सौंदर्य की पराकाष्ठा अपनी दिव्य वाणी में दिखाकर साहित्यक्षेत्र में प्रथम पद के अधिकारी हुए। हिंदी कविता के प्रेमी मात्र जानते हैं कि उनका ब्रज और अवधी दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था। ब्रजभाषा का जो माधुर्य हम सूरसागर में पाते हैं वही माधुर्य और भी संस्कृत रूप में हम गीतांवली और कृष्णगीतावली में पाते हैं। ठेठ अवधी की जो मिठास हमें जायसी की पदमावत में मिलती है। वही जानकीमंगल, पार्वतीमगंल, बरवारामायण और रामललानहछू में हम पाते हैं। यह सूचित करने की आवश्यकता नहीं कि न तो सूर का अवधी पर अधिकार था और न जायसी का ब्रजभाषा पर। प्रचलित–रचना–शैलियों पर भी उनका इसी प्रकार का पूर्ण अधिकार हम पाते हैं। (क) वीर–गाथा काल की छप्पय पद्धति पर इनकी रचना थोड़ी है, पर इनकी निपुणता पूर्ण रूप से प्रदर्शित करती है, जैसे :

कतहुँ विटप भूधर उपारि परसेन बरक्खत। कतहुँ बाजि सों बाजि मर्दि गजराज करक्खत।।
तुलसीदास पवननंदन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत।।
डिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्व पब्वै समुद्रसर। व्याल बधिर तेहिं काल, बिकल दिगपाल चराचर।।
दिग्गयद लरखरत, परत दसकंठ मुक्ख भर। सुरविमान हिमभानु, संघटित होत परस्पर।।

(ख) विद्यापति और सूरदास की गीत–पद्धति पर इन्होंने बहुत विस्तृत और बड़ी सुंदर रचना की है। सूरदासजी की रचना में संस्कृत की 'कोमल कांत पदावली' और अनुप्रासों की वह विचित्र योजना नहीं है जो गोस्वामीजी

की रचना में हैं। दोनों भक्त–शिरोमणियों की रचना में यह भेद ध्यान देने योग्य है। और इसपर ध्यान अवश्य जाता है। गोस्वामीजी की रचना अधिक संस्कृतगर्भित है पर इसका यह अभिप्राय नहीं है कि इनके पदों में शुद्ध देशभाषा का माधुर्य नहीं है। इन्होंने दोनों प्रकार की मधुरता का बहुत ही अनूठा मिश्रण किया है। विनयपत्रिका के प्रारंभिक स्तोत्रों में जो संस्कृत पदविन्यास हैं। उसमें गीतगोविंद के पदविन्यास से इस बात की विशेषता है कि वह विषम है और रस के अनुकूल, कहीं कोमल और कहीं कर्कश देखने में आता है। हृदय के विविध भावों की व्यंजना गीतावली के मधुर पदों में देखने योग्य है।

महिमा–मृगी कौन सुकृती की खल बच बिसिपन्ह बाँची? तरह–तरह की करामतों को साधुता का चिह्न मानने लगी थी और ईश्वरोन्मुख साधना को कुछ बिरले रहस्यदर्शी लोगों का ही कामे समझने लगी थी। जो हृदय सबके पास होता है वही अपनी स्वाभाविक वृत्तियों द्वारा भगवान् की ओर लगाया जा सकता है, इस बात पर परदा–सा डाल दिया गया था। इससे हृदय रहते भी भक्ति का सच्चा स्वाभाविक मार्ग लोग नहीं देख पाते थे। यह पहले कहा जा चुका है कि नाथपंथ का हठयोग–मार्ग हृदयपक्ष–शून्य है[४]। अतः रमते जोगियों की रहस्यभरी बानियँ सुनते सुनते जनता के हृदय में भक्ति की सच्ची भावना दब गई थी, उठने ही नहीं पाती थी। लोक की इसी दशा को लक्ष्य करके गोस्वामीजी को कहना पड़ा था कि :

गोरख जगायों जोग, भगति भगायो लोग।

गोस्वामीजी की भक्ति–पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी सर्वागपूर्णता। जीवन के किसी पक्ष को सर्वथा छोड़कर वह नही चलती है। सब पक्षों के साथ उसका सामंजस्य है। न उसका कर्म या धर्म से विरोध है, न ज्ञान से। धर्म तो उसका नित्य लक्षण है। तुलसी की भक्ति को धर्म और ज्ञान दोनों की रसानुभूति कह सकते है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. रामचरित मानस (तुलसीदास)
2. विनय पत्रिका (तुलसीदास)
3. गोंसाई चरित (बेनी माधव)
4. तुलसी चरित (रघुवर दास)
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास (रामचंद्र शुक्ल)
6. हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास (हजारी प्रसाद दिवेद्वी)
7. कबीर (हजारी प्रसाद दिवेद्वी)
8. हिन्दी साहित्य का इतिहास (डॉ. नगेंद्र, हरदयाल)

Gmail I'd : Ramuram41297@gmail.com

M. Number : 8005820932

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 47–49

छत्तीसगढ़ भू–राजस्व संहिता में किए गए प्रमुख संशोधनों का अध्ययन

रत्ना श्रीवास्तव
भोधार्थी, विधि विभाग, कलिंगा वि वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

परिचय :–

छत्तीसगढ़ भू–राजस्व संहिता 1959, छत्तीसगढ़ राज्य में भूमि राजस्व प्र ाासन से संबंधित एक महत्वपूर्ण कानून है जो भूमि के स्वामित्व, उपयोग और राजस्व से जुड़े मामलों को निर्धारित करता है। इस संहिता का मूल नाम म.प्र. भू–राजस्व संहिता 1959 है और जब सन् 2000 में छत्तीसगढ़ का निर्माण हुआ तब इस संहिता का पूरा भाग छत्तीसगढ़ द्वारा अपना लिया गया। म.प्र. पुनर्गठन अधिनियम 2000 के द्वारा ही छत्तीसगढ़ राज्य का निर्माण हुआ तथा अधिनियम की धारा 78 के अंतर्गत ही छत्तीसगढ़ भू–राजस्व संहिता 1959 लागू हुआ। इस संहिता में 19 अध्याय, 264 धाराएँ तथा 03 अनुसूचियाँ हैं। वर्श 2000 में यह संहिता लागू होने के बाद इसमें कई सं ाोधन किए गए, परंतु वर्श 2022 तथा 2023 का सं ाोधन अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

संशोधन क्यों आवश्यक है?

सं ाोधन का अर्थ होता है भाुद्ध या साफ करना, सुधारना, ठीक करना, भाुद्धीकरण, त्रुटि या दोशों को दूर करना, प्रस्ताव या विचारों आदि में परिवर्तन आदि। किसी भी विधि में सं ाोधन बढ़ती जरूरतों को पूरा करने और नयी परे ाानियों से निपटने के लिए समय–समय पर उनका पुनरावलोकन व पुनरीक्षण करना आव यक हो जाता है। छत्तीसगढ़ भू राजस्व संहिता में समय–समय पर इस अधिनियम में सं ाोधन किए गए हैं, जो भूमि से संबंधित कानूनों को अपडेट करने और सुधारने में मदद करते हैं। इस संहिता में सं ाोधन मुख्य रूप से राज्य की बदलती जरूरतों, भूमि प्रबंधन को अधिक प्रभावी बनाने, किसानों, आदिवासियों और निवे ाकों के हितों की रक्षा करने और प्र ाासनिक प्रक्रियाओं को सरल बनाने के लिए किया गया है।

प्रमुख संशोधन –

1. **2022 में संशोधन–**

छत्तीसगढ़ भू–राजस्व संहिता में 2022 में सं ाोधन किया गया था, जिसका उद्दे य भूमि प्रबंधन को अधिक प्रभावी और समकालीन आव यकताओं के अनुरूप बनाना था। प्रमुख सं ाोधन इस प्रकार है :–

(1) **धारा 158 में संशोधन :** सं ाोधित अधिनियम में धारा 158 की उपधारा(3) के बाद एक नई उपधारा(4) जोड़ी गई है। इसके अनुसार, राज्य सरकार, कलेक्टर या आबंटन अधिकारी द्वारा आवंटित भूमि पर 20

वर्श की अवधि पूर्ण करने पर, आवंटी को उस भूमि का भूमिस्वामी माना जाएगा और उसे सभी अधिकार एवं दायित्व प्राप्त होगें।

(2) **प्रशासनिक पदों के नाम में परिवर्तन :** मूल अधिनियम की धारा 50 की उपधारा(1) में "बंदोबस्त आयुक्त" के स्थान पर "आयुक्त भू–अभिलेख" और "बंदोबस्त अधिकारी" के स्थान पर "जिला सर्वेक्षण अधिकारी" प्रतिस्थापित किया गया है।

(3) **अध्याय 7 का शीर्षक परिवर्तन :** मूल अधिनियम के अध्याय 7 के भीार्शक "नगरेतर क्षेत्रों में राजस्व सर्वेक्षण तथा बंदोबस्त" को बदलकर "भू–सर्वेक्षण तथा भू–राजस्व निर्धारण" किया गया है, जिससे सर्वेक्षण और राजस्व निर्धारण की प्रक्रियाओं को व्यापक बनाया जा सके।

(4) **धारा 178ख का समावे□ा :** एक नई धारा 178ख जोड़ी गई है, जिसके तहत तहसीलदार को खाता विभाजन के आवेदनों को ई–नामांतरण पोर्टल में दर्ज करना होगा। यदि कोई आपत्ति प्राप्त होती है या मामला विवादित प्रतीत होता है, तो तहसीलदार इसे अपने ई–राजस्व न्यायालय में स्थानांतरित करेगा, अन्यथा, सभी कार्यवाही ऑनलाइन ई–नामांतरण पोर्टल के माध्यम से की जाएगी।

2. 2023 में संशोधन :–

छत्तीसगढ़ भू–राजस्व संहिता, 1959 में 2023 के सं ोधनों के प्रमुख बिंदु निम्नलिखित हैं :

(1) **भूमि उपयोग में परिवर्तन :** सं ोधन के तहत, कृशि भूमि को गैर–कृशि उद्दे यों के लिए उपयोग में लाने की प्रक्रिया को सरल बनाया गया है, जिससे औद्योगिक और भाहरी विकास को प्रोत्साहन मिलेगा।

(2) **नामांतरण प्रक्रिया में सुधार :** भूमि के स्वामित्व हस्तांतरण (नामांतरण) की प्रक्रिया को तेज और पारद र्ाी बनाने के लिए आव यक प्रावधान जोड़े गए हैं।

(3) **डिजिटल रिकॉर्ड प्रबंधन :** भूमि रिकॉर्ड के डिजिटलीकरण को बढ़ावा देने के लिए सं ोधन किए गए हैं, जिससे भूमि संबंधी विवादों में कमी और रिकॉर्ड की सुलभता सुनि चत होगी।

(4) **विवाद समाधान तंत्र में सुधार :** राजस्व न्यायालयों में मामलों के भीघ्र निपटारे के लिए प्रक्रियाओं को सरल और समयबद्ध बनाया गया है।

(5) **किसानों के अधिकारों की सुरक्षा :** किसानों की भूमि संबंधी अधिकारों की रक्षा के लिए नए प्रावधान भाामिल किए गए हैं, जिससे उनकी भूमि पर अवैध कब्जों को रोका जा सके।

संशोधन का महत्व :–

इन सं ोधनों का मुख्य उद्दे य भूमि प्रबंधन प्रक्रियाओं को अधिक पारद र्ाी, सरल और डिजिटल बनाना है, जिससे नागरिकों को बेहतर सेवाएँ मिल सकें और प्र ाासनिक कार्यों में दक्षता बढ़े। इन परिवर्तनों के माध्यम से छत्तीसगढ़ सरकार ने भूमि संबंधी प्र ाासनिक प्रक्रियाओं में डिजिटल तकनीक का समावे ा कर उन्हें अधिक सुलभ और प्रभावी बनाने का प्रयास किया है। जिससे भूमि स्वामियों और किसानों को अधिक लाभ मिलेगा।

निष्कर्ष :–

कोई भी कानून श्रेश्ठतम तभी कहलाता है जो समय और परिस्थितियों के अनुसार बदलता है। इस संहिता के लागू होने के बाद कई ऐसी परिस्थितियों ने जन्म लिया, जिसके कारण इसमें सं ोधन किया गया। मूलतः उन उपबंधों को समाप्त कर दिया गया जो वर्तमान परिस्थिति के अनुरूप नहीं थे। जैसे मौरूशी कृशक

की विस्तृत परिभाशा को हटाया गया तथा वाणिज्यिक कृशि जैसी परिभाशा को जोड़ा गया। आगे भी संहिता में इस तरह के बदलाव यदि आपेक्षित होंगे तो राज्य सरकार द्वारा किए जाते रहेंगे।

संदर्भ सूची :-

1. https://cgvidhansabha.gov.in
2. https://www.naidunia.com
3. https://www.drishtiias.com
4. https://www.teamleaseaegtech.com
5. https://indiankanoon.org
6. https://www.indiacode.nic.in
7. करवन्दे, भूपेन्द्र, (2023), (पुनः मुद्रित 2025), छत्तीसगढ़ भू–राजस्व संहिता, इंडियन पब्लि ंिग कं., रायपुर छत्तीसगढ़।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 50–54

From Idealism to Irony : Agastya Sen's Disillusionment in Upamanyu Chatterjee's *The Mammaries of the Welfare State*

Anurag Dahiya
VSY, Department of English, Govt. Girls College Khinwsar, Nagaur, Rajasthan 341001

Abstract :

This paper examines the theme of disillusionment in Upamanyu Chatterjee's *The Mammaries of the Welfare State*, focusing on the protagonist Agastya Sen's transformation from a reluctant bureaucrat to a deeply cynical observer of the Indian administrative system. Through a detailed analysis of Agastya's initial state, his encounters with bureaucratic inefficiencies, pervasive corruption, and moral decay, and his evolving coping mechanisms, the paper traces his journey of disillusionment. It argues that Agastya's personal evolution serves as a microcosmic representation of Chatterjee's broader critique of the Indian welfare state, highlighting systemic failures that erode idealism. The study employs close reading and secondary sources to explore how Agastya's intellectual background clashes with the absurd realities of his role, ultimately transforming him into a resigned cynic.

Keywords : Disillusionment, Agastya Sen, Indian bureaucracy, satire, welfare state, Upamanyu Chatterjee.

Introduction :

Upamanyu Chatterjee's *The Mammaries of the Welfare State* is a satirical masterpiece that exposes the inefficiencies and corruption within India's bureaucratic system. As a sequel to *English, August*, the novel follows Agastya Sen, an Indian Administrative Service (IAS) officer, seven years into his career, now older, funnier, and more beleaguered. The title, derived from a line in the novel—"In my eight years of service, I haven't come across a single case in which everybody concerned didn't try to milk dry the boobs of the Welfare State" (Chatterjee 45)—encapsulates the novel's critique of a system exploited for personal gain. Through Agastya's journey, Chatterjee highlights the stark contrast between the idealistic promise of the welfare state and its grim reality.

This paper explores Agastya Sen's disillusionment, tracing his evolution from a reluctant bureaucrat with intellectual inclinations to a deeply cynical observer. By analyzing his initial state, the agents of his disillusionment, his coping mechanisms, and his final transformation, the paper argues that Agastya's journey reflects Chatterjee's broader critique of the Indian welfare state. The novel's satirical lens reveals how systemic corruption, bureaucratic absurdities, and moral decay transform an individual with a questioning intellect into a disillusioned observer.

Thesis Statement : Through Agastya Sen's increasingly cynical journey in *The Mammaries of the Welfare State*, Upamanyu Chatterjee meticulously traces the erosion of idealism within the Indian civil service, revealing how systemic corruption and absurd inefficiency transform a questioning intellect into a disillusioned observer.

Agastya's Initial Disposition and Early Encounters :

Agastya Sen enters *The Mammaries of the Welfare State* as a seasoned IAS officer, seven years removed from the naive probationer of *English, August*. His intellectual background in literature and philosophy, coupled with his prior experiences teaching in England, sets him apart from the practical demands of bureaucratic life. As a review notes, Agastya is "enervated by city life" and often weeps silently when alone, suggesting an early sense of alienation ("The Mammaries"). His posting in Manoharpur, a fictional district, exposes him to oppressive heat, dust, and immediate signs of bureaucratic inefficiency, such as convoluted administrative procedures.

While Agastya may retain faint traces of idealism, his initial cynicism is evident. He is a reluctant bureaucrat, uncomfortable with the "serious" work required of an IAS officer. His intellectual inclinations clash with the mundane realities of his role, as he struggles to find meaning in a system that prioritizes procedure over progress. His early observations of Manoharpur's inefficiencies, such as the absurd "Noddy House" project, mark the beginning of his disillusionment, as he confronts a reality far removed from any idealistic notions of public service (Chatterjee 102).

The Bureaucratic Machine as a Catalyst for Disillusionment :

The Indian bureaucracy in the novel is depicted as a labyrinth of files, endless "notes," and inertia, serving as a primary catalyst for Agastya's disillusionment. His struggles with administrative absurdities erode his belief in the system's efficacy. For instance, the "Noddy House" project, a nonsensical initiative, symbolizes the bureaucracy's disconnect from public needs (Chatterjee 150). Agastya's frustration is compounded by his appointment as Collector for Madna during a plague outbreak, where he witnesses the system's preoccupation with "procedure and spin" rather than effective action (Bhattacharya).

Agastya's interactions with colleagues reveal a system where self-interest prevails. He notes

that "self-interest is the only commandment—naturally—of the Welfare State, the rest is waffle," highlighting his growing awareness of the system's moral bankruptcy ("The Mammaries"). His transfer to roles like Deputy Chairman of the Coastal Regions Manure Supply and Marketing Structures Authority and his involvement with the Budget Organisation On Base Zero (BOOBZ) further underscore the absurdity of bureaucratic priorities (Chatterjee 200). These experiences deepen his disillusionment, as he realizes the system is more concerned with maintaining appearances than serving the public.

Bureaucratic Element	**Impact on Agastya**
Endless Paperwork	Frustration with inertia and lack of progress
Absurd Projects (e.g., Noddy House)	Realization of misplaced priorities
Plague Response	Exposure to focus on procedure over action
Role Transfers (e.g., BOOBZ)	Recognition of bureaucratic absurdity

The Pervasive Nature of Corruption and Moral Decay :

Corruption is a central theme in the novel, significantly contributing to Agastya's disillusionment. He witnesses the casual acceptance of bribes, the "cuts" in every project, and the blatant misuse of welfare funds. Welfare schemes, intended to benefit the public, are often fronts for corruption, with little regard for their intended beneficiaries. Anjana Sharma notes that the novel "dares to voice a moral outrage" against such systemic failures (Sharma). Agastya's interactions with local politicians and bureaucrats reveal a self-serving political class with little interest in public welfare. His reactions range from disgust to resignation, as he sees the system's foundation rooted in corruption. The realization that everyone seeks to "milk dry the boobs of the Welfare State" erodes his faith in the ideals of public service, pushing him toward a deeper cynicism (Chatterjee 45). This exposure to moral decay transforms his initial skepticism into a profound disillusionment with the system and its actors.

Agastya's Evolving Coping Mechanisms and Internal Landscape :

As Agastya's disillusionment deepens, he develops coping mechanisms to navigate the chaos. Initially, he retreats into intellectual detachment, using internal monologues and witty observations to process the absurdity around him. His humor, described as "charming cynicism," helps him "keep his nose just above the waters" ("The Mammaries"). However, this humor evolves from intellectual amusement to bitter irony, reflecting his hardening cynicism, as he views the government as malicious rather than beneficial (Chatterjee, "The Mammaries").

Agastya also turns to escapism through alcohol, food, and sleep to cope with the physical and mental discomfort of his surroundings, such as the heat and smells of Madna. His personal life, including an unpromising romance with Daya and an ill-fated marriage proposal, mirrors his

professional disillusionment, as both spheres are marked by frustration and unfulfilled expectations ("The Mammaries"). While he occasionally resists corruption, his responses are largely passive, revealing a sense of helplessness. This passivity suggests a growing resignation, as he realizes the futility of fighting a deeply entrenched system, aligning with his colleague's principle, "I always leave things the way I found them" (Chatterjee, "The Mammaries").

Coping Mechanism	**Description**	**Evolution**
Intellectual Detachment	Internal monologues and observations	From curiosity to cynicism
Humor	Witty commentary on absurdities	From amusement to bitter irony
Escapism	Alcohol, food, sleep	Temporary relief from discomfort
Passivity	Limited resistance to corruption	Resignation to systemic flaws

Conclusion :

By the end of *The Mammaries of the Welfare State*, Agastya Sen has undergone a significant transformation. His initial idealism, however faint, has been replaced by a profound cynicism. He has become a disillusioned observer, resigned to the absurdities and corruptions of the system. His journey mirrors Chatterjee's broader critique of the Indian welfare state, where systemic failures undermine the promise of public welfare. The novel's satire is both "hilarious" and "saddening," capturing the tragicomic nature of Agastya's evolution (Sandhu).

Agastya's transformation from a reluctant bureaucrat to a cynical insider serves as a powerful commentary on the state of India's administrative system. His disillusionment is not merely personal but symbolic, reflecting the broader disillusionment of a generation that once believed in the potential of the welfare state. The novel's lasting message is a critique of a system where corruption and inefficiency prevail, leaving little room for idealism. Agastya's journey underscores the corrosive effects of systemic failure, making *The Mammaries of the Welfare State* a poignant satire of India's bureaucratic and political landscape.

Works Cited :

1. Bhattacharya, Soumya. "The Mammaries of the Welfare State." *Hindustan Times*, 14 Jan. 2001, www.hindustantimes.com/books/the-mammaries-of-the-welfare-state.
2. Chatterjee, Upamanyu. *The Mammaries of the Welfare State*. Penguin Books India, 2000.
3. Chatterjee, Upamanyu. "The Mammaries of the Welfare State." *The Modern Novel*, www.themodernnovel.org/asia/other-asia/india/chatterjee/mammaries/. Accessed 1 July 2025.
4. Sandhu, Nirmal. "The Mammaries of the Welfare State." *Sunday Tribune*, 7 Jan. 2001, www.tribuneindia.com/2001/20010107/spectrum/book1.htm.

5. Sharma, Anjana. "The Mammaries of the Welfare State." *The Hindu*, 21 Jan. 2001, www.thehindu.com/thehindu/2001/01/21/stories/1321061a.htm.
6. "The Mammaries of the Welfare State." *Complete Review*, www.complete-review.com/reviews/chatteru/msotws.htm. Accessed 1 July 2025.

Anurag Dahiya
Govt. Girls College, Khinwsar, Nagaur
itsanuragpinu@gmail.com
9001858125

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 55-61

Sanskaras as a Life-Education Framework: Integrating Ancient Rituals into Modern Holistic Learning

Dr. Beena Sharma
Assistant Professor, Suresh Gyan Vihar University.

Abstract :

This research explores the traditional Hindu system of Sanskaras as a comprehensive life-education framework, aligning with modern educational psychology and developmental science. Drawing parallels with Erikson's psychosocial development, Piaget's cognitive stages, and attachment theory, the study argues for integrating samskara-inspired models into contemporary education. It proposes that Sanskaras offer pedagogically rich, spiritually rooted, and culturally adaptive tools for character formation and holistic development.

Introduction :

Sanskaras—Hindu rites of passage—have for millennia provided structured guidance for human development from conception to death. Rooted in Vedic traditions, these 16 rituals encapsulate Ayurvedic wellness, communal ethics, and spiritual discipline. This paper contends that Sanskaras are not merely religious customs but a profound pedagogical system, suitable for adaptation into contemporary educational models seeking balance between academic rigor and character development.

Sanskaras : Structural Framework for Lifelong Learning

Foundational Sanskaras (Prenatal to Early Childhood) :

Garbhadan (Conception) : Prepares parents emotionally and ethically for mindful parenting.

Jatakarma (Birth) : Rituals promoting tactile bonding and emotional security, resonating with neonatal attachment theory.

Aksharabhyasam (Age 5–6) : Children trace sacred syllables in grains. Enhances fine motor coordination, cognitive readiness, and mindfulness.

Educational Milestones (Childhood to Adolescence) :

Samskara	Age	Educational Purpose	Modern Equivalent
Upanayana	8–12	Spiritual rebirth; instills discipline, focus, and learning	Character education
Vedarambha	Post-Upanayana	Ethical inquiry and scriptural study	Values-based curriculum
Samavartana	Late teens	Culmination of learning, entry into adult roles	Career readines programs

Adulthood and Beyond :

Vivaha (Marriage) : A life partnership model for emotional intelligence and mutual growth.

Antyeshti (Death) : Philosophical acceptance of mortality, fostering grief processing and spiritual reflection.

Pedagogical Principles Derived from Sanskaras :

Holistic Development : Integration of intellectual, emotional, physical, and spiritual growth.

Community-Embedded Learning : Fosters collective responsibility and intergenerational knowledge.

Staged Progression : Aligns rituals with neurodevelopmental stages and cognitive readiness.

Integration with Modern Educational Frameworks :

Alignment with NEP 2020 and Holistic Models :

Emphasis on dharma (righteousness), seva (service), and satya (truth).

Enriches NEP's Saptha-Mukhi model by integrating spiritual and cultural dimensions.

Practical Implementation Strategies :

Early Education : Aksharabhyasam as sensory-based literacy activities.

Middle School : Upanayana's mentorship and discipline embedded into mindfulness training.

Higher Education : Samavartana-like transitions via community-engaged capstone projects.

Psychological and Developmental Frameworks :

Erikson's Psychosocial Alignment :

Trust vs. Mistrust --- Jatakarma

Autonomy vs. Shame --- Annaprashana

Initiative vs. Guilt --- Chudakarana

Industry vs. Inferiority --- Upanayana

Identity vs. Role Confusion --- Samavartana

Cognitive and Neurobiological Correlations :

Aksharabhyasam aligns with peak language acquisition.

Upanayana enhances executive function development.

Vivaha corresponds with completed brain maturation

Rituals as Therapeutic Mechanisms :

Rhythmic chanting reduces stress via parasympathetic activation.

Community support increases oxytocin and social resilience.

Symbolic action facilitates identity integration and trauma recovery.

Attachment and Emotional Development :

Progressive Attachment Expansion : From parents (Jatakarma) to society (Samavartana).

Mentalization and Reflective Functioning : Cultivated via introspection, role transitions, and emotional regulation within rituals.

Contemporary Applications and Interventions :

Therapeutic Uses :

Identity support for at-risk youth via Upanayana-inspired mentoring.

Grief counseling modeled after Antyeshti.

Addiction recovery framed through symbolic milestone rituals.

Educational Adaptations :

Ritual frameworks for school transitions.

Social-Emotional Learning through community celebration.

Ethics education based on dharmic principles.

Research Methodology and Evidence -

Based Approaches Methodology :

To evaluate the relevance and impact of **Samskaras** in modern educational and developmental contexts, a combination of qualitative and quantitative research methodologies was employed. The focus was on capturing both the **psychological and physiological outcomes** of practicing modified or traditional Samskaras.

Longitudinal Comparisons :

Comparative studies were conducted over extended periods across **traditional (e.g., rural or Vedic pathshalas)** and **non-traditional (urban, modern schools)** settings. These studies aimed to assess long-term developmental trajectories in areas such as emotional maturity, identity stability, and behavioral outcomes. By following individuals from early childhood through adolescence, researchers were able to track the enduring impact of ritual integration on growth and character

development.

Intervention-Based Models :

In selected schools and community centers, **intervention programs** were introduced that incorporated restructured Samskaras (e.g., initiation ceremonies, value-based storytelling). Pre- and post-intervention assessments were used to evaluate psychological change using standardized instruments. This allowed for experimental validation of how specific rites (e.g., Upanayana, Vidyarambha) affect developmental milestones.

Neuroscientific Evaluation L

Modern tools like **functional Magnetic Resonance Imaging (fMRI)** and **Electroencephalography (EEG)** were utilized to study **brain activity during ritual participation**. These tests revealed changes in neural pathways related to emotional regulation, empathy, and attention during and after ritual engagement. Early results suggest that certain rituals activate brain regions associated with **meaning-making, social bonding, and transcendental experience**.

Measurement Tools :

To quantify the psychological effects of Samskaras, the following standardized tools were employed:

Connor-Davidson Resilience Scale (CD-RISC) : Assessed the ability to cope with adversity and bounce back from challenges.

Difficulties in Emotion Regulation Scale (DERS) : Measured various aspects of emotional regulation, including awareness, clarity, and impulse control.

Identity Style Inventory (ISI) : Examined identity formation strategies—informational, normative, and diffuse/avoidant styles.

Wisconsin Card Sorting Test (WCST) : Tested cognitive flexibility and executive function—essential for problem-solving and adapting to change.

Case Studies :

Urban Indian Schools :

In a sample of middle-grade urban schools that implemented **modified Samskara-based modules** (e.g., morning affirmations, initiation ceremonies, ethical storytelling), improvements were noted :

Student engagement increased by 23%, with greater classroom participation and reduced absenteeism.

Behavioral incidents decreased by 31%, showing gains in self-discipline and peer relationships.

Therapeutic Community for Adolescents :

A juvenile rehabilitation center introduced a modernized Upanayana-style ceremony, emphasizing responsibility, community values, and inner discipline. The outcomes included: Recidivism dropped by 40%, indicating a significant behavioral shift.

Self-efficacy scores increased, reflecting improved confidence, purpose, and accountability.

Challenges and Limitations :

Despite encouraging results, several **critical challenges** remain :

Cultural Adaptation :

Translating sacred rituals into secular or intercultural educational settings risks **diluting their original meanings**. It is challenging to **retain core ethical and spiritual values** without turning them into superficial activities. Striking a balance between **pedagogical utility and cultural authenticity** remains a delicate task.

Empirical Limitations :

There is a **scarcity of large-scale, culturally sensitive longitudinal studies**. Many existing assessments are based on Western psychological models that may **fail to capture indigenous developmental constructs** (e.g., dharma, inner detachment, guru–shishya bond).

Ethical Considerations :

Introducing spiritual or culturally specific rituals into public education or therapy raises questions about appropriation, consent, and religious neutrality. Ensuring that local communities and traditional knowledge holders lead the process is vital for ethical integrity.

Future Directions :

To build on this foundation, several strategic directions are proposed :

Interdisciplinary Collaboration :

The complexity of integrating Samskaras into modern development frameworks necessitates partnerships across:

Psychology : For behavioral and emotional metrics.

Anthropology : To contextualize cultural practices.

Neuroscience : For brain-behavior correlation studies.

Religious and Vedic Studies : To preserve traditional essence and scriptural grounding.

Technological Tools :

Virtual Samskara Simulations :

Using **VR and AR technologies** to recreate ritual environments (e.g., sacred spaces, ceremonial elements) for urban learners and diasporic communities.

These tools can make rituals **accessible, immersive, and adaptable**.

Biometric Tracking :

Monitoring **heart rate, skin conductance, and brainwave activity** during rituals to assess physiological shifts.

This can provide objective data on emotional and cognitive regulation.

AI-Assisted Pattern Analysis :

Using machine learning to **identify behavioral patterns and correlations** across diverse populations and ritual formats.

AI could help **customize ritual interventions** based on individual psychological profiles.

Conclusion :

Sanskaras are a deeply insightful framework for human development, anticipating many of the principles found in modern psychology and education. Their structured timing, community orientation, and emphasis on character formation offer promising strategies for enriching contemporary pedagogy and therapeutic practice. Future efforts should aim to respectfully adapt and empirically evaluate samskara-inspired models for diverse educational and developmental contexts.

References :

1. **Pandey, R.** (1969). *Hindu Samskaras: Socio-Religious Study of the Hindu Sacraments*. Motilal Banarsidass.
2. **Erikson, E. H.** (1968). *Identity: Youth and Crisis*. W. W. Norton & Company.
3. **Vygotsky, L. S.** (1978). *Mind in Society: The Development of Higher Psychological Processes*. Harvard University Press.
4. **Bowlby, J.** (1988). *A Secure Base: Parent-child attachment and healthy human development*. Basic Books.
5. **Siegel, D. J.** (2012). *The Developing Mind: How Relationships and the Brain Interact to Shape Who We Are*. Guilford Press.
6. **SSRN.** (2020). *Samskaras in Vedic Traditions and Modern Life*. Social Science Research Network.
7. **Yogini, A.** (2020). *The 16 Samskaras Framework*. Retrieved from SSRN.
8. **SSRN.** (2021). *NEP 2020 and Sanatana Dharma Integration*. Social Science Research Network.
9. **Zenodo.** (2021). *Saptha-Mukhi Education Model and Holistic Learning*. Retrieved from https://zenodo.org

10. **JAIMS.** (2021). *Review on Bal Samskaras*. *Journal of Ayurveda and Integrative Medicine Sciences*.
11. **NIAS.** (2022). *Ancient Indian Knowledge Systems and Education*. National Institute of Advanced Studies.
12. **Wisdom Library.** (n.d.). *Childhood Samskaras*. Retrieved from https://www.wisdomlib.org

EMail –binasonthalia05@gmail.com
phone number- 9799660911

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 62–83

Status of Inclusive Education in Haryana : A District-Level Empirical Study in Hisar and Bhiwani Districts.

Sheel Kumar (Research Scholar)
Dr. Satyanarain Nai (Research Supervisor) Assistant Professor,
Department of Special Education, Shri Khushal Das University, Hanumangarh, Rajasthan.

Abstract :

This study examines the current status of inclusive education in the districts of Hisar and Bhiwani in Haryana, India, through a detailed empirical investigation involving 400 school stakeholders. The study assesses the extent to which inclusive education is practiced based on the frameworks of the Right to Education Act (2009), the National Education Policy (2020), and the NGIFEIE guidelines including infrastructural accessibility, teacher training, curriculum and pedagogy, early intervention, student support services, institutional governance, and stakeholder engagement. The findings reveal that government and primary schools perform relatively well in establishing barrier-free infrastructure, deploying assistive technologies, implementing UDL-based strategies, and fostering community involvement. However, disparities persist across urban-rural and public-private divides, with senior-secondary and rural schools reporting lower levels of inclusion across most indicators. In addition to identifying performance variations across management types, school levels, and geographic locations, the study highlights systemic strengths in primary-level engagement and public sector alignment with policy mandates. The use of Universal Design for Learning (UDL), early screening mechanisms, and stakeholder collaboration was found to be more concentrated at the foundational stages, indicating a strong policy push toward early inclusion. However, the decrease in inclusive provisions at the senior-secondary level and in rural settings signals the need for more equitable and vertically integrated implementation strategies. The analysis underscores the need for systemic, multi-tiered efforts to ensure continuity and depth in inclusive education practices. The study findings reiterate the

need for effective policy refinement, institutional capacity-building, and sustained community partnerships to advance equitable and holistic education for all learners.

Key Words: *Educational Equity, Haryana, Inclusive Education, Right to Education, Inclusive Pedagogy*

Introduction :

Inclusive education in India has emerged as a vital policy and pedagogical response to the deeply rooted inequalities that have historically marginalized children based on disability, caste, gender, geography, and socioeconomic status. Anchored in the Right to Education Act (2009), the National Policy on Education (2020), and guided by international frameworks such as the UN Convention on the Rights of Persons with Disabilities (CRPD), inclusive education in India emphasizes the right of every child to access quality education within a common learning environment, regardless of individual differences (Bhatia and Singh, 2021). The shift from a segregated model to one of integration and full inclusion has required substantial reforms in policy, curriculum, teacher training, and infrastructural design (Mukherjee, 2017; Lakshmi, 2018; Ray and Ghanta, 2022). Yet, despite progressive frameworks, implementation remains uneven and fragmented, especially across rural and under-resourced settings where infrastructural gaps and attitudinal barriers continue to hinder equitable access (Mukherjee and Bear, 2017). The integration of children with special needs into mainstream schools is often hindered by inadequate infrastructural accommodations, limited assistive technologies, and insufficient professional development for teachers (Kaur and Salian, 2025). While the concept of resource rooms, special educators, and individualized education plans has gained traction, their availability remains inconsistent across states and districts (Sacks and Haider, 2017). Moreover, teachers frequently lack the practical training to address diverse learning needs within large, heterogenous classrooms, which can lead to exclusionary practices despite well-intentioned policies. Inclusive education must go beyond mere physical integration as it demands pedagogical flexibility, culturally responsive teaching methods, and curriculum adaptations that honor the pace and style of each learner (Aneraye, 2024).

Another layer of complexity arises from the intersectionality of exclusion. Children from Scheduled Castes, Scheduled Tribes, and minority communities often experience systemic discrimination that compounds barriers to inclusion (Singal, 2019). Gender norms further exacerbate disparities, particularly for girls with disabilities or those from conservative rural contexts where early marriage and domestic responsibilities interrupt formal education (Kalyanpur, 2008).

Implementing inclusive education in such cases demands not only school-level reform but broader socio-cultural transformation (Rangarajan et al., 2025). This involves engaging community stakeholders, sensitizing parents, and fostering environments where diversity is celebrated rather

than stigmatized. Policy efforts such as Samagra Shiksha, the National Education Policy 2020, and state-level inclusive education cells have attempted to consolidate resources and bridge existing service gaps. Yet, monitoring mechanisms and accountability structures often fall short, leading to discrepancies in actual versus reported inclusion rates. Budgetary allocations towards inclusive infrastructure, assistive devices, teacher training, and special pedagogy are often inadequate or diverted, revealing a misalignment between policy aspirations and on-the-ground realities. Civil society organizations and non-state actors have played a crucial role in piloting innovative inclusive practices, yet scaling these efforts systemically remains a challenge.

Study Area :

The study focuses on Hisar and Bhiwani districts located in the north western part of Haryana, India both significant in terms of demographic scale, socio-economic transitions, and educational relevance. Hisar, the third-largest district by area (4,627 sq km), had a population of approximately 1.74 million as per the 2011 Census. It witnessed a population growth of 13.45% from 2001 to 2011, though this growth was uneven, urban areas surged by 39.03% while rural areas saw a modest rise of 4.52%, indicating prominent rural-to-urban migration. The district comprises 270 villages spread across nine community development blocks and shares borders with Rajasthan and five other Haryana districts. While overall literacy stood at 72.89%, rural and female literacy remained noticeably lower, especially in blocks like Narnaund and Adampur. The district of Bhiwani with an area of 4,778 sq km, is one of Haryana's largest districts in terms of land area. Its population, as per the 2011 census, was about 1.63 million, making it the third most populous district after Faridabad and Hisar. Like Hisar, Bhiwani also exhibited rural-to-urban shifts, with urban population growth outpacing that in rural zones, notably in tahsils like Tosham and Dadri. The literacy rate in the district stood at 75.21%, yet female literacy lagged significantly behind male literacy (63.54% vs. 85.65%), particularly in rural segments.

Data sources & Methodology :

The study assessed the impact of inclusive education in the Hisar and Bhiwani districts of Haryana based on a primary survey that included 400 teachers, educators, and principals across schools located in these two districts. Among the schools surveyed, 65% were government schools while 35% were private schools. In terms of school type, 27% were primary schools, 18% secondary schools, and 55% were senior-secondary schools. Among the schools surveyed majority of schools were affiliated to State Board while some were affiliated to Central Boards. The majority of the schools surveyed were located in rural areas (78%) while 22% of the schools were situated in urban areas. Across the schools surveyed, Hindi was used as the medim of instruction in majority of the

schools. All schools were found to be equipped with essential amenities such as toilets and drinking water, ensuring basic hygiene and health standards are met. Furthermore, the schools had reliable water and power supply with significant provisions for power backup and firefighting equipment.

Health facilities including first aid were also found to be widely available. Libraries and computer labs were also present providing vital resources for learning. However, the availability of specialized infrastructure for inclusive education such as resource rooms for special education was found to be notably limited. The enrolment of Children with Special Needs (CWSN) was highest in the primary schools and comparatively lower in secondary and senior secondary levels. Government and rural schools predominantly were found to having smaller CWSN enrolments (1–5 students), while private and urban schools demonstrated higher enrolments. Primary schools, particularly in rural and government schools were found to be operating with minimal staff. However, at higher educational levels there is higher staff especially in urban and private institutions. The limited availability of trained special educators especially in government and rural schools presents a critical challenge to inclusive education implementation in the districts.

Result & Discussion :

Inclusive education in the Indian context, as outlined in the National Guidelines and Implementation Framework on Equitable and Inclusive Education (NGIFEIE), is not simply about integrating students with disabilities into mainstream classrooms rather it is about transforming the entire education ecosystem to embrace and support the diversity of learners. One of the fundamental requirements is the creation of barrier-free enabling environments in all learning spaces. This includes accessible school infrastructure such as ramps with handrails, adapted toilets, tactile pathways, and classrooms equipped with inclusive learning and teaching materials (LTMs). Schools are expected to offer physical, social, and pedagogical environments that allow every child including those from socio-economically disadvantaged groups, children with disabilities, linguistic minorities, and those facing gender-based exclusion to participate fully and effectively. Simultaneously, curricular and pedagogical adaptations form a critical component of inclusive education. The framework emphasizes a flexible curriculum rooted in the principles of Universal Design for Learning (UDL), which accommodates diverse learning styles through varied modes of engagement, representation, and expression. Teachers must be equipped to use differentiated instructional strategies, adopt multi-sensory teaching approaches, and integrate assistive technologies to meet the unique needs of each

learner. This flexibility extends to assessment practices, where inclusive evaluation methods are encouraged to ensure that children are assessed fairly, using tools that reflect their strengths and modes of learning. Equally important is the presence of trained personnel. All educators, from early childhood educators in Anganwadis to secondary school teachers, must be sensitized and professionally equipped to handle inclusive classrooms. Pre-service and in-service teacher education programs are required to integrate modules on equity, disability, gender, and socio-cultural responsiveness. Special education teachers with cross-disability training should be made available in school complexes or resource centers to offer individualized support. The framework also calls for collaboration with therapists, counselors, social workers, and community-based organizations to provide wraparound support services that address children's psychosocial and health-related needs. The role of stakeholders extends beyond school walls. Parents, local governance bodies, self-help groups, NGOs, and inter-ministerial agencies are expected to collaborate in identifying barriers, facilitating outreach, and ensuring accountability. Community-level advocacy campaigns are recommended to shift public attitudes, promote awareness about rights and entitlements, and encourage school enrolment and retention, especially among girls, transgender children, and children from migrant families or conflict-affected regions. Finally, governance structures such as School Management Committees (SMCs), district-level Equitable and Inclusive Education (EIE) cells, and resource centers are tasked with ensuring timely provisioning of inclusive infrastructure, aids and appliances, scholarship distribution, and referral services.

The present study investigates the state of inclusive education in Hisar and Bhiwani districts of Haryana based on extensive primary survey data to assess infrastructural provisions, teacher preparedness, digital integration, and institutional mechanisms. The analysis is based on the framework of the National Education Policy 2020 and the National Guidelines for Inclusive and Equitable Education (NGIFEIE). The study aims to generate comprehensive understanding on how inclusive education is evolving across spatial, managerial, and institutional contexts in in the state by parameters such as Infrastructure and accessibility, Teacher capacity and training, Curriculum and pedagogy, Early identification and intervention, Support services, Institutional mechanisms and governance and Stakeholder engagement and community involvement.

Infrastructure and accessibility :

The infrastructure and accessibility in schools across Hisar and Bhiwani districts reflects a moderately encouraging but stratified adoption of inclusive education provisions. Government schools exhibit a stronger commitment to inclusive infrastructure, with consistently higher percentages of ramps (85%), handrails (80%), and adapted toilets (75%) compared to private counterparts (Table 1). Similarly, primary schools outperform other levels, indicating greater emphasis on infrastructural accessibility at the foundational stage, with the highest presence of ramps (88%) and tactile paths (75%). Urban schools show a marginal advantage over rural ones in all indicators, particularly in signage (66% vs. 62%), though the gap is not stark. However, senior-secondary institutions consistently report the lowest presence of inclusive features, suggesting a decline in infrastructural prioritization as education progresses to higher levels.

Table 1 : Presence of Barrier-Free Enabling Environment (BFEe) Across Different Types of Schools

Type of School	Ramps (%)	Handrails (%)	Adapted Toilets (%)	Tactile Paths (%)	Signage (%)
Government	85	80	75	70	65
Private	78	72	68	65	60
Rural	80	75	70	68	62
Urban	82	78	72	70	66
Primary	88	83	78	75	70
Secondary	82	77	72	68	63
Senior-Secondary	78	73	68	65	60

Source : Primary Survey

In terms of the availability and functionality of assistive devices and accessible Learning and Teaching Materials (LTMs) across schools in Hisar and Bhiwani districts, with government institutions leading slightly over private ones (Table 2). Government schools report higher provisioning (85% for assistive devices and 80% for LTMs) compared to private institutions (78% and 75%, respectively), suggesting stronger public-sector alignment with inclusive infrastructure goals. While the rural-urban gap is minimal—both showing near-parity in support availability—urban schools maintain a modest edge. Disaggregated by school level, primary schools emerge as the best equipped, with 88% having

assistive devices and 85% LTMs, whereas senior-secondary schools lag slightly, recording the lowest figures in both categories.

Table 2 : Availability and Functionality of Assistive Devices and Accessible LTMs Across Different Types of Schools

Type of School	Assistive Devices (%)	Accessible LTMs (%)
Government	85	80
Private	78	75
Rural	80	78
Urban	82	79
Primary	88	85
Secondary	82	80
Senior-Secondary	78	76

Source : Primary Survey

Table 3 highlights notable disparities in the use of ICT, e-content, and assistive devices in classrooms for children with special needs across different school types and levels in Hisar and Bhiwani. Private schools lead slightly over government institutions in all three domains, suggesting relatively better digital infrastructure and pedagogical integration in the private sector. Urban schools also outperform rural ones, with a consistent margin indicating stronger adoption of inclusive technology in more developed areas. Primary schools report the highest usage rates across all components 85% for ICT, 80% for e-content, and 78% for assistive devices demonstrating a focused effort to embed inclusive practices at foundational levels. However, the usage drops progressively in secondary and senior-secondary schools, where the integration of assistive technologies and digital content is comparatively weaker.

Table 3 : Use of ICT, E-Content, and Assistive Devices in Classrooms for Children with Special Needs Across Different Types of Schools

Type of School	ICT Usage (%)	E-Content Usage (%)	Assistive Devices Usage (%)
Government	75	70	68
Private	80	78	75
Rural	72	68	65
Urban	78	75	72
Primary	85	80	78
Secondary	78	75	72
Senior-Secondary	70	68	65

Source : Primary Survey

While integration of digital platforms such as DIKSHA, SWAYAM, and local sign language resources is steadily expanding in Hisar and Bhiwani districts, it remains uneven across school types, locations, and levels (Table 4). Private schools exhibit higher rates of adoption across all three platforms compared to government institutions, with a notable gap in the use of local sign language resources (72% vs. 65%). Urban schools marginally outperform rural ones, underscoring better digital infrastructure and possibly more targeted initiatives. Primary schools lead in integration efforts, with 85% utilizing DIKSHA and 75% incorporating local sign language resources, suggesting a concentrated push toward inclusive digital tools in early education. However, the adoption rate steadily declines at the senior-secondary level where DIKSHA (70%), SWAYAM (68%), and sign language (65%) have lower integration.

Table 4 : Integration of Digital Platforms (DIKSHA, SWAYAM, and Local Sign Language Resources) Across Different Types of Schools

Type of School	DIKSHA Integration (%)	SWAYAM Integration (%)	Local Sign Language Resources Integration (%)
Government	75	70	65
Private	80	78	72
Rural	72	68	62
Urban	78	75	70
Primary	85	80	75
Secondary	78	75	70
Senior-Secondary	70	68	65

Source : Primary Survey

In terms of the establishment of resource rooms or centres that support inclusive education across schools in Hisar and Bhiwani districts. Government schools lead slightly with 78% reporting such facilities, while private institutions follow closely at 72%, indicating comparable institutional prioritization across management types (Table 5). Geographically, both rural and urban schools demonstrate similar provisioning rates 74% and 76% respectively suggesting balanced spatial distribution of inclusive support infrastructure. Primary schools show the highest establishment rate at 80%, highlighting a stronger focus on early-stage inclusion. This figure gradually declines at higher levels, with secondary schools at 75% and senior-secondary institutions at 70%, indicating a decline in resource-based support mechanisms as student progress through the educational system.

Table 5 : Establishment of Resource Rooms/Centres Across Different Types of Schools

Type of School	Percentage (%)
Government	78
Private	72
Rural	74
Urban	76
Primary	80
Secondary	75
Senior-Secondary	70

Source : Primary Survey

The analysis of inclusive education infrastructure and support mechanisms across schools in Hisar and Bhiwani districts shows that government schools generally show stronger provisioning in barrier-free infrastructure, assistive technologies, and resource room establishment, though private institutions demonstrate slightly higher integration of ICT, e-content, and digital platforms. Primary schools consistently emerge as the most inclusive across nearly every parameter ranging from infrastructure and teaching aids to digital tools and stakeholder engagement while senior-secondary institutions tend to lag behind. Urban schools have a marginal edge over rural schools in technological adoption and support services, yet the spatial disparity is not excessively wide indicating broad but unequal reach.

Teacher capacity and training :

The analysis of teacher capacity and training in Hisar and Bhiwani districts reveals a layered and context-sensitive picture of professional readiness for inclusive education. As frontline agents of pedagogical transformation, teachers' exposure to inclusive practices, adaptive strategies, and ongoing professional development plays a pivotal role in enabling equitable classroom environments. The primary survey finding shows that while the overall orientation toward inclusive pedagogy is

relatively promising, disparities persist across school levels, geographic locations, and management types (Table 6). In terms of foundational training in inclusive education and adaptive pedagogy, government schools demonstrate a marginally higher rate (78%) compared to private schools (75%) suggesting a stronger public-sector push toward inclusive practices. Urban schools lead in this domain with 80% of teachers trained, while rural schools lag behind at 72%, pointing to spatial inequities in training access. Primary schools record the highest percentage of trained teachers (85%), followed by secondary schools (78%), with senior-secondary institutions reporting only 70%, indicating a diminishing focus on training as educational stages progress.

Table 6 : Distribution of Teacher Preparedness, Pedagogical Competence, and Professional Development Access Across School Types and Levels (in percentage)

Type of School	Teachers Trained in Inclusive Education and Use of Adaptive Pedagogical Strategies Across Different Types of Schools	Teacher Confidence and Competency in Managing Multigrade and Diverse Classrooms Across Different Types of Schools	Access to Continuous Professional Development (CPD) and In-Service Training on Inclusive Pedagogy Across Different Types of Schools
Government	78	76	78
Private	75	72	75
Rural	72	70	72
Urban	80	78	80
Primary	85	80	85
Secondary	78	75	78
Senior-Secondary	70	73	70

Source : Primary Survey

Teacher confidence and competency in handling multigrade and diverse classrooms largely mirror the training patterns. Teachers in urban schools (78%) and primary levels (80%) report greater confidence, attributed perhaps to higher exposure to inclusive pedagogical tools and resources. Government schools slightly outperform private ones (76% vs. 72%), reinforcing their proactive alignment with inclusive objectives. Conversely, rural schools exhibit the lowest confidence level at 70%, underscoring the dual challenges of limited access to training and more complex, multigrade teaching environments. Notably, senior-secondary schools show an improvement in confidence (73%) despite lower training levels, which may reflect experience-based competence but also raises concerns about the absence of formal capacity-building. Furthermore, the access to continuous professional development (CPD) and in-service training further highlights these systemic variations. Urban schools again have better capacity (80%) compared to their rural counterparts (72%), while government institutions slightly are ahead of private ones (78% vs. 75%). Primary schools dominate this category as well, with 85% of teachers benefiting from CPD opportunities, reaffirming early education as a key area of investment for inclusive pedagogy. However, senior-secondary schools report the lowest access rate (70%), echoing the need for stronger institutional support systems at the upper levels where pedagogical interventions are increasingly required. In conclusion, the finding reveals that while Hisar and Bhiwani districts demonstrate commendable progress in building teacher capacity for inclusive education particularly at the primary and urban levels there are gaps in extending this support to senior-secondary stages, rural areas and private schools.

Curriculum and pedagogy :

As inclusion gains increasing policy traction, classroom-level implementation of Universal Design for Learning (UDL), equitable assessment tools, and individualized planning mechanisms plays a pivotal role in translating mandates into lived academic experiences for diverse learners. The findings from the primary survey suggests that while foundational efforts are in place, significant differentials persist across school types, geographic settings, and levels of schooling. The use of UDL strategies in classrooms appears relatively widespread, with government schools slightly leading at 78% compared to 75% in private institutions, suggesting comparable efforts across management types (Table 7). Urban schools (80%) outpace their rural counterparts (72%), pointing toward infrastructural and capacity-based advantages in urban settings. Primary schools register the highest adoption of UDL principles (85%), indicating stronger attention to inclusive pedagogy in early education. However, the percentage dips at the senior-secondary level (70%) indicating a weakening of inclusive instructional design as the curriculum becomes more complex and examination-focused.

Table 7: Adoption of Inclusive Curriculum Strategies and Support Mechanisms Across School Types and Educational Levels (in percentage)

Type of School	Use of Universal Design for Learning (UDL) Strategies in Classrooms Across Different Types of Schools	Access to Curriculum and Assessment Tools for Students with Diverse Learning Needs Across Different Types of Schools	Implementation of Individualized Education Plans (IEPs) for Students with Disabilities Across Different Types of Schools
Government	78	76	76
Private	75	72	72
Rural	72	70	70
Urban	80	78	78
Primary	85	80	80
Secondary	78	75	75
Senior-Secondary	70	73	73

Source: Primary Survey

In terms of access to curriculum and assessment tools tailored for students with diverse learning needs, a similar trend is evident. Government schools again lead modestly at 76%, followed by private schools at 72%. Urban institutions (78%) demonstrate better provisioning of inclusive assessment resources compared to rural schools (70%). Primary schools, with 80% reporting access, are again ahead of secondary (75%) and senior-secondary institutions (73%), confirming a stronger emphasis on inclusive tools in the foundational phase. The implementation of Individualized Education Plans

(IEPs) for students with disabilities presents a comparable pattern. Government schools report a 76% implementation rate, slightly higher than the 72% observed in private schools. Urban schools once again show stronger engagement (78%) compared to rural schools (70%), revealing spatial disparities in customized educational planning. While primary schools lead in IEP implementation at 80%, the figures decline to 75% in secondary and 73% in senior-secondary schools. Overall, the findings indicate a foundational integration of inclusive curricular strategies across schools in Hisar and Bhiwani, particularly at the primary level and in urban areas. However, the declining trend in UDL adoption, curricular accessibility, and IEP implementation at higher educational levels indicate the need for capacity-building, adaptive curriculum design, and systemic reinforcement to ensure that inclusive pedagogy is not only initiated but sustained across the full spectrum of schooling.

Early identification and intervention

Early identification and intervention services constitute the foundation of an inclusive education system, enabling timely support for children who exhibit developmental delays, learning difficulties, or disabilities. In Hisar and Bhiwani districts, the integration of such services is gradually gaining traction as reflected in the primary survey findings (Table 8). The presence of early screening mechanisms and the availability of intervention services both exhibits encouraging though uneven, patterns across school types, geographical locations, and educational levels. The presence of early screening mechanisms is marginally stronger in government schools (74%) compared to private ones (70%), indicating that public institutions are somewhat better aligned with state-mandated inclusive education protocols. Urban schools demonstrate a higher prevalence (76%) than rural counterparts (68%), indicating a more proactive institutional climate in identifying student needs in urban contexts. Across school levels, primary schools lead with 80% presence of early screening systems, while senior-secondary schools report just 69%. The findings underscores a stronger focus on early detection during foundational stages but with a decrease at higher levels potentially due to assumptions that screening is less critical at advanced educational stages.

Table 8: Availability of Early Screening and Intervention Services Across School Types, Geographies, and Educational Levels (in percentage)

Type of School	Presence of Early Screening Mechanisms Across Different Types of Schools	Availability of Early Intervention Services at Anganwadi, Primary School, or Resource Center Levels Across Different Types of Schools
Government	74	75
Private	70	71
Rural	68	69
Urban	76	77
Primary	80	82
Secondary	72	74
Senior-Secondary	69	70

Source: Primary Survey

When it comes to the availability of early intervention services whether through Anganwadi centers, primary schools, or resource centers similar trends persist. Government schools again show slightly higher provisioning (75%) than private institutions (71%), reflecting their broader engagement with public welfare schemes and integrated child development frameworks. Urban schools surpass rural ones (77% vs. 69%) in offering early intervention services, further reinforcing the rural-urban divide in resource access. In this regards, primary schools are more proactive with 82% reporting intervention availability, while the senior-secondary level trails at 70%. This demonstrates that while early stages are well-targeted, consistent intervention pathways throughout a child's educational journey are not yet fully institutionalized. The findings suggests that while Hisar and Bhiwani districts have made commendable strides in embedding early identification and intervention frameworks particularly within government-run, urban, and primary-level institutions gaps remain in rural, private,

and higher education contexts.

Support services :

The provision of student support services in the form of counselling, health care, and access to school psychologists and therapists is increasingly recognized as essential for fostering inclusive and responsive educational environments. In Hisar and Bhiwani districts, the presence of such services demonstrates moderate integration, with government schools marginally ahead at 73%, compared to 68% in private institutions (Table 9). Urban schools, with a 75% access rate, outperform rural ones (65%), suggesting better infrastructural and staffing capabilities in more developed areas. Across school levels, primary institutions show the most comprehensive support (78%), followed by secondary (70%) and senior-secondary schools (67%), reflecting a diminishing trend that mirrors earlier patterns in inclusive provisioning.

Table 9: Access to Student Support Services, Transport Facilities, and Timely Distribution of Educational Aids Across School Types and Levels (in percentage)

Type of School	Access to Counselling and Health Services, School Psychologists, and Therapists Across Different Types of Schools	Availability of Transport for Students with Disabilities or from Remote Areas Across Different Types of Schools	Timely Distribution of Scholarships and Aids Across Different Types of Schools
Government	73	68	72
Private	68	65	68
Rural	65	62	65
Urban	75	70	74
Primary	78	72	78
Secondary	70	67	70
Senior-Secondary	67	64	67

Source: Primary Survey

Transport availability for students with disabilities or those living in remote areas remains a critical enabler for access and retention in inclusive education. The primary survey findings indicate that government schools provide transport support in 68% of cases, slightly higher than the 65% recorded in private schools. Once again, urban areas (70%) fare better than rural ones (62%), illustrating spatial inequities in service reach. Primary schools report the highest level of transport provision (72%), whereas senior-secondary schools register the lowest (64%). These figures highlight the need for strengthened infrastructure to support equitable physical access, particularly in rural and higher-level institutions. Besides, the timely distribution of scholarships, aids, and learning appliances forms a vital component of equity in education, ensuring that students from marginalized backgrounds receive the support they are entitled to. Here, government schools again take the lead with a 72% distribution rate, compared to 68% in private schools. Urban institutions report stronger implementation (74%) than rural ones (65%), reaffirming the urban advantage in administrative efficiency. Distribution is most robust at the primary level (78%), while senior-secondary institutions show reduced effectiveness (67%), pointing toward bureaucratic bottlenecks or diminished focus as students advance through the system. Taken together, the findings on support services in Hisar and Bhiwani suggest that while foundational progress has been made particularly in government-managed, urban, and primary-level schools there are gaps in service availability especially in rural and senior-secondary schools.

Institutional mechanisms and governance :

Effective institutional mechanisms and governance are central to embedding inclusive education within school systems, ensuring that policy frameworks are not only articulated but actively implemented and monitored. In the districts of Hisar and Bhiwani, the strength and consistency of such mechanisms remain varied, particularly across different school types, geographic settings, and educational levels. The analysis of regular monitoring and policy integration practices offers insight into how well schools are aligned with inclusive education objectives under schemes like Samagra Shiksha. The presence of regular monitoring and evaluation processes based on inclusive indicators appears to be relatively modest across all institutions. Government schools report a marginally higher engagement (42%) compared to private schools (38%), indicating that inclusion-related oversight is more formalized. On the other hand, the rural schools have only 35% of them incorporating such monitoring protocols, while urban schools are slightly better where 40% schools have regular monitoring (Table 10). Primary schools fare relatively better (45%) than secondary (39%) and senior-secondary schools (37%), suggesting that emphasis on inclusive evaluation diminishes as schools progress to higher levels.

Table 10: Institutional Monitoring and Policy Integration of Inclusive Education Across School Types, Locations, and Levels (in percentage)

Type of School	Regular Monitoring and Evaluation Processes Based on Inclusive Indicators Across Different Types of Schools	Integration of Inclusive Education in State and District Annual Work Plans (AWPs) Under Samagra Shiksha Across Different Types of Schools
Government	42	55
Private	38	50
Rural	35	48
Urban	40	52
Primary	45	60
Secondary	39	53
Senior-Secondary	37	51

Source: Primary Survey

The integration of inclusive education in State and District Annual Work Plans (AWPs) under Samagra Shiksha reflects a stronger institutional commitment but still lacks universal penetration. Government schools again lead with 55% alignment, suggesting more structured engagement with centrally driven planning frameworks, while private schools follow with 50%. Spatially, urban institutions show slightly greater integration (52%) than rural ones (48%), reflecting marginally better administrative coordination in urban educational systems. Across levels, primary schools demonstrate the highest inclusion of equity-focused measures in AWPs at 60%, while secondary and senior-secondary schools report decreasing levels of integration at 53% and 51%, respectively. These findings indicate that while policy intent is present, execution still requires systemic reinforcement. Overall, institutional mechanisms and governance structures for inclusive education in Hisar and

Bhiwani demonstrate a foundational, yet uneven, implementation pattern. Government and primary-level schools are relatively better aligned with inclusive planning and evaluation, but consistent gaps persist across private, rural, and senior-secondary contexts.

Stakeholder engagement and community involvement :

Stakeholder engagement and community involvement serve as critical pillars in advancing inclusive education, particularly in contexts marked by social and infrastructural disparities. In Hisar and Bhiwani districts, inclusive education initiatives are being gradually localized through School Management Committees (SMCs), community organizations, and awareness campaigns. However, the degree of stakeholder participation remains varied across school types, geographies, and educational levels, reflecting both institutional commitment and prevailing societal attitudes toward inclusion (Table 11). The active involvement of SMCs with parents of Children with Special Needs (CWSN) is moderately evident with government schools reporting a higher engagement level at 48% compared to 42% in private institutions. This suggests that the mandated participatory structures under the Right to Education Act may be more rigorously implemented in public schools. Spatially, urban schools perform slightly better (45%) than rural ones (40%), though the overall figures point to a need for more inclusive, dialogic engagement between school authorities and parents. By educational level, primary schools show the most active involvement (50%), underscoring a greater sensitivity to parent-school collaboration at foundational stages, which is lower at the senior-secondary level (44%).

Table 11: Levels of Stakeholder Engagement and Community Participation in Inclusive Education Across School Types and Contexts (in percentage)

Type of School	Active Involvement of School Management Committees (SMCs) with Parents of CWSN Across Different Types of Schools	Collaboration with Community-Based Organizations, NGOs, and Volunteers Across Different Types of Schools	Community Participation in Awareness Campaigns Promoting Inclusion Across Different Types of Schools
Government	48	52	50
Private	42	47	45
Rural	40	45	43

Urban	45	50	48
Primary	50	55	53
Secondary	46	49	47
Senior-Secondary	44	48	46

Source: Primary Survey

Collaboration with community-based organizations (CBOs), NGOs, and volunteers displays a similar distribution pattern. Government schools have shown 52% engagement, while private schools follow at 47%, signaling a stronger interface between public institutions and civil society actors. Urban schools (50%) exhibit greater partnerships with external stakeholders than rural schools (45%), likely reflecting better access to organizational networks and resources in urban settings. Among school levels, primary institutions report the most consistent collaboration (55%), while secondary (49%) and senior-secondary schools (48%) reveal a gradual decline in external engagement, indicating a diminishing of community-based support as children move through the educational ladder. Community participation in awareness campaigns promoting inclusion is another essential component of stakeholder involvement. In this regard, government schools again fare slightly better (50%) than private ones (45%), though the overall levels remain modest. Urban schools show marginally higher participation rates (48%) in comparison to rural ones (43%), suggesting more frequent mobilization or exposure to awareness efforts in urban localities. By educational stage, primary schools report the highest community involvement (53%), reinforcing earlier trends of stronger inclusion efforts at lower levels. The participation rate drops at secondary (47%) and senior-secondary (46%) levels, hinting at missed opportunities for sustained public engagement throughout a child's schooling journey. In conclusion, while Hisar and Bhiwani districts demonstrate foundational efforts in engaging stakeholders for inclusive education, the extent of community participation remains uneven and generally moderate. Government and urban schools show relatively higher involvement, and primary schools consistently lead across parameters, indicating where resources and attention are currently concentrated.

The findings from the primary survey shows that the schools in Hisar and Bhiwani districts generally are working towards infrastructural provisioning, assistive resources, professional training, and collaboration with community stakeholders, reflecting stronger alignment with public policy

mandates. Urban institutions consistently outperform rural ones across most indicators, including technological adoption, early intervention, support services, and institutional governance suggesting spatial inequities in resource distribution and administrative capacity. Primary schools are more focused on proactively engaging inclusive education demonstrating the highest rates of inclusive infrastructure, teacher preparedness, UDL strategies, and stakeholder engagement, while senior-secondary schools trail behind in nearly every category, indicating a decline in inclusive emphasis as education progresses. Although private institutions show competitive performance in digital integration and classroom technology usage, they slightly lag behind in training and systemic accountability.

Conclusion :

This study provides an evidence-based exploration of inclusive education in Haryana with a specific focus on districts of Hisar and Bhiwani. Based on the empirical analysis of a survey of 400 school functionaries, the analysis demonstrates a multi-layered implementation of policies regarding inclusive education at the institutional, geographical, and pedagogical level. Inclusive frameworks like RTE Act, NEP 2020, the NGIFEIE have inspired fundamental progress, especially in government-controlled and primary-level schools, but fail largely in terms of continuity and depth of the implementation among senior-secondary schools, rural and private schools. Key areas such as barrier-free infrastructure, assistive technology, teacher capacity, early identification, curricular flexibility, and stakeholder engagement have all seen varying degrees of progress. Government schools demonstrate relatively strong alignment with public policy directives, leading in infrastructure, trained personnel, and community outreach. Urban schools consistently perform better than their rural counterparts, pointing toward infrastructural and administrative disparities. Primary schools emerge as the most inclusive environments, with high levels of investment in teacher training, UDL-based curriculum strategies, and support services. However, the diminishing emphasis on inclusive practices in senior-secondary institutions underlines a critical challenge: the need to extend support mechanisms across the entire educational continuum. The study also underscores the importance of systemic governance and stakeholder involvement. While monitoring mechanisms and institutional accountability structures exist, their penetration and effectiveness remain moderate. School Management Committees, local NGOs, and community groups play a vital yet underutilized role in fostering inclusive mindsets and practices. Moreover, the findings highlight that although there is momentum in the adoption of digital tools and assistive content, a digital divide remains across management and locational lines. In conclusion, inclusive education in Hisar and Bhiwani is transitioning from aspirational policy to practical implementation, but the pathway is uneven. There is scope for policy attention that must shift toward scaling best practices across underperforming

domains to consolidate progress and ensure equitable outcomes. This includes expanding professional development for teachers, enhancing infrastructural support in senior-secondary and rural schools, strengthening community partnerships, and institutionalizing rigorous monitoring and feedback systems.

References

1. Aneraye, M. A. V. (2024). Inclusive Education in India: Issues and Conflicts. International Journal of Multidisciplinary Research and Explorer, 4(3), 8-29.
2. Bhatia, R., & Singh, R. (2021). Inclusion: Historical perspectives, inclusive education and current status. Ilkogretim Online, 20(1), 8587-8605.
3. Kalyanpur, M. (2008). Equality, quality and quantity: challenges in inclusive education policy and service provision in India. International Journal of Inclusive Education, 12(3), 243-262.
4. Kaur, R., & Salian, R. H. (2025). Teacher perspectives and barriers in implementing inclusive education for Indian children with special needs: A pilot study. British Journal of Special Education, 52(1), 4-17.
5. Lakshmi, R. (2018). Inclusive education in India: Challenges and prospects. International Journal of Innovative Research in Engineering & Multidisciplinary Physical Sciences, 6(5), 38-41.
6. Mukherjee, K., & Bear, S. (2017). The challenges and opportunities to implement inclusive education in West Bengal. International Journal of Humanities and Social Science Invention, 6(12), 38-43.
7. Mukherjee, M. (2017). Global design and local histories: Culturally embedded meaning-making for inclusive education. International Education Journal: Comparative Perspectives, 16(3), 32-48.
8. Rangarajan, R., Sharma, U., & Grové, C. (2025). Inclusion and equity in India's new National Education Policy (NEP): an analysis using the Context Led Model of Education Quality. International Journal of Inclusive Education, 29(6), 975-995.
9. Ray, S., & Ghanta, B. (2022). Present status of inclusive education in India. International Journal of Engineering Research Updates, 3(02), 001-007.
10. Sacks, L. H., & Haider, S. (2017). Challenges in implementation of individualized educational plan (IEPs): Perspectives from India and the United States of America. Indian Journal of Health & Wellbeing, 8(9).
11. Singal, N. (2019). Challenges and opportunities in efforts towards inclusive education: Reflections from India. International journal of inclusive education, 23(7-8), 827-840.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 84–91

Urban Ecology and Wildlife Coservation

SANTOSH KUMARI
ASSISTANT PROFESSOR-ZOOLOGY,
GOVT. COLLEGE RAWATSAR, HANUMANGARH, RAJASTHAN.

Abstract :

Urban ecology is an interdisciplinary field that examines the interactions between living organisms and their urban environments. With the rapid pace of urbanization across the globe, cities are increasingly becoming complex ecosystems that host a variety of wildlife species, both native and non-native. However, the expansion of urban areas often leads to habitat fragmentation, pollution, resource scarcity, and increased human-wildlife conflicts. These changes pose significant threats to biodiversity, especially to species that are sensitive to environmental alterations. Wildlife conservation within urban landscapes is a growing concern, as cities encroach upon natural habitats and create novel ecosystems. Urban wildlife conservation seeks to balance development with ecological preservation by protecting existing green spaces, restoring degraded habitats, and designing wildlife-friendly infrastructure. Urban parks, wetlands, green roofs, and wildlife corridors play a vital role in maintaining ecological functions and providing safe havens for various species. In addition, public awareness, education, and community participation are essential components of successful urban conservation strategies. The concept of coexistence is central to urban ecology. Rather than viewing wildlife as a nuisance, cities must integrate biodiversity considerations into planning and policy frameworks. Urban ecology also emphasizes the importance of understanding species' adaptability, behavioral changes, and the ecological roles they play within urban settings. Birds, small mammals, insects, and even large mammals like leopards in Indian cities are adapting in unique ways to urban pressures.

Keywords : Urban ecology, wildlife conservation, urbanization, habitat fragmentation, biodiversity, human-wildlife conflict, green spaces, ecological restoration, urban planning, wildlife corridors, ecosystem services, species adaptation, urban biodiversity, environmental sustainability, community participation.

Article :

Urban ecology is an emerging interdisciplinary field that studies the interactions between living organisms and their urban environments. As cities continue to grow rapidly around the world, the natural landscapes are being transformed into built environments, often leading to significant ecological consequences. Urbanization alters land use, fragments natural habitats, increases pollution levels, and places pressure on local biodiversity. In this context, wildlife conservation becomes a critical concern, as many species struggle to adapt to the fast-changing urban ecosystems. Despite these challenges, cities are not devoid of life. Many species—birds, insects, mammals, and reptiles—have shown remarkable adaptability and now thrive in urban environments. Urban ecology aims to understand these dynamics by examining how ecosystems function within cities and how human activities influence biodiversity. It also seeks to develop strategies for sustainable coexistence between humans and wildlife. Wildlife conservation in urban areas involves preserving and restoring green spaces, creating ecological corridors, and incorporating nature-sensitive designs in urban planning. It also relies on community awareness, education, and policy initiatives that promote harmonious relationships between humans and the natural world. As urban populations grow, the need to integrate ecological thinking into city development becomes increasingly vital. Thus, the study of urban ecology and wildlife conservation is not only about protecting species but also about creating healthier, more resilient, and sustainable cities for the future.

Nature and Components of Urban Ecosystems :

Urban ecosystems are complex and dynamic systems shaped by both natural processes and human interventions. Unlike natural ecosystems, urban ecosystems are characterized by a high density of human population, built infrastructure, modified land use, and altered resource flows. These ecosystems include not only the physical and biological components found in cities—such as air, water, soil, vegetation, animals, and microorganisms—but also the socioeconomic and cultural elements that influence their function and structure. The nature of urban ecosystems is therefore highly anthropocentric, with human activities acting as the dominant force in shaping ecological interactions. The physical environment in urban ecosystems is often heavily modified. Buildings, roads, and pavements replace natural surfaces, affecting the natural hydrological cycle and energy balance. These changes lead to the urban heat island effect, where cities experience higher temperatures than surrounding rural areas due to heat-absorbing materials like concrete and asphalt. Water bodies are often channeled or covered, leading to changes in aquatic habitats and reduced groundwater recharge. Soil in urban areas is frequently compacted, contaminated, or removed altogether, affecting plant growth and microbial activity. Biologically, urban ecosystems may seem less diverse than their

rural or wild counterparts, but they support a unique assemblage of species adapted to city life. These include urban-adapted birds, rodents, insects, and certain plant species that can thrive in disturbed and fragmented habitats. Urban biodiversity is often a mix of native species and non-native or invasive species introduced through human movement and trade. While some species may be displaced due to habitat loss, others, like pigeons, sparrows, crows, and stray dogs, become dominant and exploit the opportunities provided by human waste and altered environments. One of the defining components of urban ecosystems is human activity itself. Cities are centers of consumption, energy use, and waste generation, and these activities significantly influence ecological processes. The socio-economic status of neighborhoods, planning decisions, transportation systems, and industrial activities all contribute to the ecological character of a city. Additionally, cultural attitudes towards nature—such as preferences for manicured lawns over native vegetation—also shape the biodiversity and ecological health of urban areas. Green spaces, such as parks, gardens, green roofs, and urban forests, play a vital role in maintaining ecological balance within cities. They serve as habitats for wildlife, improve air and water quality, regulate temperature, and offer recreational and aesthetic benefits to urban dwellers. Urban wetlands, though often undervalued, provide essential services such as flood control, groundwater recharge, and habitat for aquatic species. Even small patches of vegetation or roadside trees contribute to the ecological value of the urban landscape.

Impact of Urbanization on Wildlife :

Urbanization has a profound and often detrimental impact on wildlife. As cities expand, natural habitats are fragmented or completely destroyed to make way for roads, buildings, and infrastructure. This leads to the displacement of many species that rely on continuous tracts of forest, grasslands, or wetlands for survival. Fragmented habitats isolate animal populations, reduce genetic diversity, and make it difficult for species to find food, mates, or shelter. Additionally, the introduction of artificial light, noise, and pollution disrupts natural behaviors such as feeding, mating, and migration. Many sensitive species decline or disappear from urban areas altogether, while a few adaptable species, like pigeons, rats, and stray dogs, tend to dominate. Human-wildlife conflicts also increase with urbanization, as animals often venture into human settlements in search of food or due to habitat loss. This leads to negative encounters, injury, or even death for both humans and animals. Moreover, urban areas often become hotspots for invasive species, which outcompete native wildlife and alter local ecosystems. The overall result is a significant reduction in biodiversity and ecosystem health. Therefore, the unchecked spread of urbanization poses a serious threat to wildlife, calling for urgent measures to integrate conservation into urban planning and development processes.

Adaptation of Wildlife to Urban Areas :

Despite the challenges posed by urbanization, many wildlife species have shown remarkable adaptability to urban environments. Urban areas, though heavily modified, offer new niches and resources that some animals learn to exploit. Species such as pigeons, crows, sparrows, rats, raccoons, monkeys, and even leopards in some Indian cities have adapted to the presence of humans, altered food sources, and fragmented habitats. These animals often change their feeding habits, become more nocturnal to avoid human interaction, and use man-made structures like buildings, bridges, and drains for nesting or shelter. Urban-adapted birds, for instance, may use artificial lighting to extend their foraging time. Some species also exhibit behavioral and physiological changes to cope with stress, pollution, and noise. For example, certain birds modify their calls to be heard over urban noise. Mammals may alter their movement patterns to avoid traffic and human activity. This process of adjustment is known as "synurbization," where species gradually become suited to city life. However, while such adaptations allow certain species to thrive, they also create an imbalance, as less adaptable species decline. Understanding these adaptations helps in developing urban conservation strategies that support both resilient species and those struggling to survive in human-dominated landscapes.

Conservation Strategies in Urban Settings :

Conservation in urban settings is both a challenge and a necessity, as cities continue to expand and natural habitats shrink. Effective urban conservation strategies aim to protect biodiversity, restore ecological balance, and create sustainable environments for both wildlife and humans. One of the most important strategies is the preservation and enhancement of green spaces such as parks, botanical gardens, urban forests, and community gardens. These areas serve as vital habitats for urban wildlife, offering food, shelter, and breeding grounds. Additionally, green infrastructure like green roofs, vertical gardens, and bio-swales contribute to habitat creation while enhancing urban aesthetics and mitigating pollution.

Wildlife corridors and eco-bridges are crucial for maintaining connectivity between fragmented habitats, allowing species to move safely across urban landscapes. Restoration of degraded ecosystems, such as wetlands and riparian zones, helps revive lost biodiversity and ecosystem services. Urban planning must integrate ecological principles by adopting nature-sensitive designs and zoning regulations that limit encroachment on sensitive areas. The promotion of native vegetation over ornamental species supports local food chains and improves resilience against invasive species. Public awareness and community participation are essential for the success of conservation efforts. Citizen science programs, school initiatives, and local NGO involvement can foster a sense of environmental responsibility and stewardship among urban residents. Moreover, supportive government policies,

environmental laws, and enforcement mechanisms provide a necessary institutional framework for sustainable urban biodiversity management. Ultimately, urban conservation strategies must be inclusive, adaptive, and scientifically informed to ensure that cities evolve as resilient and biodiverse ecosystems.

Policy and Urban Planning Integration :

Integrating environmental policy with urban planning is essential for promoting sustainable development and biodiversity conservation in cities. Urban growth, if left unregulated, can lead to unchecked exploitation of natural resources, habitat destruction, and a decline in ecological quality. Therefore, city planning must incorporate ecological considerations from the outset, aligning infrastructure development with environmental protection. This requires a multidisciplinary approach where urban planners, ecologists, architects, and policymakers collaborate to design nature-inclusive urban spaces.

One key aspect of policy integration is the identification and protection of ecologically sensitive zones, such as wetlands, forests, and hill slopes, through zoning regulations and building codes. Policies should mandate the inclusion of green infrastructure like parks, urban forests, rain gardens, and green roofs in development projects. Environmental Impact Assessments (EIAs) must be compulsory for major urban projects to assess their ecological footprint before implementation. Furthermore, the promotion of low-impact development and compact city models can minimize land use while maximizing ecological efficiency. In India, policies like the Wildlife Protection Act (1972), Environment Protection Act (1986), and the National Urban Policy Framework (2018) provide legal support for integrating conservation into urban governance. Smart City initiatives also offer opportunities to incorporate sustainability goals. However, the implementation of these policies often faces challenges due to weak enforcement, lack of coordination between departments, and insufficient public participation. To make urban areas resilient and biodiversity-friendly, planning policies must be forward-looking, inclusive, and strictly enforced. A long-term vision, backed by strong legislation and community engagement, is crucial for harmonizing urban growth with ecological well-being.

Community Involvement and Environmental Education :

Community involvement and environmental education are crucial pillars in the conservation of urban ecosystems and wildlife. Cities are not only centers of development but also of civic engagement, where collective efforts can significantly influence environmental outcomes. When local communities are actively involved in conservation initiatives, they develop a sense of ownership and responsibility toward their natural surroundings. Urban residents, when made aware of the ecological importance of green spaces and wildlife, are more likely to support protective measures and participate

in restoration activities.

Environmental education, both formal and informal, plays a vital role in shaping attitudes and behaviors. Schools, colleges, and community centers can introduce ecological learning through workshops, nature walks, urban gardening, and citizen science projects. These initiatives help individuals, especially youth, understand the interdependence between humans and nature. Public campaigns, awareness drives, and digital media can also promote eco-friendly lifestyles, waste reduction, and the value of biodiversity.

Citizen-led projects such as tree planting, habitat clean-ups, bird-watching groups, and biodiversity mapping are effective ways to engage the community in hands-on conservation. Moreover, collaboration with resident welfare associations, local NGOs, and environmental volunteers ensures that conservation efforts are decentralized and tailored to the specific needs of neighborhoods. Government bodies and urban planners must recognize the role of public participation in successful policy implementation. By empowering citizens through knowledge and opportunities for involvement, cities can foster a culture of environmental stewardship. Ultimately, an environmentally educated and engaged community forms the foundation of a resilient and biodiverse urban future.

Research and Technology in Urban Ecology :

Research and technology play a vital role in advancing our understanding of urban ecology and enhancing wildlife conservation efforts in cities. Urban ecosystems are complex and rapidly changing, requiring scientific inquiry to monitor biodiversity, assess ecological health, and guide evidence-based planning. Through interdisciplinary research involving ecology, urban planning, sociology, and environmental science, scholars can analyze how urbanization impacts species distribution, behavior, and habitat quality. This research is essential for identifying threatened species, ecological hotspots, and effective conservation strategies tailored to urban contexts.

Technological advancements have greatly enhanced urban ecological research. Geographic Information Systems (GIS) and remote sensing technologies enable accurate mapping of land use changes, green cover, and habitat fragmentation. These tools help urban planners and ecologists identify areas for restoration, corridor creation, or protection. Camera traps, bioacoustics, drone surveys, and satellite imagery are increasingly used to monitor wildlife presence and movement patterns in urban areas, even in inaccessible regions.

Additionally, mobile applications and online platforms facilitate citizen science, allowing the public to contribute data on species sightings, pollution levels, and habitat conditions. These participatory tools not only enrich scientific databases but also increase public engagement in conservation.

Urban ecology research also supports policy formulation by providing data on ecosystem services such as air purification, carbon sequestration, and flood control provided by urban green spaces. As cities face growing environmental challenges, integrating advanced research and technology into urban management ensures more informed, adaptive, and resilient planning that benefits both people and biodiversity.

Urban Ecology and Sustainable Development Goals (SDGs) :

Urban ecology plays a pivotal role in achieving the United Nations' Sustainable Development Goals (SDGs), particularly as urban areas continue to expand and host a growing percentage of the global population. The SDGs emphasize the need for inclusive, safe, resilient, and sustainable cities, which directly aligns with the principles of urban ecology that advocate for the harmonious coexistence of humans and nature within urban environments. Through the lens of urban ecology, cities are viewed not merely as built environments but as living ecosystems where ecological health, social equity, and economic prosperity must be balanced.

By promoting the conservation of urban biodiversity, green infrastructure, and ecological corridors, urban ecology contributes to SDG 15 (Life on Land), which focuses on protecting, restoring, and promoting the sustainable use of terrestrial ecosystems. It also supports SDG 13 (Climate Action) by enhancing urban resilience through ecosystem-based adaptation strategies, such as restoring wetlands, increasing tree cover, and creating green roofs to mitigate the urban heat island effect and reduce flood risks. Furthermore, clean air and water, often direct benefits of a healthy urban ecosystem, are closely tied to SDG 3 (Good Health and Well-being) and SDG 6 (Clean Water and Sanitation). Urban ecological approaches encourage integrated urban planning, community participation, and inter-sectoral collaboration, thus promoting SDG 17 (Partnerships for the Goals). They also ensure that marginalized communities have access to green spaces and ecosystem services, supporting SDG 10 (Reduced Inequalities). In essence, urban ecology provides a framework for embedding sustainability into the fabric of city life. By aligning ecological practices with the SDGs, cities can evolve into more resilient, equitable, and biodiverse spaces that not only meet the needs of current generations but also preserve the environment for the future.

Future Challenges and Opportunities :

Urban expansion continues to threaten natural habitats, leading to increased fragmentation and loss of biodiversity. Climate change adds further stress, altering urban ecosystems unpredictably. Pollution, invasive species, and weak enforcement of environmental laws pose additional risks. Human-wildlife conflicts may intensify as animals are forced into shrinking green spaces, and public apathy or lack of awareness can hinder conservation efforts. Emerging technologies like GIS, drones, and AI

offer new ways to monitor and manage urban biodiversity. Sustainable urban planning, green infrastructure, and eco-sensitive designs can help integrate nature into cityscapes. Community-driven initiatives and environmental education are growing, fostering public participation. With proper policy support and interdisciplinary research, cities have the potential to become models of biodiversity conservation and ecological resilience in the 21st century.

Conclusion :

Urban ecology and wildlife conservation have become vital components in the pursuit of sustainable urban development. As cities continue to expand, preserving biodiversity and maintaining ecological balance within urban landscapes is both a challenge and a necessity. The integration of green infrastructure, such as parks, wetlands, and ecological corridors, offers critical habitats for wildlife and enhances the quality of life for urban residents. Conservation efforts must focus on fostering coexistence between humans and wildlife, supported by inclusive urban planning, community engagement, and informed policy-making. Recognizing the adaptive capacity of many species to urban environments can guide more effective conservation strategies.

References :

1. Niemelä, J. Urban Ecology: Patterns, Processes, and Applications, 2011, Oxford University Press
2. Miller, J. R., & Hobbs, R. J., Conservation Where People Live and Work, 2002, Conservation Biology (Journal), Wiley-Blackwell
3. Alberti, M., Cities as Ecosystems: Principles and Practices, 2008, Island Press
4. Singh, Rajendra, Paryavaran Aur Nagariya Jeev-Vividhta, 2015, Rajasthan Hindi Granth Academy, Jaipur
5. Gadgil, Madhav & Guha, Ramachandra, This Fissured Land: An Ecological History of India, Year: 1992, Oxford University Press.

E mail-sranwan87@gmail.com.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 92–96

राजस्थान का भूगोल : प्राकृतिक विविधता और भौगोलिक विशेषताएँ

Chhavinder Singh /Sukhmahender Singh
(M.A., B.ED.,NET Geography)
Geography, Sadulshahar Degree College, Sadulshahar.

परिचय :–

राजस्थान भारत का सबसे बड़ा राज्य है, जो देश के पश्चिमोत्तर भाग में स्थित है। क्षेत्रफल की दृष्टि से यह भारत का 10.4 प्रतिशत हिस्सा है। यह राज्य न केवल अपने ऐतिहासिक और सांस्कृतिक वैभव के लिए प्रसिद्ध है, बल्कि इसकी भौगोलिक संरचना, जलवायु, वनस्पति, जीव–जंतुओं और मरुस्थलीय विशेषताओं के कारण भी विशेष महत्व रखता है। राजस्थान की भौगोलिक संरचना विविधतापूर्ण है – यहाँ थार का मरुस्थल, अरावली पर्वतमाला, उपजाऊ मैदान, लवणीय झीलें और खारे जल के स्त्रोत मिलते हैं।

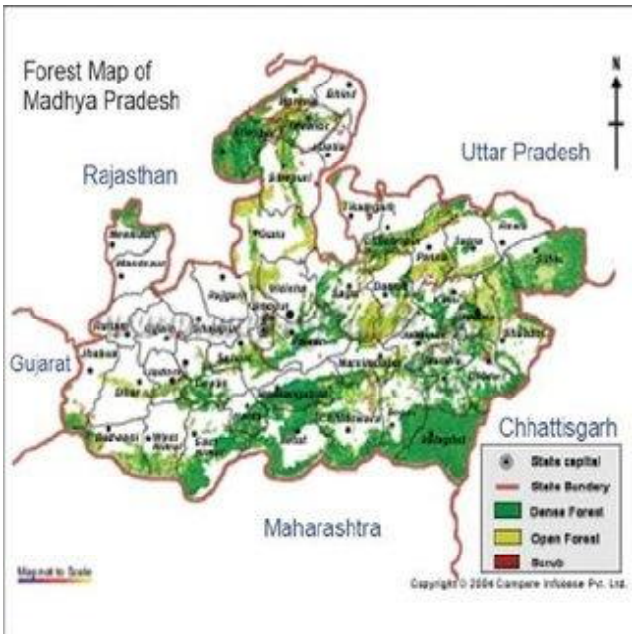

1. अवस्थिति और सीमाएँ :–

राजस्थान भारत के उत्तर–पश्चिमी कोने में 23°03' से 30°12' उत्तरी अक्षांश और 69°30' से 78°17' पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित है। इसकी सीमाएँ पाकिस्तान के पंजाब और सिंध प्रांतों के साथ लगभग 1070 किलोमीटर तक लगती हैं, जबकि भारत के भीतर यह पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और गुजरात से घिरा हुआ है।

2. क्षेत्रफल और प्रशासनिक विभाजन :–

राजस्थान का कुल क्षेत्रफल लगभग 3,42,239 वर्ग किलोमीटर है। प्रशासनिक रूप से यह राज्य 50 से अधिक जिलों में विभाजित है। जयपुर इसकी राजधानी और सबसे बड़ा शहर है।

3. स्थलाकृति (Relief Features) :–

राजस्थान की स्थलाकृति चार प्रमुख भागों में बाँटी जा सकती है :

(i) थार मरूस्थल (Marusthali)

राज्य का पश्चिमी हिस्सा थार मरुस्थल कहलाता है। यहाँ रेत के टीलों, मरुस्थलीय वनस्पति और कम वर्षा वाले क्षेत्र मिलते हैं। यह क्षेत्र जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर और जोधपुर जिलों तक फैला हुआ है।

(ii) अरावली पर्वत श्रृंखला :-

अरावली पर्वतमाला भारत की सबसे पुरानी पर्वतमालाओं में से एक है, जो राजस्थान के दक्षिण–पश्चिम से उत्तर–पूर्व दिशा में विस्तृत है। यह श्रृंखला राज्य को दो भागों में बाँटती है : पश्चिमी शुष्क और पूर्वी अर्द्ध–आर्द्र।

(iii) पूर्वी राजस्थान का पठारी और मैदान क्षेत्र :-

अरावली के पूर्वी भाग में कोटा, बूंदी, भीलवाड़ा, जयपुर, सवाई माधोपुर, भरतपुर और अलवर जैसे जिले आते हैं। यह क्षेत्र कृषि के लिए अनुकूल है क्योंकि यहाँ नदियाँ और उपजाऊ मिट्टी उपलब्ध है।

(iv) दक्षिणी पर्वतीय और पठारी भाग :-

उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा और चित्तौड़गढ़ जिलों में पहाड़ियाँ, पठारी क्षेत्र और वन पाए जाते हैं। यहाँ माही और सोम जैसी नदियाँ बहती हैं।

4. जलवायु :-

राजस्थान की जलवायु मुख्यतः उष्ण कटिबंधीय और अर्ध–शुष्क प्रकार की है। यहाँ गर्मियाँ अत्यंत गर्म और सर्दियाँ अपेक्षाकृत ठंडी होती हैं।

– गर्मी का तापमान : 45°C से अधिक।
– सर्दियों में तापमान : शून्य के पास तक पहुँच जाता है।
– वर्षा : औसतन 100:500 मिमी (पश्चिम में) से 1000 मिमी (पूर्वी जिलों में) तक होती है।
मुख्यतः वर्षा का स्रोत दक्षिण–पश्चिम मानसून होता है।

5. नदियाँ :-

राजस्थान में अधिकांश क्षेत्र जलविहीन या अल्पजलप्राप्त है, परंतु कुछ महत्वपूर्ण नदियाँ यहाँ बहती हैं:

- **चंबल :** राज्य की एकमात्र सदानीरा नदीय कोटा, बारां, सवाई माधोपुर से होकर बहती है।
- **बनास :** मेवाड़ क्षेत्र की प्रमुख नदी।
- **लूणी :** पश्चिमी राजस्थान की प्रमुख नदी, खारा पानी लिए हुए।
- **माही :** दक्षिणी राजस्थान की प्रमुख नदी।
- **गम्भीरी, सोम, कालीसिंध :** स्थानीय महत्त्व की नदियाँ हैं।

6. झीलें :-

राजस्थान में कई लवणीय तथा मीठे पानी की झीलें हैं :

– पुष्कर झील (अजमेर)
– राजसमंद और जयसमंद (उदयपुर)
– उदयसागर।
– डीडवाना, सांभर (खारी पानी की झीलें) : इनसे नमक उत्पादन होता है।

7. मिट्टियाँ :-

राजस्थान में विभिन्न प्रकार की मिट्टियाँ पाई जाती हैं :–

1. मरुस्थलीय बलुई मिट्टी' : थार क्षेत्र में।
2. काली मिट्टी : दक्षिणी और दक्षिण–पूर्वी जिलों में।
3. लाल दोमट मिट्टी : पूर्वी जिलों में।
4. लवणीय मिट्टी : झीलों और नम भूमि क्षेत्रों में।
5. कंकरीली मिट्टी : अरावली क्षेत्र में।

8. वनस्पति और वन क्षेत्र :-

राजस्थान की जलवायु और भौगोलिक विविधता के अनुसार यहाँ विभिन्न प्रकार की वनस्पति पाई जाती है :–

- कांटेदार झाड़ियाँ और बबूल : थार क्षेत्र में।
- सागवान, साल, अर्जुन : दक्षिणी जिलों में।
- खेजड़ी, रोहिड़ा' : शुष्क क्षेत्रों में।

राज्य का लगभग 7 प्रतिशत क्षेत्र वनों से आच्छादित है, जो राष्ट्रीय औसत से कम है।

9. जीव-जंतु :-

राजस्थान जैव विविधता की दृष्टि से समृद्ध है :–

- थार क्षेत्र में' : ऊँट, काले हिरण, लोमड़ी।

वन्य अभयारण्य :-

- रणथंभौर राष्ट्रीय उद्यान (बाघों के लिए प्रसिद्ध)
- सरिस्का टाइगर रिजर्व।
- केवलादेव घाना पक्षी विहार (विश्व धरोहर स्थल)
- डेजर्ट नेशनल पार्क (जैसलमेर) : ग्रेट इंडियन बस्टर्ड का आवास।

10. खनिज संसाधन :-

राजस्थान खनिज संपदा के लिए भी प्रसिद्ध है :–

- जिंक, सीसा, तांबा : भीलवाड़ा, चित्तौड़गढ़।
- गंधक, अभ्रक, जिप्सम : नागौर, बीकानेर।
- संगमरमर और चूना पत्थर' : मकान और मूर्तियों के लिए विश्व प्रसिद्ध (मकराना)
- फेल्सपार, डोलोमाइट, क्वार्ट्ज' : औद्योगिक उपयोग हेतु।

11. सिंचाई और जल प्रबंधन :-

राजस्थान का अधिकतर क्षेत्र वर्षा पर निर्भर है। इसलिए सिंचाई साधनों का विकास आवश्यक है :

- इंदिरा गांधी नहर परियोजना : थार मरुस्थल में जीवन लाई।
- जवाहर सागर बाँध, माही बजाज सागर बाँध' : जल संग्रहण के लिए।
- कुँए, ट्यूबवेल, तालाब' : परंपरागत साधन।

– जल संरक्षण योजनाएँ' : जल क्रांति अभियान, जन स्वास्थ्य अभियानों के माध्यम से।

12. कृषि पर प्रभाव :–

राजस्थान की जलवायु और मिट्टी कृषि को प्रभावित करती है :–

– शुष्क क्षेत्र : बाजरा, ज्वार, मूँगफली।
– पूर्वी जिलों में : गेहूँ, सरसों, चना।
– बागवानी और फलोत्पादन : केसरिया आम, खजूर, अनार।
– सिंचित क्षेत्रों में : कपास, गन्ना, चावल।

13. पर्यटन और भौगोलिक आकर्षण :–

राजस्थान का भूगोल ही इसकी सांस्कृतिक पहचान बन चुका है :–

– थार मरुस्थल : ऊँट सफारी, मरु महोत्सव।
– अरावली पर्वत : मांउट आबू, उदयपुर।
– झीलें : झीलों की नगरी उदयपुर।
– वन्य जीव पर्यटन : रणथंभौर, सरिस्का।
– मरुस्थलीय वास्तु : जैसलमेर का किला, हवेलियाँ।

14. पर्यावरणीय चुनौतियाँ :–

राजस्थान में भूगोल से जुड़ी कई पर्यावरणीय समस्याएँ हैं :–

– मरुस्थलीकरण : थार का विस्तार।
– जल संकट : भूजल स्तर में गिरावट।
– वनों की कटाई : जैव विविधता में हानि।
– जलवायु परिवर्तन : मानसूनी अनियमितता।

इनसे निपटने के लिए जल संरक्षण, वृक्षारोपण, पारंपरिक जल स्रोतों का पुनरुद्धार आदि उपाय अपनाए जा रहे हैं।

निष्कर्ष :–

राजस्थान का भूगोल न केवल प्राकृतिक विविधताओं का संगम है, बल्कि मानव संघर्ष, अनुकूलन और सांस्कृतिक सृजन का जीवंत प्रमाण भी है। यह राज्य भारत की भौगोलिक विविधता को परिभाषित करता है : जहाँ एक ओर तपते हुए रेगिस्तान हैं, वहीं दूसरी ओर जीवनदायिनी नदियाँ और वन हैं। आज के समय में राजस्थान भूगोल और विकास के संतुलन की दिशा में अग्रसर है। जलवायु और संसाधनों की चुनौतियों के बावजूद, यह राज्य अपनी भू–परिस्थितियों का बेहतर उपयोग कर आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ रहा है।

आपके विस्तृत एवं सुसंगठित आलेख 'राजस्थान का भूगोल : प्राकृतिक विविधता और भौगोलिक विशेषताएँ' में संदर्भ ग्रंथों की सूची जोड़ना शोध की प्रामाणिकता और शैक्षिक उपयोगिता को और भी बढ़ाता है। नीचे विश्वसनीय पुस्तकों, शोध कार्यों, सरकारी प्रकाशनों और वेबसाइटों के आधार पर एक 'संदर्भ ग्रंथ सूची' जोड़ी गई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची (References / Bibliography) :-

1. शर्मा, बी.के. (2019). राजस्थान का भूगोल. जयपुर : रावत पब्लिकेशन्स।
2. दत्ता, पी.सी. एवं सिंह, एन. (2018). भूगोल का समग्र अध्ययन. नई दिल्ली : प्रकाशन संस्थान।
3. गौड़, एस.पी. (2020). भारत एवं राजस्थान का भूगोल. जयपुर : नवीन पुस्तक भंडार।
4. सिंह, सविता. (2017). मरुस्थलीय पारिस्थितिकी : राजस्थान का विशेष अध्ययन. उदयपुर : राजस्थान विश्वविद्यालय।
5. Directorate of Economics and Statistics, Government of Rajasthan. (2022). Statistical Abstract of Rajasthan. जयपुर : Rajasthan Government Press.
6. Central Ground Water Board. (2021). Ground Water Year Book – Rajasthan Region. Ministry of Jal Shakti, Government of India.
7. India Meteorological Department (IMD), (2023). Climatic Data of Rajasthan. पुणे : IMD Publication Division.
8. Forest Survey of India. (2023) India State of Forest Report – Rajasthan Chapter. देहरादून : भारतीय वन सर्वेक्षण।
9. राजस्थान पर्यटन विभाग. (2022). Rajasthan Tourism Statistics at a Glance. Jaipur : Department of Tourism, Rajasthan.
10. Singh, R.L. (2014). India : A Regional Geography. वाराणसी : नेशनल जियोग्राफिकल सोसाइटी ऑफ इंडिया।
11. Vyas, V.N. (2016). Ecology and Desert Development : A Case Study of Rajasthan. New Delhi : Concept Publishing Company.
12. Rajasthan State Mines and Minerals Ltd. (2020). Annual Mineral Report. Udaipur : RSMML Publication.
13. Ministry of Jal Shakti. (2021). National Water Mission Reports – Western Dry Zone. Government of India.
14. Thakkar, H. (2019). Desert, Drought and Development : Water Realities in Rajasthan. New Delhi : Centre for Science and Environment (CSE).
15. UNESCO World Heritage Centre. (2022). Keoladeo National Park (Bharatpur) – Site Report. Paris : UNESCO.

Ward No. 07, Village Lambi Dhab, Post Office Bolanwali, Tehsil Sangaria, Dist. Hanumangarh
Mob. 8078624887, 9001276929

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 97-103

Dr. Ram Manohar Lohia : A Brief Profile

BASANT PANDIT
RESEARCH SCHOLAR, POLITICAL SCIENCE,
KOLHAN UNIVERSITY, WEST SINGHBHUM, CHAIBASA

Introduction :

Dr. Ram Manohar Lohia; the eminent socialist leader was born on 23 March, 1910 at Akbarpur in Faizabad district of Uttar Pradesh. His father, Shri Hiralal Lohia, was a businessman. Originally, his ancestors lived at Mirzapur in Uttar Pradesh. The family acquired the surname 'Lohia' for doing business in 'Loha' (hardware) for generations. Lohiaji lost his mother at an early age of two and half years and was, therefore, brought up by his grandmother and aunt. As a child, Lohiaji found in his family an atmosphere which was free from caste and communal prejudices. The spirit of strong nationalism was gifted to him by his father who was an active Congressman and a devotee of Gandhiji. Since his childhood, Lohiaji was full of sympathies for the needy and as such he always helped the poor and the down-trodden.

His Education :

He had his early education at Tandon Pathshala and Visheshwar Nath High School in Akbarpur. He always topped in his class and remained a favourite of his teachers. After his father had shifted from Akbarpur to Bombay, he continued his studies at a Marwari School in Bombay and passed the Matriculation examination in first division in 1925. His Intermediate education took place at the Banaras Hindu University. In 1926, he attended the session of Indian National Congress at Gauhati when he was just 16 years old. In 1927, he passed the Intermediate examination and went to Calcutta for further studies. Here an incident in his life is worth mentioning. There were two Government Colleges in Calcutta at that time with good reputation. Besides these, there was also a private 3 College, the Vidyasagar College, whose teachers possessed a nationalistic outlook. When the question of taking admission came up, Lohiaji, as a true nationalist, preferred the Vidyasagar College for higher education rather than either of the Government Colleges. In 1929, he passed his S.A. examination and three years later, in 1932, he obtained the Ph.D. degree in Economics from Berlin University

with 'Salt and Civil Disobedience' as the subject of his thesis. It was in Berlin that he studied the works of Marx and Hegel. He left Berlin with definite leanings towards socialism. Lohiaji was also deeply influenced by Gandhiji's ideals, values and methods.

The period when Dr. Lohia was at the Banaras Hindu University was the most important phase of his life. Since his childhood, Lohiaji was an excellent orator. At the University, as a sharp intellectual, he developed a style of his own, a logical one, of delivering speeches and thus attracted the attention of all those who listened to him. The University, known as Kashi Vishwavidyalaya, was famous during those days for producing brilliant youth who could bring honour to the country and sacrifice their all for her sake. Lohiaji was one of them.

As a Freedom fighter :

Dr. Lohia joined the freedom movement at an early age. His interest in politics gained further momentum due to the atmosphere he had found in his home. His father took him to the Ahmedabad Session of the Congress in 1918. He, himself, organised a student strike in 1920 on the death of Lokmanya Tilak when he was just ten years old. A great freedom fighter, Lohiaji actively participated in the Non-cooperation Movement launched by Gandhiji. In 1928, he had presided over a meeting in Calcutta to boycott the Simon Commission. Lohiaji came into contact with Pandit Nehru in a youth session at Calcutta and a close relationship developed between the two.

In 1933, after Dr. Lohia's return from Berlin, a historic development took place in the Congress Party, when the Congress Socialist Party (CSP) was formed within the Indian National Congress. Dr. Lohia was instrumental in its formation 4 and was considered as one of its pillars. The party. declaring socialism as its objective. stated that Marxism alone could guide the anti-imperialist forces to their destiny and emphasised on democratising the organisational structure of the Congress.

Young Lohiaji was made the Secretary of the Foreign Affairs Department of the Congress Party in 1936. an office which he held with distinction till August 1938. As Foreign Secretary of the Congress. Lohiaji was instrumental in laying the foundations of the foreign policy of India. He maintained close contacts with the freedom movements then going on in other parts of the world and developed close relations with progressive organisations in Asia. Africa and Latin America. As Secretary. he had written an article "The Foreign Policies of the Indian National Congress and the British Labour Party" which was described as a "Work of outstanding merit" by Pandit Nehru.

Lohiaji was aware of the problems faced by the overseas Indians and he told the Indian people about their pitiable conditions. He had also drawn the attention of, the world towards the suppression of civil liberties in India and other countries. He was arrested for making anti-Government speeches. on 24 May. 1939. his first imprisonment. but was released the next day on bail. He was of the view

that the country would not get freedom automatically. He created an awareness among the people by writing articles and pamphlets.

During the Second World War, he supported the view that India should not extend any support to the Britishers and advocated complete non-cooperation. He said that the supply of men and money to the then Government should be refused. When All India Congress Committee. passed a resolution in 1939 supporting the United Kingdom in the war effort. Lohiaji opposed it and wrote an article "Down with Armaments". He was arrested for making anti-war speeches in 1940. Mahatma Gandhi did not like it and reacted very strongly. Deploring the action. Gandhiji said that imprisonment of patriots like Ram Manohar Lohia and Jayaprakash would not be tolerated and he would not be a silent witness to this increasing encroachment on popular freedom. The individual civil disobedience campaign 5 launched by Gandhiji in 1940 was designed to assert the people's right to democratic freedom.

Dr. Lohia played a significant role in the 'Quit India Movement' of 1942. He directed the Movement while remaining underground and could not be detected for nearly two years. He also established an underground radio station. He utilised the time by writing booklets, pamphlets and articles full of inspiration like "How to establish an Independent Government?", "I am Free", "Prepare for the Revolution", and "Brave Fighters March Forward". The Journal "Do or Die" was also published by him during this period. Another scholarly article "Economics after Marx" was also written by him while he was underground. He, however, was arrested on 20 May, 1944 and kept in prison till 11 April, 1946. Later he worked for the freedom of Goan and Nepalese people also. Dr Lohia was arrested as many as 25 times for participation in freedom movements of India, Goa and Nepal and Civil Disobedience Movements in free India and in America.

As a Socialist :

In 1947, the Congress Socialist Party was transformed into Socialist Party by removing the word Congress from its name at a Conference held at Kanpur though it continued to be a part of the Congress. In 1948, the Socialist Party of which Dr. Lohia was a founder, dissociated itself from the Congress. In 1952, the Praja Socialist Party was formed and Dr. Lohia was elected its General Secretary in 1953. In 1955, the socialists met at Hyderabad and a new Socialist Party of India was formed under the Chairmanship of Dr. Lohia.

A great socialist, Dr. Lohia believed in the ideology of democratic socialism and always stood for power to the elected representatives of the people through parliamentary means but supported the non-violent direct action against any and every social, economic and political injustice. His creative mind had a great fascination for new ideas and he spurned the doctrinaire approach to social, political,

economic and ideological problems. A relentless fighter against every form of injustice, he 6 fervently pleaded for social equality and preferential opportunity for the socially oppressed sections of society to enable them to overcome their centuries-old sufferings.

While Dr. Lohia laid great stress on resistance to evil, he knew the importance of constructive activity. He was of the view that politics was inseparable from power. He supported the idea that the state power should be controlled, guided and tamed by people's power. To achieve it, he propounded the formula of combining jail, spade and vote for achieving a social revolution in the country. He asked the youth to devote "one hour's free and voluntary labour" for national reconstruction.

His main contribution to the Indian polity was the incorporation of the Gandhian ideas in the socialist thought. A firm believer in decentralised economy, Lohiaji stressed the need of setting up of cottage industries and the small machines with minimum capital investments where maximum manpower may be used.

Lohiaji was well aware of the fact that people of the country live in villages. He, therefore, became the symbol of the aspirations of the poor peasants, the landless people and agricultural labourers. He initiated Kisan marches and struggles right from 1947. He was one of those great leaders who not only advocated the need for a fundamental fe-ordering of our social relations but also provided an ideological basis for this revolutionary transformation. He always stood for the antiimperialist and anti-colonial revolution. The American Government arrested him in 1964 for participation in the Negro equal right movements.

As an untiring champion of social equality, he deplored the caste system and the hierarchical order based on birth and considered it as the single most important factor for decline of the nation and its repeated subjection to external aggression and foreign rule. He also launched a "destroy caste" movement. He declared that in a traditionally unequal society, equality could not be established by merely providing equal opportunities to all. He said that the backward classes, women, 7 Harijans, Adivasis and the retarded among the minorities had to be given special opportunities to bring them up to the level of the advanced.

Dr. Lohia possessed a universal outlook. He subscribed to the concept of the citizenship of the mind, citizenship of ideals without the restrictiveness of nationality or race. A widely ravened man, Dr. Lohia dreamt of an international order where one could travel around the world without passports or visas. He was for the establishment of a World Parliament and a World Government to which the sovereign national states would voluntarily transfer a part of their sovereignty. He was also elected India's representative to the Conference for World Government in 1949.

Lohiaji had his own ideas about revolution. He justified revolution in any of the following

conditions: (i) A revolt to establish complete equality between men and women; (ii) A revolt against the economic, political and social inequalities based on the colour of skin; (iii) A revolt against the traditional concept of caste based on birth and in favour of special opportunities for the backward; (iv) A revolt for overthrow of foreign rule, for freedom and for the establishment of a democratic government; (v) A revolt against the inequalities in accumulation of capital, for economic equality and planned increase in production; (vi) A revolt against interference in the private life of citizens and in favour of a democratic system of Government; and (vii) A revolt against conventional and nuclear weapons and for recognition of satyagraha as a legitimate weapon.

As Leader of Masses :

Lohiaji's greatness was his simplicity and intense love for his fellow countrymen. He had shown equal concern for pain and pleasure. In him, there was an •ideal combination of piety, love, modesty, anger and suffering. He was a relentless revolutionary and an exponent of dynamic political and economic thoughts. He was a leader of the masses and always talked in their language. He was a stormy petrel not only in the Lok Sabha 8 where he fulminated on the floor of the House against the policies of the then Movement but also in the larger and more extensive field of national life for over thirty years.

As a true nationalist, he disapproved the way in which the young men and women of the country were copying the western way of life. He was fully devoted to the Indian civilization. He wanted that Hindi should flourish as our national language along with other Indian languages and English must go from India. He described fondness for English as a 'sinful life'.

Like Gandhiji, Lohiaji had also shown his disobedience to oppressive and cruel laws and rules. For him the very existence of such laws and rules was unbearable. Dr. Lohia personally was against the partition of India. He was whole heartedly devoted to the Hindu-Muslim unity and after India achieved freedom and was partitioned, he worked tirelessly and fearlessly to maintain the unity and communal harmony in various parts of the country.

As a Writer :

Lohiaji was a prolific writer. His ideas were original and always created awareness among the masses. During the freedom movement he showed the way of freedom to tile people through his writings and left an ever-lasting imprint of his thoughts on their minds. Among his publications a few were: 'Mystery of Sir Stafford Cripps', 'Aspects of Socialist Policy', 'Wheel of History', 'Will power and other Writings', 'Guilty men of India's Partition', 'Marx, Gandhi and socialism', 'India, China and Northern Frontiers', 'The Caste System', 'Fragments of a World Mind', 'Language', 'Notes and Comments', 'Interval during Politics', 'Foreign Policy', Krishna, Valmiki aur Vashishta', 'Kranti ke

Unya Sangathan', 'The Indian Agriculture', 'Socialism', 'Hinduism', 'India and Pakistan', 'Hindu Aur Musalman', 'Samajvadi Ekta', 'Nirasha ke Kartavya', 'Kranti Karan', 'Sarkai', 'Math Aur Kujat Gandhivadi', He was also the Chairman of the Editiorial Board of 'Mankind' and 'Jan'.

As an Exponent of new Theories :

As an original thinker, he formulated the theories of: Twin origins of Capitalism and Imperialism; Small Unit Machine; Equal irrelevance; The Third Camp; Immediacy; Oscillation between Class and Caste; Efficiency, total or maximum; Physical and Cultural approximation of mankind; Permanent Civil Disobedience; Coexistence with Approximation; Autonomous relationship of general and economic aims or spirit and matter; Inverse relationship of Internal Rebellion and External Invasion; Preferential opportunity for Backward Groups in place of equal opportunities and Seven Revolutions.

As a Parliamentarian :

Dr. Lohia was elected to the Third Lok Sabha in 1963 in a bye-election from Farrukhabad constituency in Uttar Pradesh. He took oath as a member on 13 August, 1963. On the first day when Lohiaji was in Lok Sabha, it appeared that a new life had come to the House. Everybody in the House stood up and welcomed him when he entered the Chamber. He was also given a civic reception at the Ramlila Ground in Delhi on his maiden entry in the Lok Sabha. He was again elected in March, 1967 to the Fourth Lok Sabha from Kannauj constituency in Uttar Pradesh.

A dedicated Parliamentarian, Lohiaji took keen interest in the business of the House. He used to come fully prepared for parliamentary debates and discussions. His speeches in Lok Sabha gave new turns and twists to the Indian polity and provided real food for thought. Whether it was the policy of non-alignment or the issue of corruption in the country, he always took the Government of the day to task. He pointed out the weaknesses of the Government policies through his speeches in the House. Whether it was the Prime Minister or any other Minister he spared none. Whenever he found any irregularity or any injustice being done, he was ever vigilant to raise the issue.

His arguments in what has come to be known as the 'Three annas versus fifteen annas' debate were an eye-opener for the 10 people of the country. Lohiaji asserted that the then Government's view that average income of a person in the country was fifteen annas was misleading and false. He proved by facts and figures that average income of a person at that time was just three and a half annas or four annas per day. Getting illimitation from him 'Janani Day' was observed under his leadership in Delhi on 13 March, 1964.

Conclusion :

It was indeed very sad that Lohiaji had a very short span of life. An original thinker, a unique

leader, an eminent Parliamentarian and a rebel, Dr. Lohia passed away at New Delhi on 12 October, 1967 at an early age of 57. The news of his death spread like wild fire. The whole country was in mourning.

Glowing tributes were paid to Lohiaji in both the Houses of Parliament. His death was described as a great loss to the country and greater loss to the Parliament. He was described as a valiant fighter, a great thinker and a dynamic personality in the true sense of the terms.

Describing his death as premature, the then Speaker, Lok Sabha, Dr. N. Sanjiva Reddy said that his death had removed from the Indian political scene and the House one of its outstanding leaders. The then Prime Minister, late Shrimati Indira Gandhi, describing Lohiaji as a leading Parliamentarian, said that his untimely death had removed a vigorous mind and a dynamic character from the country. His whole life, according to her, was a "struggle for causes he held dear, for the downtrodden and the under-privileged".

Though he had never been a member of the Rajya Sabha, touching tributes were paid to him in that House also. The then Chairman of Rajya Sabha, the late Shri V.V. Giri, described him as the founder of the socialist movement in the country and said that as a member of Lok Sabha, Shri Lohia 'established for himself an abiding reputation as a powerful speaker and an outstanding parliamentarian'. He added that though Dr. Lohia often "vigorously attacked Government's policies, his intentions and sincerity were never in doubt; he always had the welfare of the people in mind."

Dr. Lohia was unmarried. He left behind no family, and no property but only his great ideas.

REFRENCES :

1. Arumugan, M.; Social Thought in India, New Delhi, Sterling Publishers, 1978.
2. Kaushik, Karuna; Russian Revolution and Indian Nationalism, Delhi, Chanakya Publications, 1984.
3. Parameswaran, P. (ed); Gandhi, Lohia and Deendayal, New Delhi, Deendayal Research Institute, 1978.
4. Sen. S.P. (ad); Dictionary of National Biographies Vol. II, Calcutta, I~ of Historical Studies, 1973.
5. Sharad, Onkar; Lohia: A Biography, Lucknow, Prakashan Kendra, 1972.
6. Vishnoo 8hagwan; Indian Political Thinkers, Delhi, Atma Ram & Sons, 1976.
7. Who's Who, Fourth Lok Sabha. 1967.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 104–111

Changing Family Structure and Globalization : A Sociological Study of Tharu Tribe (In Context to Khatima Tehsil of U.S. Nagar District)

Dr. Anchalesh Kumar
Department of Sociology, SSMMUSSS Government Post Graduate College,
Dwarahat (Almora), Uttarakhand.

Abstract :

Globalization is a process currently under discussion, launched in the 1990s as a main feature of New Economic Policy. Globalization is a multi-dimensional process that has comprehensively affected all sectors of Indian society and Indian marital and family systems are no exception. So the impact of globalization on marriage and families is intense and it can be observed that some great developments are taking place at the global level. Globalization has brought great changes in people's lifestyles and changing lifestyles have led to changes in marriages and families. Impact of Globalization on Family In India the core unit of society used to be the joint family, but with changing times, Indian society has evolved significantly after independence. Globalization is one of the change agents that has influenced the social landscape of the tribal world in Khatima. Globalisation was found penetrating through the channels of mobile phones, digital television, internet platforms, and migrations. The information accessible to the Tharu tribes of Khatima was largely driven by such channels. The children, in particular, were found using mobile phones. The leisure time available to the family members was found to be used on watching cable Television.The cheaper, deeper, and faster telecommunication was also found in use while conducting the field study visits. Hence, mobile phones, digital television, the internet, and migration were found to be influencing the social life of the Tharu tribes of Khatima. Both homogeneous and heterogeneous features were found mounting to the socio-cultural life of the Tharu tribe in Khatima. The lifestyle, mannerism, courtesy, and interaction patterns were found to be homogenised whereas, food habits, social networks, marital arrangements, tracing of decent, intra clan, and inter-village boundaries were found to be at work. In this direction, the research paper is

focused on the impact of globalization on family system. For this study data collected through primary sources. The purpose and usefulness of this study is to highlight the recent global trend in family system.

(Keywords : Globalization, Tharu, Tribe, Khatima, Family Structure, Social, World, Cheaper, Deeper, Faster, Change, Cultural, India).

Introduction :

The phrase globalization is a widely used phenomenon now-a day. According to Muzaffar (2008), "globalization has been characterized as the flow of capital, goods, services, talents, technology and labour across brooders accompanied by the diffusion of associated taste, values and worldviews". It has been affecting people's economic, social and political lives as well as their thinking on a global scale. The closed system of inter-group marriages was found to be incest. The concept of either cross-cousin marriage or parallel cousin marriage was found not preferred amongst the tribes of Khatima. However, the adoption of social hierarchy prevalent in Hinduism was found very close to their social practices. In this context, globalization was found to be penetrating their social lives as: (1) copying the life practices of the dominant religion, and (2) open to follow the life practices offered by multi-national cultural traits and properties. The barter exchange system prevalent among tribes was largely found to be governing the market economy among Tharus of Khatima. The quest for employment opportunities was also sought by the endogamous group beyond their village boundaries. The financial stringencies led to social insecurity pushed the tribal population to migrate. The migration was not stand-alone. It led to so many intended and unintended consequences.

The intended outcome was to earn a livelihood and the unintended was to fix the indebtedness. However, in the garb of addressing the socio-economic gaps, cultural learnings also happened. That is where the idea of 'tribes being backward Hindu' appeared outdated and irrelevant. Some of the tribes surveyed in villages were found super-rich whereas, some extremely locked into poverty. Some of the tribal family members were found exposed to western education whereas, some remained confined to parochial vernacular learners. The health consciousness was predominantly noticed among the tribes. The sanitation, love for kith and kin, respect for coparceners, and internalised traditional family values were found among Tharus of Khatima. Like Hindus, the tribal family members were found going to Hindu Gods and Goddesses. Though Bollywood music and modern cultural creation were found to be an integral part of their social lives, the Bhajan and Kirtans were found organised in late afternoons. Moreover, spirituality and love for nature were found amongst the exotic community. These practices were largely refurbished in the direction of global practices. As such, globalization was found influencing tribal life as a trend towards homogeneity.

That led to transforming the human experience everywhere the same. Although homogenizing influences do indeed exist, they are far from creating anything akin to single-world culture.

Meaning of family :

Social unit of two or more persons typically consisting of one or two parents and their children. Who share goals and values, have long-term commitments to one another and reside usually in the same dwelling place. All the members of a household lives under one roof and share common ancestry.

Definition of Family :

Maclver - "Family is a group defined by a sex relationship sufficiently precise and enduring to provide for the procreation and upbringing of children".

Nimkoff - "Family is a more or less durable association of husband and wife with or without children or of a man or woman alone, with children.

Clare - "Family is a system of relationship existing between parents and children".

Eliott and Merrill - "Family is the logical social unit composed of husband, wife and children".

The Impact of Globalization on Family Structure :

Joint family culture is the foundation of Indian families. With nuclear families proliferating like mushrooms after a rainstorm, the joint families have become a strange surprise to Indians, especially to those living in metropolitan areas. We no longer have the patience to raise the next generation in the presence of their grandparents while integrating them into a blended family and instilling the elders' values in them.Grandparents are now being treated more like guests or visitors by children and this upbringing is one of themain causes of the growth of nursing homes for the elderly because these kids see their own parents as a burden when they are adults. The impact of globalization on the family can express as follows;

Men and women-headed households :

As per the stipulations laid down by the Census of India, a 'household' is usually a group of persons who normally live together and take their meals from a common kitchen unless the exigencies of work prevent any of them from doing so. Persons in a household may be related or unrelated or a mix of both.

However, if a group of unrelated persons live in a house but do not take their meals from the common kitchen, then they are not constituents of a common household. The important link in finding out whether it is a household or not is a common kitchen. There may be one-member households, two-member households, or multi-member households. If a husband and wife or a group of related persons are living together in a house but not cooking their meals, it also constitutes a normal household. Under the study, the meaning of the head of the household has been taken as one who

takes socio-economic and political decisions in the household. The information about the men and women-headed households has also been documented which is as under :

Table No.-- 01

Head of the household in study area

Gram Panchayat	Men-headed	Women-headed	Total
Banusa	30 (75)	10 (25)	40 (100)
Bhura Kishani	26 (65)	14 (35)	40 (100)
Bigara Bag	33 (82.5)	7 (17.5)	40 (100)
Jhunkat	35 (87.5)	5 (12.5)	40 (100)
Kutara	34 (85)	6 (15)	40 (100)
Naugawa Thago	29 (72.5)	11 (27.5)	40 (100)
Ratanpur	31 (77.5)	9 (22.5)	40 (100)
Umru Khurd	29 (72.5)	11 (27.5)	40 (100)
Total	**247 (77.19)**	**73 (22.81)**	**320 (100)**

It has been found that the majority of the households in the selected Gram Panchayats of Khatima Tehsil were owned by male counterparts. Out of the total male counterparts owning the household, the maximum percentage was found in Jhunkat (87.5%), followed by Kutara (85%), Bigara Bag (82.5%), Ratanpur (77.5%), Banusa (75%), Naugawa Thago & Umru Khurd (72.5% each), and Bhura Kishani (65%). However, the women-headed households have been found significantly in Bhura Kishani (35%), followed by Naugawa Thago & Umru Khurd (27.5% each), Banusa (25%), Bigara Bag (17.5%), Kutara (15%), and Jhunkat (12.5%). It shows that women-headed household is yet on the marginal side, as compared to men headed households. Social factor such as purdah remains an important constraint for women being head of the households. These constraints further inhibit their chances of finding employment. Poverty is the most pressing reason that does not let women become head of households.

Women household heads are very likely to lose control of land or assets they may have inherited. Access to employment is another issue, as there are few jobs available to them and they are relatively unskilled. The above information also informs about women's empowerment at the household level. However, the Census of India (2011) informs that women own marginally (about 11%) households in our country. In sharp contrast with the national figure, the study stipulates that tribal household owning women are more, as compared to all Indian women heading households. The fact that most of the households owned by women are single household families. This sparks that the women own households because there is an absence of a male counterpart. Though the figure is double the national average, the gender disparity or gender inconsistency in empowerment has been recognized.

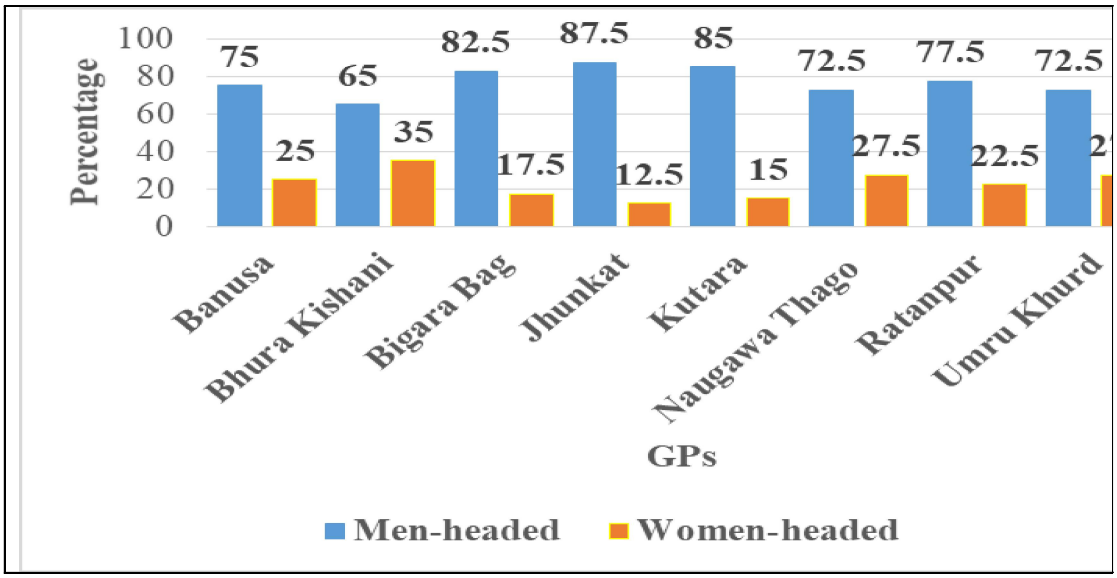

Figure No. - 01 : Bar diagram showing men and women-headed households

The bar diagram drawn above portrays the percentage of men and women-headed households in the target area. The first bar represents men-headed households whereas, the second for women headed. The study reveals that amongst the tribal respondents, in Bhura Kishani Gram Panchayat the women-headed households were found to be considerably higher, as compared to the other seven Gram Panchayats.

Household size of the respondents :

The study has also captured the family size of the respondents sampled. Two to four (mother, father, and two-offspring) have been covered under nuclear family, whereas up to seven under joint family and above 8 as extended family under the study. The information about the households size of the respondents has also been documented which is as under :

Table No.- 02

Household size of the target group

Gram Panchayat	Two to Four	Five to Seven	8 and more	One	Total
Banusa	32 (80)	8 (20)	0 (0)	0 (0)	40 (100)
Bhura Kishani	18 (45)	17 (42.5)	4 (10)	1 (2.5)	40 (100)
Bigara Bag	23 (57.5)	10 (25)	3 (7.5)	4 (10)	40 (100)
Jhunkat	21 (52.5)	5 (12.5)	12 (30)	2 (5)	40 (100)
Kutara	21 (52.5)	9 (22.5)	8 (20)	2 (5)	40 (100)
Naugawa Thago	13 (32.5)	11 (27.5)	16 (40)	0 (0)	40 (100)
Ratanpur	21 (52.5)	11 (27.5)	3 (7.5)	5 (12.5)	40 (100)
Umru Khurd	18 (45)	20 (50)	1 (2.5)	1 (2.5)	40 (100)
Total	**167 (52.19)**	**91 (28.44)**	**47 (14.69)**	**15 (4.69)**	**320 (100)**

The above table presents the size of the household of the target group across the Panchayats sampled. It has been found that most of the households are following two to four members family member norms (52.9%), followed by five to seven (28.44%), eight and above (14.69%), and one member family norm (4.69%). Out of the two to four members of family norms, the maximum percentage has been found in Banusa (80%), followed by Bigara Bag (57.5%), Jhunkat, Kutara & Ratanpur (52.5% each), Umru Khurd, and Bhura Kishani (45% each) and Naugawa Thago (32.5%). Out of the five to seven family members documented under the study, the maximum percentage has been found in Umru Khurd (50%), followed by Bhura Kishani (42.5%), Ratanpur & Naugawa Thago (27.5%), Bigara Bag (25%), Kutara (22.5%), and Jhunkat (12.5%). In the sampled respondents, the family size with 8 and one has been found quite less. Overall, as an impact of globalisation, the family size amongst the tribes of Khatima has followed more or less nuclear family norms. The details are also portrayed through the diagram below :

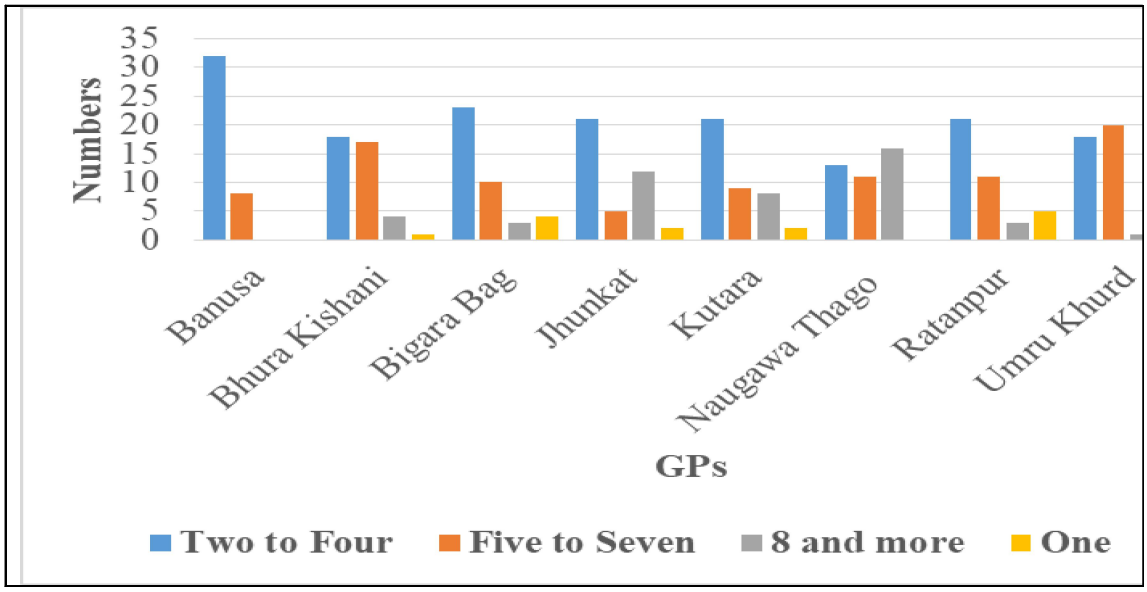

Figure No.-02: Bar diagram showing the family size of the target group

The bar diagram shows the family size of the respondents sampled under the study. The first bar from the left indicates two to four-family member size, next to right shows five to seven family members, second from the right shows family norm with 8 and above members and the extreme right bar indicates the family with one member. It has been found that increased migration has stretched families across the Panchayat borders. The way to maintain contact is through media and physical visits. The increasing mobility of the younger generation in search of new employment and educational opportunities allegedly weakened family relations. Another striking impact is a gradual change that is taking place in the family structure from extended families to nuclear family norms. The marital roles and distributions of power within the nuclear family are also being witnessed. During the focus

group, discussions across the Gram Panchayats was found that the younger generation, particularly those with higher education and jobs, no longer believe in the complete submission of their interests to family interests. Individualism is spearheading within the family structure. The increasing costs of education, health services, and new job opportunities have pressurised women to look beyond the boundaries and rush to arrange the resources for livelihood. The women respondents shared that they work as agricultural labourers or construction works at different sites. They also reported that they are largely underpaid, as compared to male counterparts.

Conclusion :

The changes are universal; families are not exceptional. Changes in the institution also lead to changes in social structure. The trend of globalization is declining the ethical values and social security of family and marriage; through these it brings danger to the social morality.In the interest of social stability and safety of marriage and family. This is the need that the younger generation should be caution and society should discourage this type of ugly trend. In the prevailing situation, when we absorb the decline ethical values in the society. This is the need on the part of the family to socialize our youngsters and educate them with social values of the family and commitment towards society. In conclusion: Globalization's impact on family structure is not uniform. It's a complex process that varies based on cultural context, economic conditions, and individual choices. While it can lead to increased communication and access to resources, it can also contribute to individualism, erode traditional family values, and create generational conflicts.

Findings :

Based on the above facts, the findings of study are as under :

The households aspiring to have a better hold on the socio-economic life prefer to have a nuclear type family. However, they like to meet their relatives once a week. Though globalisation has refined the structure of family norms, the respondents continued to receive support from near dissociated family members with different households, particularly in grooming their children and combating financial stringencies. The study captures the trend that tribe of Khatima prefers to have dynamic interactions among family members beyond their households, describing changes in typical patterns of parent–child relationships, resurrecting social solidarity. Five main themes were identified: Global Cultural Exchange, Technological Impact, Intergenerational Dynamics, Cultural Adaptation and Resistance, and Economic Influences. Each theme encapsulated several categories and concepts, highlighting the complex interplay between global and local influences on family life. Key findings include the selective adoption of global cultural elements, the transformative role of technology in family interactions, the negotiation between traditional and global values across generations, active

engagement in cultural adaptation, and the significant impact of economic factors on family traditions and values.

References :

1. Augustine, J.S. (Ed.) 1982. The Indian Family in Transition. Vikas Publishing House, New Delhi.
2. Bogenschneider. (2000), Has family policy come of age? A decade review of the state of U.S. family policy in the 1990s. Journal of Marriage and Family, 62, pp. 1136 – 1159.
3. Castells M. (2004). The Power of identity. (2nd edition). Oxford: Blackwell.
4. Goode, W.J. (1996) World Change in Divorce Patterns, New Haven: Yale University Press.
5. J. Baars, D. Dannefer, C. Phillipson, & A. Walker, (Eds.), Aging, globalization and inequality: The new critical gerontology. (pp. 1- 16). Amityville, NY: Baywood Publishing.
6. Kelly, R.M. (2001). Gender, globalization and democratization. Lanham, MD: Rowman & Littlefield Publishers.
7. Lloyd, C.B. and N. Duffy (1995) 'Families in Transition', In Families in Focus: New Perspectives on Mothers, Fathers, and Children New York: pp. 5-23,
8. Mason, K.O.(1992) 'Family change and support of the elderly in Asia: what do we know?' Asia- Pacific Population Journal. 7(3);:13-32.
9. Morrison, Schiff & Sjöblom (2008): The International Migration of Women. Washington: The World Bank. Page- 2.
10. Ravallion, M. (2003). The debate on globalization, poverty and inequality: Why measurement matters. International Affairs, 79, 739-753.
11. Rudra, N. (2008). Globalization and the race to the bottom in developing countries: Who really gets hurt. Cambridge: Cambridge University Press.
12. Shah, A.M. (1992). "Changes in the Indian Family". In Yogesh Atal (Ed.) Understanding Indian Society. Har-Anand Publications, New Delhi.
13. United Nations.(1999) The Family and Older Persons in Bangladesh, Pakistan and Sri Lanka, Asian Population Studies, New York.
14. Yan, R. & Neal, A. (2006). The impact of globalization on family relations in China. International Journal of Sociology of the family, 32, 113-125.

Mobile No. 9412926680, Email: anchalesh_kr@yahoo.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 112–115

नासिरा शर्मा की कहानियाँ : मुस्लिम महिलाओं की त्रासदी की गाथा

प्रो. (डॉ.) विजयकुमार राऊत
अध्यक्ष, पदव्युत्तर हिंदी विभाग एवं अनुसंधान केंद्र,
न्यू आर्ट्स, कॉमर्स एण्ड सायन्स कॉलेज, पारनेर (महाराष्ट्र) 414302

आधुनिक महिला साहित्यकारों में नासिरा शर्मा अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। वर्तमान समस्याएँ, भावबोध, परिवेशगत अनुभूति और संवेदना आदि अनेक उनके साहित्य सृजन के प्रधान बिन्दु रहें हैं। उनके अभी तक शाल्मली, सात नदियाँ एक समदर, जिंदा मुहावरे, अक्षयवट, पारिजात, कुइयांजान, ठिकरे की मंगनी, जीरो रोड, कागज की नाव आदि उपन्यास तथा शामी कागज, पत्थर गली, संगसार, इब्ने मरियम, सबीना के चालीस चोर, गूंगा आसमान, खुदा की वापसी, इंसानी नस्ल, बुतखाना,शीर्ष कहानियाँ आदि कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके है। उन्होंने सृजनात्मक लेखन में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के साथ ही स्वतंत्र पत्रकारिता में भी अहम भूमिका निभाई है।

नासिरा शर्मा ने समाज में प्रचलित विकृतियाँ, अंधानुकरण, संबंध विच्छेद, धार्मिक कट्टरता आदि को अपना लक्ष्य बनाया है। उनके लेखन का फलक देश और विदेश की असीमित परिधियों में फैला हुआ है। उनकी लेखनी का केन्द्रबिन्दु है मानवता। एक ओर उनके साहित्य में ठेठ भारतीय पात्र अपने परिवेश की अभिव्यक्ति करते हैं, तो दूसरी ओर वे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ज्वलंत मानवीय समस्याओं से रू–ब–रू नजर आते है। उनका लेखन युग–युग से पिछडी शोषित नारी का वक्तव्य है, वह मुस्लिम समाज के खोखले कानून, रीति–रिवाज, मजहब और पर्दे में कैद नारी की पोल खोलता है। हिंदी साहित्य में महिला रचनाकारों की संख्या तो अवश्य बढ़ी है, लेकिन उनके साहित्य में चित्रित नारी जीवन, पारिवारिक अपनत्व, भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था दुर्लभ है। अधिकतर नारी लेखन बनी–बनाई परिपाटी में उलझा है। नासिरा शर्मा का साहित्य अपनी निजता एवं विशेषता लेकर प्रकट होता है।

नासिरा शर्मा की कहानियों का फलक व्यापक है। उनकी बहुतांश कहानियां मुस्लिम समाज की महिलाओं की ज्वलंत समस्याओं से ताल्लुक रखती है। नासिरा शर्मा ने नारी चेतना के परिप्रेक्ष्य में ये कहानियाँ जरूर लिखी है, लेकिन उनका रूख प्रचलित अर्थों में नारीवादी नहीं है। वे महिलाओं के लिए कोई अलग दुनिया नहीं बसाना चाहती, न पुरुष को खलनायक और सूअर का बच्चा सिदूध करने में रस लेती है। उनका रुख बहुत ही स्पष्ट और व्यावहारिक है। नासिरा शर्मा 'खुदा की वापसी' कहानी संग्रह की भूमिका में लिखती है, ''मुझे लगा बेहतर

है कि हम मिले अधिकारों को पहले हासिल करें फिर जो नाहीं है उनका सवाल उठाएँ। और भी वह मर्द है जो औरत के अधिकार का हनन करता है। मगर औरत क्या कम कसूरवार है जो अपने अधिकारों को लेना नहीं जानती है, उसको समझती नहीं है, उसको पढ़ती और दूसरों को बताती नहीं है?'[1] इस प्रतिबद्धता और आक्रोश की कद्र करनी चाहिए। यह एक इन्सायडर का दुखता दिल है, लेकिन इससे खतरा यह है कि मिशन बनाकर रची जाने वाली रचना विचार का बोझ उठा भी ले, कला के सामने नकाजों को निभा पाएगी या नहीं, यदि उसे ज्ञानवर्धक ही होकर रह जाना है तो कला के हिसाब से उसकी हैसियत हिदायत नामा से ज्यादा क्या हो पाएगी? उनकी रचनाओं में यथार्थ के विविध आयाम दिखाई देते हैं स्त्रियों की शिक्षा को लेकर समाज में उदासीनता व्याप्त है। उनके अंदर प्रतिभा होते हुए भी वह घर की चार दिवारी में कैद है। उनके साथ पक्षपात पूर्ण व्यवहार किया जाता है। वास्तविकता यह है कि कुरान में कहीं भी कट्टरता और अन्य किसी भी तरह की ऐसी परंपरा के बारे में बात कहीं नहीं गई है। जिन्हें आज का मुस्लिम समाज इस्लाम और कुरान के नाम पर लागू करता है। खुदा की वापसी कहानी संग्रह के माध्यम से नासिरा शर्मा ने इस तरह की समस्याओं पर प्रकाश डाला है। लेखिका युद्ध विभाजन विस्थापन के माध्यम से स्त्रियों की दाहिनी और चिंताजनक स्थिति दिखाने की कोशिश करती है। उनकी रचनाएं देशकाल एवं स्थिति की कैसे मुक्त है जिससे पाठक जल्द से जल्द आत्मसात कर यथार्थ के बहुआयामी चित्रण से चिर परिचित होकर प्रेरणा लेते है।

मुस्लिम महिलाओं की महत्वपूर्ण समस्या है– तलाक। 'खुदा की वापसी' इस कहानी में पति–पत्नी संबंधों में सिर्फ इसलिए दरार पड़ जाती है और अच्छी–खासी शादी सिर्फ इसलिए दरक जाती है कि सुहागरात पर पति पत्नी को फुसलाकर उससे मेहर की रकम माफ करवा लेता है। जुबैर अपनी पत्नी फरजाना से कहता है, 'देखिए अगर आप मेहर के रूपए चाहती है तो मुझे कोई एतराज नहीं है. हम बिजनेस क्लास वाले हैं चेक अभी काटकर आपके हवाले कर सकता हूँ, मगर बात कुछ और है। वह औरत शौहर के लिए बहुत मुबारक होती है जो पहली रात अपने शौहर की मेहर माफ कर दे। वह बड़ी पाकदामन समझी जाती है।'[2] एक नई दुल्हन को भावनात्मक ब्लैकमेल की इस भही स्थिति में धकेल देना कहीं से भी इसानियत की बात नहीं लगती, लेकिन जैसा कि कहानी बताती है खुद मुस्लिम समाज के लोगों में भी बहुतों को इस नए चलन का पता न होगा। मेहर माफ करवाए बगैर दुल्हा–दुल्हन को हाथ नहीं लगाएगा। दुल्हन मेहर माफ कर देती है, लेकिन निश्चय कर लेती है कि इस आदमी के बच्चे की माँ कभी नहीं बनूंगी। वह कालांतर में पति से यह बात साफ कह भी देती है और अंततः पति का घर छोड़कर आ जाती है। यहाँ हर कोई नायिका और लेखिका के स्टॅण्ड का समर्थन करेगा। सवाल यह जरूर उठेगा कि क्या वास्तव में ऐसा ही होता है या नहीं होता है यह महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण यह है कि होना क्या चाहिए?

लगभग ऐसी ही विकट स्थिति श्दूसरा कबूतर कहानी में आती है। मिडल ईस्ट में पोस्टेड बहुराष्ट्रीय कंपनी में कार्यरत लड़का एक भारतीय लड़की से शादी करता है। उसे अपने साथ ले जाता है। वहाँ जाकर पत्नी को पता चलता है कि पति पहले से शादी शुद्ध है और तीन बच्चों का बाप भी। अब पत्नी क्या करें? मानसिक ऊहापोह और कानूनी पेचीदगियों को हटाकर देखें तो उसके पास तीन विकल्प है– 1. तलाक ले ले– जो बहुत आसानी से मिल जाएगा, 2. दूसरी पापी बनकर रहना स्वीकार कर ले, या 3. पहली पत्नी का जीना हराम कर दे, उसे उसके बच्चों समेत घर से बाहर निकाल दे या बगैर तलाक लिए पति की सारी संपत्ति लेकर भाग जाए,

या दूसरा प्रेमी ढूंढ ले या आत्महत्या कर ले या पति को मार डाले या अन्य जो भी आप चाहे। दोनों महिलाओं का जो आमना–सामना इस कहानी में होता है, उसे नासिरा शर्मा ने बहुत खूबसूरती से समझदारी से बुना है और अंत में पाठकों के सारे कयास गलत करते हुए एक चौथा ही विकल्प चुना है– दोनों पत्नियां पति को एक साथ तलाक देती हैं। सादियाँ रूकाइयों को कहती है. 'तलाक देकर शहाब की आधी आधी जायदाद हम बांटकर अपनी बेइज्जती का सबक उसे सिखा सकती है। दौलत– उसी पर तो सारी उतराहट है। फिर तो बचेगी सिर्फ तनख्वाह और जमा होगी बूंद–बुंदकर जमापूंजी भूल जाएँगे मियाँ तीसरा इश्क और शादी।'[7/8] यहाँ फिर वहीं सवाल उठता है कि क्या ऐसा होता है? क्या यह कहानीकार का कल्पित या इच्छित यथार्थ नहीं है? यहाँ हमें रघुवीर सहाय को याद करना चाहिए जिन्होने कहा था यथार्थ यथास्थिति नहीं। यथार्थ सिर्फ वहीं नहीं है जो है या होता है. या होता आया है। बल्कि यथार्थ वह भी है जो हो सकता है, जिसके होने की संभावना दिखाई दे रही हो।

'इब्ने मरियम' नासिरा शर्मा की एक महत्वपूर्ण कहानी है। यह भोपाल की गैस दुर्घटना पर लिखी है। इस कहानी का मुख्य किरदार आरिफ बटुएवाला है। कहानी का परिवेश भोपाल का है और गैस दुर्घटना त्रासदी है, जिसने आरिफ जैसे वात्सल्य से ओतप्रोत पिता का मानसिक संतुलन बिगाड़ दिया है। जब उन्हें पता चला कि उनकी छोटी बेटी सुगरा को उसके ससुराल वाले इसलिए नहीं स्वीकार कर रहें हैं कि उसकी कोख अछूती नहीं रह गई होगी। सुगरा का ससुर ताहिर को कहता है, 'हमारी गर्दन पर उलटी छुरी मत चलाओ कल जो यह पैदा करेगी वह इन्सान की औलाद न होकर अरे' जी भरकर जहरीली गैस अंदर गई होगी। जब आँखों और सीने का यह हाल है तो क्या कोख अछूती बची होगी?'[4] ताहिर अपनी बेटी की चिता से पागल होकर सारा दिन पंपवाला स्टोवा लिए पूरे शहर में गैस की टंकी के फटने का किस्सा कहला पागलों की तरह घूमता है और कहानी अंत में उस विश्वास पर कटाक्ष करती हुए समाप्त होती है जहाँ पर ताहिर कब्रों को गिनता भूख, गर्मी और सदमें में मर जाता है।

'संगसार' कहानी नारी जीवन के एक नए संदर्भ को स्पर्श करती है। आसिया एक आम सी महसूस लड़की है. जो अपनी जिंदगी से पूर्णत संतुष्ट है मगर एक अनुभव ने अकस्मात् उसकी जिंदगी में हलचल मचा दी और आआंतरिक दुनिया बदल डालो। अपने अधिकार को पाने के चेतनाबोध ने उसे शारीरिक सुख को पाने की जुनूनी ललक भर दी। कहानी के अंत में ओसिया को मौत की सजा दी जाती है क्योंकि कानून, धर्म, समाज अनुभव से प्राप्त नए आविष्कारों में नैतिकता के मापदंड अभी स्थापित नहीं कर पाया है।

'शामी कागज' कहानी का परिवेश ईरानी है। शादी के कुछ दिनों बाद ही पाशा के पति मोहसिन का निधन होता है, उसी दुःख में पाशा अपनी सुध खो बैठती है। यहाँ तक कि वह रोना भी भूल जाती है। पाशा को लगता है, सदियों से वह इतनी ही तनहा और खामोश थी, बल्कि उसको अपने पत्थर दिल पर आश्चर्य होता है कि वह रोना तो भूली सो भूली, हँसना भी भूल गई। हँसने की तो उसे आदत थी, जिसमें एक नन्ही ख्वाहिश सोई पड़ी थी कि काश, मोहसिन की आखिरी निशानी उसे मिल जाए। पाशा का गम बाटने का प्रयास मोहसिन का दोस्त और पाशा के साथ चला उनके चाचा का बेटा महमूद करना चाहता है तो पाशा महमूद को कहती है 'अपनी जिंदगी मेरे साथ खराब न करो महमूद। मुझसे बेहतर जगह इसका इस्तेमाल करो। जहां इसकी जरूरत हो जहां इसकी कदर हो सके और फिर महमूद। मैं भी कोई शामी कागज थोड़े ही हूँ कि जब जरूरत पड़ो, उसे

धोकर दूसरा फरमान लिख दिया– मैं इन्सान और इन्सान के दिल पर लिखे दरफ बार–बार धोए नहीं जा सकते है।'[5]

जात–पात, धर्म, विश्वास, रूप–रंग, भाषा वर्ग की विभिन्नता यह रोज दुश्मनी का कारण बन इन्सानों को दुःखु पहुँचाती हैं। इन्हीं दुःखों का चित्रण उनकी 'इन्सानी नस्ल' कहानी में आया है। कहानी का नायक नवाब हिंदू लड़की से विवाह कर लेता है तो उनकी माँ इसे पंसद नहीं करती और कहती है– 'भैय्या दूसरे मजहब बालों से दोस्ती हो सकती है मगर नस्ल नहीं चल सकती है अपनी कोख से अपना बच्चा पैदा किया जा सकता है पराया नहीं।"[6] लेकिन दूसरी ओर वही माँ जब उनका दूसरा बेटा दिलशाह को मिश्रा जी गोद लेते है तो खुश होती है। यह इन्सान की इन्सान से टकराहट, धर्म, भाषा, जाति–पात की दरी का चित्रण करती है। कहानी दिल व दिमाग की टकराहट की साक्षी है। इसी प्रकार किस्सा जाम का यह कहानी कला की दृष्टि से जहाँ यह कहानी तकनीक को ऊँचा उठने से रोकती है वही एक प्रतिबद्ध रचनाकार की दृष्टि से यह कहानी को एक उत्तेजक बहस का रूप प्रदान करती है और इस बहस में भागीदारी के लिए पाठक को ललकारती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नासिरा शर्मा की कहानियों भले ही साहित्य में अपना स्थान बना ले मगर उनका जो सामाजिक सरोकार है वह इन कहानियों की बुनियाद है। जो हमारे समाज का सच भी है और वेदना भी। इसलिए ये कहानियाँ एक बहुत बड़े समुदाय से ताल्लुक रखती हैं। ये कहानियाँ एक समुदाय विशेष की होकर भी विचित्र वर्गों का प्रतिनिधित्व करती हैं। नारी के संघर्षों और उत्पीडनों से उपजी विद्रूपताओं तथा अर्थहीन सामाजिक रूड़ियों पर तीखी चोट करती ये कहानियाँ समकालीन परिवेश और जीवन की विसंगतियों का प्रखर विश्लेषण भी करती हैं।

संदर्भ :-

1. नासिरा शर्मा, खुदा की वापसी, पृ. 6
2. वही, पृ. 18
3. नासिरा शर्मा, दूसरा कबूतर, पृ. 78
4. नासिरा शर्मा, इब्ने मरियम, पृ. 159
5. नासिरा शर्मा, शामी कागज, पृ. 105
6. नासिरा शर्मा, इन्सानी नस्ल, पृ. 125

संपर्क– 9421333140

dr.vijaykraut@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 116-118

"एक और द्रोण" : समसामयिक शिक्षा व्यवस्था में नैतिक पतन की पड़ताल

डॉ. नरेश कुमार सिहाग
अध्यक्ष एवम् शोध निर्देशक हिंदी विभाग, टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर, राजस्थान

परिचय :-

समकालीन हिंदी साहित्य में जब यथार्थ के तल्ख सवालों की बात होती है तो मधुकांत की कहानी 'एक और द्रोण' जैसे रचनात्मक दस्तावेजों को विशेष स्थान मिलता है। यह कहानी मात्र एक स्त्री की व्यक्तिगत पीड़ा नहीं है, बल्कि यह भारतीय शिक्षा व्यवस्था की नैतिक विफलताओं की सूक्ष्म सामाजिक पड़ताल करती है। कहानी के केंद्र में है – 'नर्मदा' नाम की एक पात्र, जो स्वयं पीड़िता है और बाद में शिक्षक बन कर उसी व्यवस्था को चुनौती देती है, जो उसकी आत्मा को कुचल चुकी थी।

यह आलेख 'एक और द्रोण' कहानी के आधार पर उच्च शिक्षा में व्याप्त यौन शोषण, गुरु–शिष्य संबंधों के नैतिक अवमूल्यन, पीएच.डी. शोध–प्रक्रिया में मानसिक शोषण, तथा शिक्षा संस्थानों की प्रशासनिक निष्क्रियता को समाजशास्त्रीय और नारीवादी दृष्टिकोणों से विश्लेषित करता है।

1. कहानी का सार और संरचना :-

'एक और द्रोण' कहानी नर्मदा नामक महिला शोधार्थी की आत्मकथा के रूप में सामने आती है, जिसमें उसके द्वारा लिखी गई डायरी के माध्यम से पाठक उन यंत्रणाओं का साक्षी बनता है, जो वह एक पुरुष गाइड – डॉ. चन्द्रेश – के हाथों झेलती है। यह कहानी उसके निजी अनुभवों, मानसिक संघर्षों, पारिवारिक संकोचों और अंततः उस प्रतिशोध की भी कहानी है, जो वर्षों की चुप्पी के बाद वह "मी टू आंदोलन" से प्रेरित होकर लेती है।

2. शोध गाइड का 'द्रोणाचार्य' बन जाना :-

यह कहानी गुरु–शिष्य परंपरा के पवित्र रिश्ते को कलंकित करने वाले उस वर्ग की ओर इंगित करती है जो आज के शिक्षण संस्थानों में "गुरु" की वेशभूषा में "शोषक" की भूमिका निभा रहा है। डॉ. चन्द्रेश का चरित्र उस "द्रोणाचार्य" का आधुनिक रूप है जो एकलव्य से अंगूठा नहीं, बल्कि उसकी आत्मा तक छीन लेना चाहता है।

मुख्य लक्षण :-

– छात्राओं से व्यक्तिगत काम करवाना (दूध, मिठाई, गाजर पाक)

– भावनात्मक दोहन ('तुम मेरी प्रिय छात्रा हो', 'गुरु की सेवा ही धर्म है')
– शोध को अटका कर मानसिक दमन करना।
– अंततः शारीरिक शोषण की ओर संकेत।

3. 'मी टू आंदोलन' और स्त्री आत्मबोध :–

नर्मदा का अपने गाइड डॉ. चन्द्रेश पर मुकदमा ठोकने का निर्णय, केवल एक व्यक्तिगत प्रतिशोध नहीं बल्कि पूरे पितृसत्तात्मक शिक्षातंत्र के विरुद्ध आवाज है। यह नारी चेतना का वह रूप है जिसमें वह पीड़िता से प्रतिरोधकर्ता में रूपांतरित होती है।

यह स्पष्ट करता है कि मी टू जैसे आंदोलनों की प्रासंगिकता केवल सिनेमा या कॉर्पोरेट दायरे तक नहीं सीमित है, बल्कि शिक्षा के मंदिर माने जाने वाले विश्वविद्यालयों तक फैली है, जहाँ भीरुता, चुप्पी और प्रतिष्ठा के डर में लड़कियाँ अपने जख्मों को वर्षों तक छिपाती हैं।

4. शिक्षा संस्थानों की चुप्पी और प्रशासनिक चुप्पी :–

कहानी में विश्वविद्यालय प्रशासन की भूमिका भी उभरती है, जो बदनामी के भय से मामले को दबा देता है। नित्या की आत्महत्या को 'रफादफा' करना, वीसी का आपात कार्यवाही कर शव को गाँव भेज देना – यह सब इस ओर संकेत करता है कि संस्थान पीड़िता से अधिक अपनी प्रतिष्ठा की चिंता करते हैं।

प्रमुख प्रश्न :–

– क्या विश्वविद्यालयों में कोई सुरक्षित शिकायत तंत्र है?
– क्या यौन शोषण मामलों में गाइड/प्रोफेसर की नियुक्ति प्रक्रिया की समीक्षा होती है?
– क्या शोधार्थी मानसिक सुरक्षा का अनुभव करते हैं?

5. मनोवैज्ञानिक व सामाजिक प्रभाव :–

नर्मदा का वर्षों तक अपनी डायरी न खोल पाना, उसकी PTSD (Post Traumatic Stress Disorder) जैसी मानसिक स्थिति को इंगित करता है। न केवल आत्मसम्मान की क्षति, बल्कि विवाहिक जीवन में भी उसके भीतर असंतुलन बना रहता है। यह सामाजिक ढांचे में स्त्रियों की दोहरी भूमिका – 'घर की लाज' और 'शिक्षा की महत्वाकांक्षा' – के द्वंद्व को दर्शाता है।

6. रूपकों का सांकेतिक प्रयोग :–

मधुकांत ने 'द्रोणाचार्य', 'एकलव्य', 'गाय', 'गाजर पाक', 'लाक्षागृह', 'बिल्ली के गले में घंटी', आदि रूपकों का प्रयोग अत्यंत प्रभावी ढंग से किया है। ये प्रतीक न केवल कथा की संवेदना को गहराते हैं, बल्कि एक शोषित स्त्री की अंतःव्यथा को भी सांस्कृतिक धरातल प्रदान करते हैं।

7. नर्मदा : प्रतिरोध का रूपक :–

कहानी का सबसे सशक्त पक्ष है – नर्मदा का रूपांतरण। जहाँ अधिकांश महिलाएँ चुप्पी साध लेती हैं, नर्मदा अपनी परिस्थिति, समाज और आत्मग्लानि से जूझते हुए अंततः न्याय की लड़ाई को स्वयं अपने हाथ में लेती है।

यह आधुनिक नारी के उभरते स्वरूप का प्रतीक है, जो आत्मदया की बजाय संघर्ष का पथ अपनाती है। "मैं ही बिल्ली के गले में घंटी बांधूंगी" – यह वाक्य पूरी कहानी का नारीवादी घोषणा पत्र बन जाता है।

8. समकालीनता और प्रासंगिकता :–

कहानी आज के उस यथार्थ को उद्घाटित करती है जिसे हम अक्सर नजरंदाज कर देते हैं :–

– विश्वविद्यालयों में शोषण के विरुद्ध ठोस व्यवस्था का अभाव।

– पुरुष शिक्षकों द्वारा शोधार्थी छात्राओं के साथ शक्ति के दुरुपयोग की घटनाएं।

– संस्थानों का पीड़ित की बजाय अभियुक्त को संरक्षण देना।

– 'डिग्री' और 'प्रतिष्ठा' के नाम पर विवशता को न्यायसंगत ठहराना।

निष्कर्ष :–

'एक और द्रोण' केवल कहानी नहीं, एक सामाजिक दस्तावेज है। यह उस पीड़ा की सच्ची अभिव्यक्ति है जो अक्सर शिक्षण संस्थानों की चमक–दमक में छिप जाती है। यह कहानी पीड़िता को 'नायक' में रूपांतरित करती है। डॉ. नर्मदा का प्रतिशोध, केवल व्यक्तिगत बदला नहीं, बल्कि पूरे व्यवस्था से सवाल करने की शुरुआत है।

यह आलेख इस बात पर बल देता है कि शिक्षा व्यवस्था को नैतिकता और उत्तरदायित्व से युक्त करना अनिवार्य है। शोषण के विरुद्ध आवाज उठाना केवल साहस नहीं, सामाजिक जिम्मेदारी है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. बौर, ऋचा – मी टू आंदोलन और भारतीय संदर्भ, वाणी प्रकाशन।
2. रघुवंशी, शशिकला – स्त्री विमर्श और हिंदी कहानी, राजकमल प्रकाशन।
3. फुले, सावित्रीबाई – शिक्षा में स्त्री चेतना, अनुबंध प्रकाशन।
4. नंदी, अजय – विश्वविद्यालयों में नैतिक मूल्यों का पतन, एशियन बुक्स।
5. मधुकांत – एक और द्रोण (मूल कहानी)।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 119–124

पीलीबंगा तहसील का भौगोलिक अध्ययन (हनुमानगढ़ जिले के विशेष संदर्भ में)

Geographical Study of Pilibanga Tehsil (With Special Reference to Hanumangarh District)

KALPNA
ASSISTANT PROFESSOR (GEOGRAPHY)
GOVERNMENT GIRLS COLLEGE (HANUMANGRH) PILIBANGA, HANUMANGARH.

Abstract :-

पीलीबंगा तहसील, राजस्थान के उत्तरी भाग में स्थित हनुमानगढ़ जिले की एक महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक इकाई है, जिसका भौगोलिक अध्ययन क्षेत्रीय विकास, प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग तथा सामाजिक–आर्थिक संरचना की समझ के लिए अत्यंत उपयोगी है। यह क्षेत्र थार मरुस्थल की सीमाओं के समीप स्थित होने के कारण अर्ध–शुष्क जलवायु से प्रभावित है, जहाँ वर्षा अल्प मात्रा में होती है तथा तापमान में अत्यधिक परिवर्तन देखा जाता है। सतही स्थलाकृति समतल एवं बालुकामयी है, जिसमें कुछ भागों में स्थाई एवं अस्थाई नहरें सिंचाई के प्रमुख स्रोत के रूप में कार्य करती हैं। पीलीबंगा तहसील की प्रमुख नदी घग्घर है, जो मौसमी जलधारा के रूप में क्षेत्र की जल व्यवस्था में योगदान देती है। यहाँ की कृषि प्रणाली प्रमुखतः नहर सिंचाई पर निर्भर है, विशेषकर इंदिरा गांधी नहर परियोजना के प्रभाव से क्षेत्र में हरित क्रांति की छाप देखी जा सकती है। मुख्य फसलें गेहूं, कपास, सरसों और बाजरा हैं। जनसंख्या का वितरण अपेक्षाकृत असंतुलित है, जिसमें ग्रामीण क्षेत्रों का प्रभुत्व है। सामाजिक–सांस्कृतिक दृष्टि से यह क्षेत्र विविधतापूर्ण है, जहाँ विभिन्न जातियाँ और समुदाय मिल–जुलकर रहते हैं। भौगोलिक दृष्टि से पीलीबंगा की अवस्थिति, जलवायु, मृदा, जलस्रोत, कृषि और जनसंख्या जैसे तत्व इसके क्षेत्रीय विकास की संभावनाओं और चुनौतियों को परिभाषित करते हैं। यह अध्ययन पीलीबंगा तहसील के प्राकृतिक और मानवीय तत्वों की अंतःक्रिया को समझने में सहायक सिद्ध होता है तथा हनुमानगढ़ जिले की समग्र विकास रणनीतियों में योगदान करता है।

Keywords :- पीलीबंगा तहसील, हनुमानगढ़ जिला, भौगोलिक स्थिति, अर्ध–शुष्क जलवायु, स्थलाकृति, घग्घर नदी, इंदिरा गांधी नहर परियोजना, सिंचाई व्यवस्था, कृषि प्रणाली, गेहूं, कपास, सरसों, बाजरा, जनसंख्या वितरण, ग्रामीण संरचना, सामाजिक–सांस्कृतिक विविधता, मृदा प्रकार, जल संसाधन, क्षेत्रीय विकास, पर्यावरणीय चुनौतियाँ, प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग।

Article :

राजस्थान राज्य का उत्तरी भाग भौगोलिक दृष्टि से विविधताओं से युक्त है, जहाँ मरुस्थलीय प्रभाव, सिंचाई परियोजनाओं का विस्तार तथा सामाजिक–सांस्कृतिक विविधता क्षेत्रीय विशेषताओं को परिभाषित करती है। इसी परिप्रेक्ष्य में पीलीबंगा तहसील, हनुमानगढ़ जिले की एक महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक इकाई के रूप में सामने आती है। यह क्षेत्र, अपने अर्ध–शुष्क जलवायु, समतल स्थलाकृति, नहरों से सिंचित कृषि व्यवस्था तथा ग्रामीण जीवन–शैली के कारण विशेष अध्ययन योग्य बनता है। इंदिरा गांधी नहर परियोजना के विस्तार ने न केवल इस क्षेत्र की कृषि प्रणाली को रूपांतरित किया है, बल्कि सामाजिक–आर्थिक परिवर्तनों को भी गति दी है।

पीलीबंगा तहसील का भौगोलिक अध्ययन, प्राकृतिक तत्वों (जैसे जलवायु, मृदा, स्थलरूप, जलस्रोत) और मानवीय क्रियाकलापों (जैसे कृषि, बस्तियाँ, परिवहन एवं आजीविका) के मध्य संबंधों की समझ को स्पष्ट करता है। यह अध्ययन क्षेत्रीय विकास की संभावनाओं के साथ–साथ पर्यावरणीय चुनौतियों को समझने के लिए भी उपयोगी है। हनुमानगढ़ जिले के संदर्भ में, पीलीबंगा न केवल कृषि उत्पादन में अग्रणी है, बल्कि जनसंख्या वितरण, सिंचाई विस्तार और सांस्कृतिक जीवन के विविध पहलुओं में भी विशिष्ट स्थान रखती है।

भौगोलिक दृष्टि से पीलीबंगा तहसील 29025′ से 29050′ उत्तरी अक्षांश और 74005′ से 74030′ पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित है। यह तहसील राजस्थान के उत्तर–पश्चिमी भाग में स्थित हनुमानगढ़ जिले के दक्षिण–पश्चिम भाग में अवस्थित है। इसके उत्तर में हनुमानगढ़ तहसील, दक्षिण में सूरतगढ़ (श्रीगंगानगर जिला), पूर्व में टिब्बी तथा पश्चिम में रावतसर तहसील सीमाएँ बनाती हैं। इसका कुल भौगोलिक क्षेत्रफल लगभग 1,100 वर्ग किलोमीटर है। क्षेत्र की स्थलाकृति सामान्यतः समतल है, परंतु कहीं–कहीं रेतीले टिब्बों का विस्तार भी देखा जाता है। पीलीबंगा की प्राकृतिक सीमाओं को इंदिरा गांधी नहर, घग्घर नदी की मौसमी धारा तथा रेत की धाराएँ परिभाषित करती हैं। यह क्षेत्र मुख्य रूप से ग्रामीण है, परंतु पीलीबंगा कस्बा एक स्थानीय शहरी केंद्र के रूप में उभर रहा है, जो तहसील प्रशासन, बाजार व्यवस्था और परिवहन केंद्र के रूप में कार्य करता है। इस प्रकार, भौगोलिक दृष्टिकोण से पीलीबंगा तहसील विविध प्राकृतिक एवं मानवीय तत्वों का समन्वयात्मक क्षेत्र है।

प्राकृतिक भू-आकृतियाँ एवं जलवायु :-

पीलीबंगा तहसील की प्राकृतिक भू–आकृति हनुमानगढ़ जिले के समग्र भौगोलिक परिदृश्य का प्रतिबिंब प्रस्तुत करती है। यह क्षेत्र थार मरुस्थल की सीमावर्ती पट्टी में स्थित होने के कारण मुख्यतः समतल और अर्ध–शुष्क स्थलरूप वाला है, जहाँ रेत के टिब्बों और समतल मैदानों का मिश्रण मिलता है। अधिकांश भूमि समतल है, किंतु कहीं–कहीं हल्की ढाल और अनियमित ऊँचाई वाले रेत के टीलों की उपस्थिति भी देखी जाती है। भू–आकृतिक रूप से यह क्षेत्र नवीन जलोढ़ मैदानों में आता है, जो इंदिरा गांधी नहर परियोजना के कारण कृषि योग्य बन गया है। पहले यह क्षेत्र मरुस्थलीय लक्षणों से परिपूर्ण था, परंतु सिंचाई के विस्तार के बाद रेत के टिब्बों का स्थिरीकरण हुआ है और बड़ी मात्रा में भूमि पर खेती संभव हुई है। भूगर्भीय दृष्टि से यह क्षेत्र अरावली की उत्तर–पश्चिमी ढाल से प्रभावित नहीं होता, बल्कि पंजाब और हरियाणा की सीमांत समतल पट्टियों की भांति फैला हुआ मैदान है।

जलवायु की दृष्टि से पीलीबंगा तहसील अर्ध–शुष्क जलवायु क्षेत्र में आती है, जो इसकी कृषि, जल संसाधन तथा मानव जीवन की दिशा को निर्धारित करती है। यहाँ वर्ष भर तापमान में अत्यधिक उतार–चढ़ाव

देखा जाता है। गर्मी के मौसम में अधिकतम तापमान 46°C तक पहुँच सकता है, जबकि सर्दी में न्यूनतम तापमान 3°C से भी नीचे चला जाता है। गर्मियों में लू चलना आम बात है और सूर्य की तीव्रता अत्यधिक होती है। वर्षा की बात करें तो यहाँ औसत वार्षिक वर्षा लगभग 200 से 300 मिमी के बीच होती है, जो मुख्यतः मानसून काल (जुलाई से सितंबर) में सीमित रहती है। वर्षा की अनियमितता और असमान वितरण कृषि उत्पादन को अस्थिर बनाते हैं। क्षेत्र में हवाओं की दिशा सामान्यतः पश्चिम से पूर्व की ओर होती है और गर्मी के समय ये शुष्क तथा तेज होती हैं, जो मिट्टी के कटाव तथा मरुस्थलीकरण की प्रवृत्तियों को बढ़ाती हैं। सर्दियों में धुंध और हल्की ठंडक हवाओं के माध्यम से छाई रहती है। आर्द्रता वर्ष के अधिकांश समय में कम रहती है, विशेषकर गर्मियों में यह 20% से भी नीचे पहुँच जाती है, जबकि मानसून के दौरान यह 60% तक बढ़ जाती है। इस प्रकार, पीलीबंगा तहसील की भू–आकृति और जलवायु मिलकर एक विशिष्ट भौगोलिक पहचान निर्मित करते हैं, जो इसके पर्यावरणीय, कृषि और सामाजिक स्वरूप को प्रभावित करते हैं।

मृदा एवं भूजल, जल संसाधन एवं सिंचाई व्यवस्था :-

पीलीबंगा तहसील की मृदा संरचना इसकी कृषि उत्पादकता, जल संरक्षण तथा भूमि उपयोग प्रणाली को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। यह क्षेत्र मुख्यतः नवीन जलोढ़ मृदा से आच्छादित है, जो हल्की से मध्यम बनावट वाली होती है। यहाँ की मृदा सामान्यतः रेतीली, दोमट तथा कहीं–कहीं लवणीय या क्षारीय प्रवृत्ति की होती है। रेतीली मृदा जल धारण क्षमता में कमजोर होती है, जिससे सिंचाई की निरंतरता बनाए रखना आवश्यक होता है। हालांकि इंदिरा गांधी नहर परियोजना के प्रभाव से यहाँ की भूमि में नमी बढ़ी है, जिससे मृदा की उर्वरता में सुधार हुआ है। फिर भी अधिक सिंचाई और अनुचित जल प्रबंधन के कारण कुछ क्षेत्रों में जलभराव एवं क्षारीकरण की समस्या उभर रही है, जो कृषि के लिए चुनौती है।

भूजल संसाधन की दृष्टि से पीलीबंगा तहसील का परिदृश्य मिश्रित है। प्राकृतिक वर्षा सीमित होने के कारण भूजल का पुनर्भरण धीमा होता है, जबकि सिंचाई, घरेलू और औद्योगिक उपयोग के लिए भूजल का अत्यधिक दोहन किया गया है। इससे जलस्तर में गिरावट देखी गई है। कुछ गाँवों में जलस्तर 80 से 100 फीट तक पहुँच चुका है। भूजल की गुणवत्ता भी चिंता का विषय है, क्योंकि कई स्थानों पर जल में फ्लोराइड, नाइट्रेट तथा लवणीयता की मात्रा मानक से अधिक पाई जाती है, जिससे पीने योग्य जल की उपलब्धता प्रभावित होती है।

जल संसाधनों की संरचना में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका इंदिरा गांधी नहर परियोजना निभाती है, जो पीलीबंगा तहसील की जीवन रेखा बन चुकी है। इस परियोजना के अंतर्गत मुख्य नहर, वितरिका और खालों का जाल क्षेत्र भर में फैला हुआ है। यह नहर पंजाब से निकलकर राजस्थान के शुष्क क्षेत्रों में सिंचाई सुविधा प्रदान करती है, जिससे क्षेत्र में हरित क्रांति जैसी स्थिति उत्पन्न हुई है। इस नहर प्रणाली ने रबी और खरीफ दोनों ऋतुओं में खेती को संभव बनाया है। नहरों के अतिरिक्त परंपरागत कुएँ, ट्यूबवेल और नलकूप भी जल आपूर्ति के साधन हैं, किंतु नहरों की सुलभता के कारण इनका उपयोग अपेक्षाकृत कम हो गया है। कुल मिलाकर, पीलीबंगा तहसील में मृदा की विविधता, सीमित भूजल भंडार तथा सतही जल संसाधनों की भूमिका एक समन्वित जल प्रबंधन प्रणाली की माँग करती है, ताकि कृषि उत्पादन के साथ–साथ पर्यावरणीय संतुलन भी बना रहे। इसके लिए जल संरक्षण, ड्रिप इरिगेशन जैसी तकनीकों का विस्तार तथा मृदा परीक्षण आधारित कृषि को बढ़ावा

देना आवश्यक है।

कृषि परिदृश्य :-

पीलीबंगा तहसील का कृषि परिदृश्य इसके भौगोलिक, पर्यावरणीय एवं सामाजिक–आर्थिक कारकों से गहराई से जुड़ा हुआ है। यह क्षेत्र मुख्यतः अर्ध–शुष्क जलवायु के अंतर्गत आता है, जहाँ परंपरागत रूप से कृषि वर्षा पर आधारित थी, लेकिन इंदिरा गांधी नहर परियोजना के आगमन के पश्चात इस क्षेत्र में सिंचित कृषि का अभूतपूर्व विकास हुआ है। इससे पीलीबंगा तहसील को हनुमानगढ़ जिले की प्रमुख कृषि उत्पादक तहसीलों में स्थान प्राप्त हुआ है। यहाँ की मृदा मुख्यतः रेतीली–दोमट है, जो उचित सिंचाई एवं उर्वरकों के प्रयोग से उच्च उत्पादकता देने में सक्षम है। मुख्यतः दो कृषि ऋतुएँ खरीफ और रबी प्रचलित हैं। खरीफ में प्रमुख फसलें कपास, ग्वार, बाजरा और मूँग हैं, जबकि रबी में गेहूं, सरसों, चना और जौ की खेती होती है। कपास की खेती इस क्षेत्र की पहचान बन चुकी है, जिसे "श्वेत सोना" कहा जाता है और यह यहाँ की अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख आधार है। गेहूं और सरसों रबी की अत्यंत महत्त्वपूर्ण नगदी फसलें हैं, जिनका उत्पादन नहर सिंचाई के विस्तार के बाद तीव्रता से बढ़ा है। फल–सब्जियों की खेती भी अब कुछ क्षेत्रों में की जा रही है, जैसे टमाटर, भिंडी, तरबूज एवं खरबूज, विशेषकर जहाँ जल आपूर्ति की नियमितता है।

कृषि में यांत्रिकीकरण की प्रवृत्ति भी धीरे–धीरे बढ़ रही है। ट्रैक्टर, थ्रेशर, स्प्रिंकलर एवं हार्वेस्टर जैसे उपकरणों का उपयोग किसानों द्वारा किया जा रहा है। साथ ही, कुछ क्षेत्रों में ड्रिप इरिगेशन एवं मल्चिंग जैसी आधुनिक तकनीकों का प्रयोग भी आरंभ हो चुका है। कृषि उपज का विपणन स्थानीय मंडियों तथा पीलीबंगा कस्बे के बाजारों के माध्यम से होता है। इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा समर्थन मूल्य पर खरीद और कृषि बीमा योजनाएँ किसानों के लिए सहायक बन रही हैं। हालाँकि, क्षेत्र में कृषि विकास की दिशा में अनेक उपलब्धियाँ हैं, फिर भी कुछ चुनौतियाँ भी बनी हुई हैं, जैसे – जल स्तर में गिरावट, भूमि की लवणीयता, वर्षा की अनिश्चितता, कीट एवं रोगों की समस्या, और सीमित तकनीकी ज्ञान। इन समस्याओं से निपटने हेतु कृषि विस्तार सेवाओं, प्रशिक्षण कार्यक्रमों तथा सहकारी संस्थाओं की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

आर्थिक गतिविधियाँ, परिवहन एवं संचार :-

पीलीबंगा तहसील की आर्थिक गतिविधियाँ मुख्यतः कृषि पर आधारित हैं, लेकिन आधुनिक परिवर्तनों के साथ–साथ अन्य आर्थिक क्षेत्रों का भी विकास हो रहा है। कृषि यहाँ की प्रमुख जीवनरेखा है, जिसमें गेहूं, कपास, सरसों, ग्वार और चना जैसी फसलें प्रमुख हैं। इंदिरा गांधी नहर परियोजना के प्रभाव से सिंचित भूमि का विस्तार हुआ है, जिससे फसलों की उत्पादकता में वृद्धि हुई है और इससे कृषक समुदाय की आय एवं जीवन स्तर में सुधार हुआ है। कृषि से संबंधित सहायक गतिविधियाँ जैसे दुग्ध उत्पादन, पशुपालन, खाद–बीज वितरण, कृषि यंत्र किराया सेवा इत्यादि स्थानीय स्तर पर रोजगार के साधन बनते जा रहे हैं।

तहसील में लघु एवं कुटीर उद्योगों की भी उपस्थिति देखने को मिलती है। विशेषकर कपास की प्रोसेसिंग से संबंधित जिनिंग एवं प्रेसिंग इकाइयाँ, खाद्य प्रसंस्करण इकाइयाँ, आटा चक्कियाँ, सरसों तेल मिलें, और बुनाई–कढ़ाई से जुड़ी घरेलू इकाइयाँ ग्रामीण अर्थव्यवस्था को विविधता प्रदान कर रही हैं। पीलीबंगा कस्बे में कई व्यापारिक प्रतिष्ठान, कृषि मंडी और सेवा क्षेत्र की इकाइयाँ कार्यरत हैं, जो स्थानीय व्यापार को सुदृढ़ बनाते हैं। कुछ युवाओं ने छोटे स्तर पर दुकानों, मोबाइल मरम्मत, मोटरसाइकिल गैरेज, व अन्य सेवा–व्यवसायों के माध्यम

से आत्मनिर्भरता की ओर कदम बढ़ाया है। परिवहन की दृष्टि से पीलीबंगा तहसील में सड़क और रेल दोनों का अच्छा नेटवर्क है। राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 62 (पूर्व नाम एनएच 15) इस क्षेत्र को बीकानेर, श्रीगंगानगर, हनुमानगढ़ और आगे पंजाब से जोड़ता है। तहसील मुख्यालय पीलीबंगा नगर, रेलवे द्वारा भी जुड़ा हुआ है, जो बीकानेर–श्रीगंगानगर रेलखंड पर स्थित है। इससे माल एवं जन परिवहन दोनों में सुविधा हुई है। गाँवों को मुख्य मार्गों से जोड़ने वाली पक्की सड़कों की संख्या में वृद्धि हुई है, जिससे कृषि उत्पादों का विपणन आसान हुआ है और आवागमन की गति भी बढ़ी है। संचार व्यवस्था में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई है। मोबाइल नेटवर्क की पहुँच अब अधिकतर गाँवों तक हो चुकी है। इंटरनेट सेवा, विशेषकर 4G कनेक्टिविटी, छात्रों, व्यापारियों और आम जनता के लिए सूचना प्राप्ति एवं डिजिटल लेन–देन का माध्यम बन गई है। डाकघर, बैंकिंग सेवाएँ, कॉमन सर्विस सेंटर और ई–मित्र केंद्र जैसे संस्थान ग्रामीण क्षेत्र में वित्तीय समावेशन और ई–गवर्नेंस को बढ़ावा दे रहे हैं।

सामाजिक-सांस्कृतिक विशेषताएँ :-

पीलीबंगा तहसील की सामाजिक–सांस्कृतिक संरचना विविधता, समरसता और परंपराओं से ओत–प्रोत है। यहाँ की जनसंख्या बहुजातीय एवं बहुधार्मिक है, जिसमें मुख्य रूप से जाट, राजपूत, ब्राह्मण, मेघवाल, नाई, सैनी, खटीक, बनिया, सिख तथा अनुसूचित जातियाँ और जनजातियाँ निवास करती हैं। जातीय विविधता के बावजूद आपसी सहयोग, सामाजिक समरसता एवं मेल–मिलाप की भावना यहाँ के समाज की विशेष पहचान है। विशेषकर जाट एवं सिख समुदाय कृषि आधारित जीवनशैली के साथ यहाँ की सामाजिक धुरी को परिभाषित करते हैं। धर्म की दृष्टि से हिन्दू और सिख धर्म के अनुयायी बहुसंख्या में हैं। गुरुद्वारे और मंदिर सामाजिक जीवन के केंद्र हैं, जहाँ धार्मिक अनुष्ठानों के साथ–साथ सामूहिक निर्णय, पंचायत बैठकें और सामाजिक आयोजनों का आयोजन होता है। यहाँ के ग्रामीण समाज में लोक परंपराएँ, रीति–रिवाज़ और जातीय पंचायतें अब भी प्रभावशाली हैं। विवाह, जन्म, मृत्यु तथा त्यौहारों के आयोजन सामूहिक सहभागिता और पारंपरिक रीति से संपन्न होते हैं। भाषा के रूप में बागड़ी एवं राजस्थानी मिश्रित पंजाबी बोली का प्रचलन है, जो स्थानीय जनजीवन की सांस्कृतिक पहचान को दर्शाती है। लोकनृत्य, लोकगीत, मेलों और तीज–त्यौहारों में इन भाषाओं की जीवंतता स्पष्ट देखी जा सकती है। लोहड़ी, मकर संक्रांति, होली, बैसाखी, दिवाली, गुरु नानक जयंती आदि यहाँ के प्रमुख पर्व हैं, जिन्हें सामूहिकता एवं उल्लास के साथ मनाया जाता है। परिधान एवं रहन–सहन में परंपरा और आधुनिकता का मिश्रण दिखाई देता है।

विकास की संभावनाएँ :-

पीलीबंगा तहसील में विकास की संभावनाएँ विविध क्षेत्रों में मौजूद हैं, विशेषकर कृषि, सिंचाई, ग्रामीण उद्योग, शिक्षा एवं बुनियादी ढाँचे में। इंदिरा गांधी नहर परियोजना की उपलब्धता ने कृषि को सशक्त आधार प्रदान किया है, जिसे आधुनिक तकनीकों जैसे ड्रिप इरिगेशन, जैविक खेती एवं कृषि यंत्रीकरण से और उन्नत किया जा सकता है। क्षेत्र में लघु एवं कुटीर उद्योगों, जैसेकृकपास प्रोसेसिंग, खाद्य प्रसंस्करण तथा हस्तशिल्प के विकास की पर्याप्त संभावनाएँ हैं, जो रोजगार सृजन में सहायक हो सकते हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएँ, डिजिटल कनेक्टिविटी एवं ग्रामीण परिवहन के क्षेत्र में सरकारी योजनाओं और जनसहभागिता से प्रगति की दिशा मजबूत की जा सकती है। पर्यटन की दृष्टि से भी ग्रामीण संस्कृति और मेलों को बढ़ावा दिया जा सकता है। यदि

प्राकृतिक संसाधनों का सतत उपयोग, जल प्रबंधन और सामाजिक समरसता को बनाए रखते हुए योजनाबद्ध विकास किया जाए, तो पीलीबंगा तहसील एक आदर्श ग्रामीण विकास मॉडल बन सकती है।

Conclusion :

पीलीबंगा तहसील का भौगोलिक अध्ययन स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि यह क्षेत्र प्राकृतिक एवं मानवीय तत्वों की परस्पर क्रिया का उत्कृष्ट उदाहरण है। अर्ध–शुष्क जलवायु, सीमित वर्षा, रेतीली मृदा और समतल स्थलाकृति जैसे भौगोलिक कारकों ने यहाँ की कृषि, जलसंसाधन और जनजीवन को गहराई से प्रभावित किया है। इंदिरा गांधी नहर परियोजना के आगमन से जहाँ एक ओर कृषि में हरित क्रांति का प्रभाव दिखाई देता है, वहीं दूसरी ओर भूमि की उर्वरता एवं जल प्रबंधन संबंधी नई चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं। जनसंख्या वितरण, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, आजीविका के पारंपरिक साधनों से जुड़ा हुआ है, लेकिन सिंचाई सुविधाओं के विस्तार और परिवहन संपर्कों के विकास से धीरे–धीरे आर्थिक एवं सामाजिक बदलाव भी देखने को मिल रहे हैं। सामाजिक–सांस्कृतिक दृष्टि से पीलीबंगा विविधताओं से भरपूर है, जहाँ विभिन्न जातियाँ और समुदाय पारंपरिक लोकजीवन को संरक्षित रखते हुए विकास की ओर अग्रसर हैं।

References :

1. राजस्थान का भूगोल – डॉ. लक्ष्मण सिंह, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2021
2. हनुमानगढ़ जिला गजेटियर, राजस्थान राज्य अभिलेखागार विभाग, जयपुर, 2015
3. इंदिरा गांधी नहर परियोजना का प्रभावः एक भौगोलिक अध्ययन – डॉ. बी. एल. चौधरी, राजस्थान विश्वविद्यालय प्रकाशन विभाग, जयपुर, 2018
4. थार मरुस्थल : पर्यावरण और विकास – डॉ. एस. एस. शेखावत, वीनस पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2019
5. राजस्थान की जलवायु एवं कृषि व्यवस्था – डॉ. मोहन लाल गुप्ता, सुबोध पब्लिकेशन, जयपुर, 2020
6. भारत का ग्रामीण भूगोल – डॉ. आर. एल. सिंह, सेंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, 2017

Pawan.suthar.Pawan 225@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 125–132

अटल जी की कविताओं में प्रकृति चित्रण

रेणुका कस्तुरे (पोफली) शोधार्थी,
हिन्दी साहित्य, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
डॉ. पुष्पा दुबे, शोध निर्देशक
विभागाध्यक्ष, हिन्दी, शास. गृह विज्ञान स्नात. महावि., नर्मदापुरम् (म.प्र.)

सारांश :-

यह शोध पत्र अटल बिहारी वाजपेयी की कविताओं में प्रकृति के चित्रण का समीक्षात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अटल जी की रचनाओं में प्रकृति मात्र सौंदर्य का दृश्य नहीं, बल्कि भावनाओं, विचारों और जीवन–दर्शन की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। उनकी कविताओं में ऋतुओं, पर्वतों, नदियों, सूर्य–चंद्रमा, फूल–पत्तों जैसे प्रकृति तत्वों का सजीव और संवेदनात्मक चित्रण मिलता है। कभी प्रकृति संघर्ष का प्रतीक बनती है, कभी आत्मसंवाद का माध्यम, तो कभी राष्ट्र की आत्मा का प्रतिनिधित्व करती है। यह शोधपत्र दर्शाता है कि अटल जी की कविताओं में प्रकृति एक सजीव चरित्र की तरह उपस्थित होकर मानवीय अनुभूतियों को विस्तार देती है।

मुख्य □ाब्द : अटल बिहारी वाजपेयी, कविता, प्रकृति चित्रण, प्रतीकवाद, रूपक, ऋतु–वर्णन, आत्मसंवाद, जीवन–दर्शन, हिन्दी साहित्य।

प्रस्तावना :-

हिन्दी साहित्य में प्रकृति का वर्णन एक सुदीर्घ परंपरा रही है। आदिकाल से लेकर आधुनिक युग तक अनेक कवियों ने प्रकृति को विविध रूपों में चित्रित किया है – कभी सौंदर्य के प्रतीक के रूप में, तो कभी भावनाओं के संवाहक के रूप में। इसी परंपरा में अटल बिहारी वाजपेयी एक विशिष्ट कवि के रूप में उभरते हैं, जिनकी कविताएँ भाव, विचार और संवेदना का अद्भुत संगम प्रस्तुत करती हैं।

भारत के पूर्व प्रधानमंत्री अटल जी राजनीति के साथ–साथ साहित्य के क्षेत्र में भी गहरी पैठ रखते थे। उनकी कविताएँ उनके अनुभव, विचार और राष्ट्रभक्ति के साथ–साथ प्रकृति के प्रति उनकी आत्मीयता को भी दर्शाती हैं। उनकी रचनाओं में प्रकृति केवल एक दृश्यात्मक पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि एक जीवंत पात्र के रूप में उपस्थित है जो उनके भावों, चिंताओं और आत्मसंवाद का माध्यम बनती है।

अटल जी की कविताओं में सूर्य, चंद्रमा, आकाश, नदियाँ, पर्वत, फूल, ऋतुएँ आदि तत्वों का प्रयोग प्रतीक और रूपक के रूप में हुआ है, जो उनके विचारों को और भी अधिक गहराई प्रदान करता है। वे जब जीवन के संघर्ष की बात करते हैं, तब 'सूरज' प्रेरणा का प्रतीक बन जाता है; जब वे निराशा व्यक्त करते हैं, तो 'पतझड़' या 'अंधकार' उनके भावों की व्यंजना करता है।

इस शोधपत्र में अटल जी की कविताओं में प्रकृति के बहुआयामी चित्रण का गहन अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यह अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि अटल जी के काव्य में प्रकृति केवल सजावटी तत्व नहीं, बल्कि एक दार्शनिक, भावनात्मक और सांस्कृतिक संदर्भों से जुड़ी सजीव सत्ता है।

अटल जी की कविताओं में प्रकृति का चित्रण :-

अटल बिहारी वाजपेयी की कविताएँ मात्र साहित्यिक अभिव्यक्तियाँ नहीं हैं, बल्कि वे उनके अंतरमन की संवेदनाएँ, संघर्ष, जीवन–दर्शन और राष्ट्र के प्रति उनकी प्रतिबद्धता की सजीव व्याख्या हैं। प्रकृति उनके काव्य में केवल एक सौंदर्य–बोधक तत्व नहीं, बल्कि विचार और भाव का वाहक है। अटल जी की रचनाओं में प्रकृति का चित्रण कई स्तरों पर देखा जा सकता है :

- **प्राकृतिक सौंदर्य का बिंबात्मक चित्रण :** अटल जी की कविताओं में प्रकृति का चित्रण अत्यंत सजीव, चित्रात्मक और भावनात्मक है। उनकी दृष्टि केवल प्रकृति के बाह्य सौंदर्य तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वे उसके भीतर छिपे जीवन–तत्त्व, परिवर्तनशीलता और चिरंतनता को भी रेखांकित करते हैं।

उदाहरण : कविता – "मैं कविता लिखता हूँ"

"बर्फ़ीली चोटियों से सूरज जब टकराता है,
स्वयं जलकर राह बनाता, तब नयन पुलकित हो जाते हैं।"

यहाँ सूरज का "बर्फ़ीली चोटियों से टकराना" संघर्ष और प्रकाश का प्रतीक है, जबकि "नयन पुलकित" होना उस सौंदर्य के प्रति कवि की भावात्मक प्रतिक्रिया है।

- **ऋतु–चित्रण और जीवनचक्र का प्रतीक :** अटल जी की कविताओं में वसंत, पतझड़, वर्षा जैसी ऋतियाँ केवल प्रकृति की स्थिति नहीं, बल्कि जीवन की विभिन्न अवस्थाओं का संकेत बन जाती हैं। पतझड़ जीवन की क्षणभंगुरता को दर्शाता है, तो वसंत नवीन आशा और पुनरुत्थान का प्रतीक बनता है।

उदाहरण : कविता – "जीवन बीत चला है"

"पतझड़ की पल–पल परिवर्तित छाया,
किसी एक क्षण का चित्र नहीं,
बहता झरना, चंचल छाया।"

यहाँ पतझड़ जीवन के अंतिम पड़ाव की ओर संकेत करता है, वहीं 'झरना' जीवन की सतत गति का प्रतीक बनता है।

- **प्रकृति में आत्मसंवाद :** अटल जी प्रकृति के माध्यम से स्वयं से संवाद करते हैं। वे अपने अंतर्द्वंद्वों, प्रश्नों और भावनाओं को प्रकृति के माध्यम से व्यक्त करते हैं।

उदाहरण : कविता – "मैं सोचता हूँ"

"मैं सोचता हूँ
यह जीवन ऐसा क्यों है?
यह पतझड़ क्यों है?
यह हरियाली कहाँ चली गई?"

यहां 'पतझड़' उनके जीवन की निराशा का प्रतीक है, जबकि 'हरियाली' वह आशा है जिसकी उन्हें

तलाश है।

- **प्रकृति और संघ□ि का प्रतीकात्मक संबंध :** अटल जी की कविताओं में प्रकृति कभी–कभी संघर्ष और प्रेरणा का प्रतीक बन जाती है। सूर्य, अग्नि, तूफान जैसे तत्त्व आत्मबल और जिजीविषा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

उदाहरण : कविता – "हार नहीं मानूँगा"
"काल के कपाल पर
लिखता–मिटाता हूँ,
गीत नया गाता हूँ।"

यहाँ "काल के कपाल" एक विराट, भयावह प्रकृति के रूपक के रूप में आता है, और कवि उसे चुनौती देता है।

- **प्रकृति और रा□ट्र भावना का समन्वय :** अटल जी की कविताओं में भारत भूमि, पर्वत, नदियाँ, कंकर, धूल, ये सब केवल भौगोलिक प्रतीक नहीं हैं, बल्कि राष्ट्र की आत्मा के प्रतीक हैं।

उदाहरण : कविता – "भारत माता की जय बोलो"
"इसके कंकर–कंकर में हैं शंकर,
इसके बिंदु–बिंदु में वंदन के योग्य तीर्थ अनेक।"

प्रकृति के प्रतीकों के माध्यम से राष्ट्रभक्ति की भावना अत्यंत सशक्त ढंग से प्रकट की गई है।

- **रूपक और प्रतीकों द्वारा प्रकृति का दार्शनिक प्रयोग :** अटल जी की कविता में प्रकृति केवल दृश्यात्मक अनुभव नहीं है, वह दर्शन बन जाती है। वे पत्तों, फूलों, जल और आकाश के माध्यम से जीवन के गूढ़ प्रश्नों का उत्तर खोजते हैं।

उदाहरण : कविता – "क्या खोया क्या पाया जग में"
"यात्रा जीवन की चलती जाती,
मिलना बिछुड़ना फिर मिलना।
एक दृष्टि पीछे डालो,
यादों की पोटली टटोलो।"

यहाँ प्रकृति का उपयोग जीवन–यात्रा और स्मृति–दर्शन को समझाने के लिए किया गया है।

अटल जी की कविताओं में प्रकृति चित्रण की विशे□ताएँ :-

- **प्रकृति का भावनात्मक चित्रण :** अटल बिहारी वाजपेयी की कविताओं में प्रकृति का चित्रण केवल बाह्य सौंदर्य या दृश्यावली के रूप में नहीं, बल्कि गहन भावनात्मक स्तर पर होता है। वे प्रकृति को एक जीवंत, संवेदनशील सत्ता मानते हैं, जिससे उनका आत्मीय संवाद होता है। उनकी रचनाओं में प्रकृति व्यक्ति की मानसिक स्थिति, भावनाओं और आत्मसंवाद का माध्यम बनती है। पतझड़, हरियाली, वर्षा, सूर्य और चाँद जैसे प्रतीकों के माध्यम से वे मन के भीतर उठते भावों की गूंज को व्यक्त करते हैं।

उदाहरणस्वरूप, उनकी कविता "मैं सोचता हूँ" में वे प्रश्न करते हैं –
"यह पतझड़ क्यों है? यह हरियाली कहाँ चली गई?"

यह सवाल केवल प्रकृति से नहीं है, बल्कि जीवन की दिशा, आशाओं और मनोदशा पर एक आत्ममंथन

है। 'पतझड़' यहाँ मानसिक रिक्तता और हताशा का बिंब है, जबकि 'हरियाली' आशा और जीवन की रचनात्मकता का प्रतीक बनती है।

इसी प्रकार कविता "मैं नया गीत गाता हूँ" में वे डालियों को संबोधित करते हुए लिखते हैं– "झुकी–झुकी सी डालियाँ कह रही हैं – अब जागो!"

यहाँ प्रकृति चेतना का वह स्रोत है जो कवि को प्रेरणा देती है, उसे जागृत करती है। प्रकृति उनके लिए केवल मौन साक्षी नहीं, बल्कि भावनाओं की अभिव्यक्तिदात्री और जीवन–मार्ग की दिशा सूचक बन जाती है।

कई बार प्रकृति कवि के संघर्ष और भावनात्मक जूझ के बिंब को और अधिक स्पष्ट करती है। कविता "आओ फिर से दिया जलाएँ" में 'अंधकार' और 'दीपक' के प्रतीक के माध्यम से अटल जी निराशा और आशा के बीच चल रहे आंतरिक संघर्ष को उजागर करते हैं। दीपक, जो अंधकार से लड़ता है, कवि की आत्मिक शक्ति, जिजीविषा और भावनात्मक संकल्प का प्रतीक है।

अटल जी की प्रकृति केवल दृश्य नहीं, अनुभूति है; वह संवेदना है, संवाद है, और जीवन–दर्शन की एक सशक्त व्याख्या भी। उनके प्रकृति चित्रण में भावनाओं की कोमलता, संघर्ष की दृढ़ता और आत्मिक अनुभूति की गहराई एक साथ समाहित होती हैं। इस प्रकार, अटल जी की कविताओं में प्रकृति का भावनात्मक चित्रण उनके काव्य की आत्मा बनकर उपस्थित होता है।

- **प्रतीकात्मकता एवं रूपकात्मक प्रयोग :** अटल बिहारी वाजपेयी की कविताओं की एक विशिष्ट विशेषता यह है कि वे प्रकृति के तत्वों का प्रयोग केवल दृश्यात्मक सौंदर्य के लिए नहीं करते, बल्कि उन्हें प्रतीकों और रूपकों के माध्यम से गंभीर विचारों, भावनाओं और दार्शनिक चिंतन की अभिव्यक्ति हेतु प्रयुक्त करते हैं। उनकी कविताओं में प्रकृति के घटक जैसे सूर्य, चंद्रमा, बर्फ, पतझड़, दीपक, झरना आदि– मात्र प्राकृतिक वस्तुएँ नहीं हैं, बल्कि वे जीवन के गूढ़ सत्यों, मानवीय संघर्षों, आशाओं और नैतिक मूल्यों के प्रतीक रूप में प्रयुक्त होते हैं।

उदाहरण के लिए, कविता "मैं कविता लिखता हूँ" में वे लिखते हैं –

"बर्फ़ीली चोटियों से सूरज जब टकराता है,
स्वयं जलकर राह बनाता है"।

यहाँ 'सूरज' रूपक है जिजीविषा और आत्मबल का, जबकि 'बर्फ़ीली चोटियाँ' जीवन की कठिनाईयों और अवरोधों का प्रतीक हैं। यह प्रतीकात्मकता बताती है कि जीवन की कठिनाईयों से टकराकर ही नई राह बनती है, और यह संघर्ष कवि के विचार का मूल है।

इसी प्रकार, कविता "हार नहीं मानूँगा" में 'काल के कपाल' का प्रयोग एक विशाल, अटल और भयावह सत्ता के रूप में हुआ है, जो परिवर्तन के विरुद्ध खड़ी है, और जिस पर कवि 'गीत लिखने' का साहस करता है। यह पूरी संरचना ही एक गहरे रूपक का निर्माण करती है जहाँ काल एक निरपेक्ष शक्ति है, और कवि उसकी सीमा पर भी सृजन की मशाल जलाना चाहता है।

कविता "क्या खोया क्या पाया जग में" में 'यादों की पोटली' एक प्रतीक है स्मृतियों के भार और जीवन के अनुभवों का। इसी प्रकार, 'झरना' जीवन की सतत गति और परिवर्तनशीलता का प्रतीक है। प्रकृति के यह रूपक और प्रतीक कवि को उसके जीवन–दर्शन से जोड़ते हैं, जहाँ प्रत्येक वस्तु, घटना या अनुभव में वह किसी व्यापक सत्य की झलक देखता है।

अटल जी के काव्य में 'पतझड़' केवल एक ऋतु नहीं है, वह निराशा, हानि और जीवन के क्षीण क्षणों का प्रतीक बन जाता है; वहीं 'हरियाली' आशा, पुनरुत्थान और नवचेतना का रूप ले लेती है। उनके रूपक अत्यंत सरल प्रतीत होते हैं, परंतु उनमें अंतर्निहित भाव अत्यंत गहरे होते हैं। यही विशेषता उनकी कविता को जनसामान्य के लिए बोधगम्य और समीक्षकों के लिए विमर्श योग्य बनाती है।

इस प्रकार, अटल बिहारी वाजपेयी की कविताओं में प्रतीकात्मकता और रूपकात्मकता का प्रयोग न केवल काव्य की सौंदर्यवृद्धि करता है, बल्कि उसके विचारात्मक स्तर को भी उन्नत करता है। उनके काव्य में प्रकृति के ये प्रतीक और रूपक जीवन के व्यापक दर्शन को सहज, सरल और संवेदनशील भाषा में प्रकट करते हैं।

- **जीवन-दर्शन से प्रकृति का संबंध :** अटल बिहारी वाजपेयी की कविताओं में प्रकृति का संबंध केवल दृश्यात्मक सौंदर्य या भावनात्मक अनुभूति तक सीमित नहीं है, बल्कि वह एक गहन जीवन–दर्शन का माध्यम बन जाती है। वे प्रकृति को एक ऐसी शक्ति मानते हैं जिसमें जीवन, मृत्यु, परिवर्तन, संघर्ष, आशा, क्षणभंगुरता और पुनर्जन्म जैसे तत्व स्वाभाविक रूप से विद्यमान हैं। उनके काव्य में प्रकृति मानव जीवन की गहराईयों को समझने और समझाने का एक सशक्त उपकरण है।

अटल जी जीवन को परिवर्तनशील मानते हैं, और इसी परिवर्तनशीलता को वे प्रकृति की ऋतुओं, प्रवाहों और रूपों के माध्यम से चित्रित करते हैं। कविता "जीवन बीत चला है" में वह लिखते हैं –

"पतझड़ की पल–पल परिवर्तित छाया,
किसी एक क्षण का चित्र नहीं,
बहता झरना, चंचल छाया।"

यहाँ 'पतझड़' जीवन के उत्तरार्द्ध की ओर संकेत करता है, जबकि 'झरना' जीवन की सतत गति और चंचलता का प्रतीक है। यह पंक्ति बताती है कि जीवन कभी एकरूप नहीं होता–वह निरंतर बह रहा है, बदल रहा है।

उनकी कविता में प्रकृति की घटनाएँ सूरज का उगना, झरनों का बहना, हवाओं का बहाव, सब कुछ मानवीय जीवन की किसी न किसी स्थिति का बिंब बन जाती है। उदाहरण के लिए, "मैं कविता लिखता हूँ" में वे कहते हैं –

"बर्फ़ीली चोटियों से सूरज जब टकराता है,
स्वयं जलकर राह बनाता है।"

यह केवल भौगोलिक दृश्य नहीं है, बल्कि जीवन के संघर्ष और आत्म–प्रयास का प्रतीक है। वाजपेयी प्रकृति में ही सत्य, शिव और सुंदर की खोज करते हैं। उनके लिए प्रकृति न केवल जीवन का दर्पण है, बल्कि शिक्षक भी है, जो मौन रहकर भी बहुत कुछ सिखाती है। जब वे कहते हैं "काल के कपाल पर लिखता–मिटाता हूँ", तो वह काल की व्यापकता और मानव सृजन की सीमाओं के बीच की टकराहट को रूपक के रूप में प्रस्तुत करते हैं। यह दर्शन प्रकृति के विराट रूप को स्वीकार करता है, किंतु साथ ही मानव की भूमिका को भी नकारता नहीं।

उनकी कविताओं में प्रकृति का यह दार्शनिक पक्ष हमें यह समझने के लिए प्रेरित करता है कि जीवन एक यात्रा है, जिसमें हर मौसम, हर परिस्थिति, हर दृश्य कुछ कह रहा है, कुछ सिखा रहा है। यह दृष्टिकोण

उन्हें केवल एक प्रकृति प्रेमी कवि नहीं बनाता, बल्कि एक गंभीर जीवन–द्रष्टा के रूप में स्थापित करता है। इस प्रकार अटल जी की कविताओं में प्रकृति जीवन के रहस्यों को उजागर करने वाली एक जीवंत सत्ता बन जाती है। यह प्रकृति न केवल देखने की वस्तु है, बल्कि समझने, आत्मसात करने और उससे जीवन जीने की कला सीखने का माध्यम भी है।

• **रा□ट्रप्रेम और प्रकृति का संगम :** अटल बिहारी वाजपेयी की कविताओं में राष्ट्रप्रेम और प्रकृति का ऐसा विलक्षण संगम दिखाई देता है, जो उनके कवि–हृदय और देशभक्त आत्मा की गहराई को दर्शाता है। उनके लिए भारतवर्ष की प्राकृतिक विविधता– पर्वत, नदियाँ, मिट्टी, धूल, खेत, सूरज, चंद्रमा, केवल सौंदर्य के बिंब नहीं हैं, बल्कि वे राष्ट्र की आत्मा के प्रतीक हैं। अटल जी भारत माता को केवल एक आदर्श के रूप में नहीं, बल्कि एक जीवंत मातृशक्ति के रूप में अनुभव करते हैं, जिसकी प्रकृति से गहराई से जुड़ी हर इकाई उनके हृदय को आंदोलित करती है। उनकी प्रसिद्ध कविता "भारत माता की जय बोलो" में वे कहते हैं –

"इसके कंकर–कंकर में हैं शंकर,
इसके बिंदु–बिंदु में वंदन के योग्य तीर्थ अनेक।"

यहाँ 'कंकर' और 'बिंदु' जैसे सूक्ष्म प्राकृतिक तत्वों को ईश्वरीयता और तीर्थ का दर्जा देकर वे न केवल प्रकृति की पवित्रता को उजागर करते हैं, बल्कि राष्ट्र के प्रति अपार श्रद्धा भी व्यक्त करते हैं। यह प्रकृति और देश की एकात्मता का स्पष्ट संकेत है।

उनके काव्य में हिमालय केवल एक पर्वत नहीं है, वह राष्ट्र की अडिगता, निष्ठा और संकल्प का प्रतीक बनता है। गंगा, यमुना, नर्मदा जैसी नदियाँ भारत की सांस्कृतिक धरोहर और आत्मा का विस्तार प्रतीत होती हैं। उनकी कविता में जब भारतवर्ष की बात होती है, तो वह प्रकृति के अंगों के माध्यम से ही होती है, जैसे "यह धरती तप की, त्याग की, बलिदान की", जिसमें धरती एक ओर मातृभूमि है, दूसरी ओर संस्कारों की जन्मदात्री प्रकृति।

अटल जी की राष्ट्रभक्ति संकीर्ण नहीं है; वह सांस्कृतिक, भौगोलिक और आध्यात्मिक धरातलों पर फैली हुई है। वे जब 'राष्ट्र' की बात करते हैं, तो उसमें प्राकृतिक वैभव स्वाभाविक रूप से समाहित होता है। उनका राष्ट्रप्रेम किसी राजनैतिक सीमा में बंधा हुआ नहीं, बल्कि वह संपूर्ण प्रकृति की उपासना के रूप में विकसित होता है।

इस प्रकार, अटल बिहारी वाजपेयी की कविताओं में राष्ट्रप्रेम और प्रकृति का संबंध केवल समानांतर नहीं है, बल्कि एक–दूसरे में विलीन हो चुका है। उनका यह समन्वय न केवल काव्य को भावनात्मक ऊँचाई देता है, बल्कि पाठकों के भीतर भी देश और धरती के प्रति आदर और उत्तरदायित्व की भावना जाग्रत करता है। यह प्रकृति के प्रति एक आध्यात्मिक सम्मान है, जो राष्ट्रभक्ति के साथ गहराई से जुड़ता है।

• **भा□ा की सरलता, विचारों की गहराई :** अटल बिहारी वाजपेयी की कविताओं की एक विशिष्ट विशेषता उनकी भाषा की सहजता और विचारों की गहराई है। उनकी रचनाओं में प्रयुक्त शब्दावली अत्यंत साधारण, जनसामान्य की समझ में आने वाली होती है, किंतु उनमें निहित अर्थ अत्यंत गंभीर, व्यापक और दार्शनिक होते हैं। यही कारण है कि उनकी कविताएँ पढ़ने में सरल लगती हैं, परंतु पाठक के मन में वे लंबे समय तक अनुभूति और विचार का संवाद बनाए रखती हैं।

वह किसी जटिल शब्दाडंबर या क्लिष्ट अलंकारों का प्रयोग नहीं करते, न ही उनकी भाषा अधिक

संस्कृतनिष्ठ है। वे बोलचाल की हिन्दी का प्रयोग करते हैं, किन्तु उसी में गहनतम जीवन–दर्शन और राष्ट्रचिंतन को बड़ी सहजता से व्यक्त कर देते हैं। कविता "हार नहीं मानूँगा" में प्रयुक्त पंक्तियाँ – "काल के कपाल पर लिखता–मिटाता हूँ", सिर्फ़ एक साधारण वाक्य जैसी प्रतीत होती हैं, परंतु इनमें काल के विराट स्वरूप को चुनौती देने की भावना निहित है, जो गहरी आत्मशक्ति और चेतना का द्योतक है।

इसी प्रकार "आओ फिर से दिया जलाएँ" जैसी कविताओं में प्रयोग हुए शब्द जैसे दीपक, अंधकार, संकल्प, परछाईयाँ, ये सब जनमानस की भाषा से जुड़े हुए हैं, किंतु इन प्रतीकों से वह संघर्ष, पुनर्जागरण और सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे विचारों को प्रस्तुत करते हैं।

अटल जी की कविता में भाषा न तो बोझिल है, न ही अलंकारों से लदी हुई; उसमें सादगी है, पर गहराई के साथ। यही विशेषता उनकी कविता को हर वर्ग, हर आयु और हर विचारधारा के पाठक के लिए सुलभ और प्रासंगिक बनाती है। उनकी कविता में जो कह दिया गया है, वह जितना दिखता है, उससे कहीं अधिक महसूस किया जाता है।

उनकी भाषा की यह विशेषता उन्हें जनकवि की श्रेणी में स्थापित करती है। अटल जी की कविताओं की यही भाषिक संवेदना उन्हें राजनीति से लेकर साहित्य तक एक लोकप्रिय, विचारशील और संवेदनशील व्यक्तित्व के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

- **प्रेरणा, संघ□ि और आशा का प्रकृति से जुड़ाव :** अटल बिहारी वाजपेयी की कविताओं में प्रकृति केवल सौंदर्य और शांति की प्रतीक नहीं है, बल्कि वह संघर्ष, संकल्प और सतत् प्रेरणा का सशक्त माध्यम भी है। उनकी कविताएँ प्रकृति को एक शक्ति–स्रोत के रूप में प्रस्तुत करती हैं, जहाँ सूरज का उगना, हवा का बहना, दीपक का जलना या झरने का बहाव, जीवन में आगे बढ़ने, अडिग रहने और निरंतर प्रयास करते रहने की प्रेरणा। अटल जी की दृष्टि में प्रकृति संघर्ष को नकारती नहीं, बल्कि उसे अपनाकर उसकी राह दिखाती है। उनकी अत्यंत प्रसिद्ध कविता "हार नहीं मानूँगा" इस भावना का सशक्त उदाहरण है। इसमें वह लिखते हैं –

"काल के कपाल पर लिखता–मिटाता हूँ, गीत नया गाता हूँ।"

यहाँ 'काल' एक विराट, अजेय शक्ति है, और 'कवि' उस पर गीत लिखने का साहस करता है। यह साहस, यह संघर्ष की चेतना प्रकृति से ही जन्मी है। यह भाव विशेषतः सूर्य, पर्वत, नदी जैसे दृढ़ और गतिशील प्राकृतिक तत्वों से प्रेरित है।

इसी प्रकार "आओ फिर से दिया जलाएँ" कविता में 'दीपक' अंधकार से संघर्ष करता प्रतीत होता है, पर वह निराश नहीं होता वह जलता है, राह दिखाता है। यह दीपक केवल एक वस्तु नहीं है, यह आशा, संकल्प और मानवीय चेतना का प्रकृति में छिपा प्रतीक है। अटल जी की कविताओं में अक्सर जब निराशा, विषाद या हताशा की छाया आती है, तब प्रकृति से प्रेरणा लेकर वही छाया उजाले में बदल जाती है। प्रकृति उनके लिए शिक्षक की तरह कार्य करती है, जो यह बताती है कि अंधकार स्थायी नहीं होता, हर रात के बाद एक नई सुबह होती है। उनकी कविताओं में झरनों की गति, वनों की निश्चलता, फूलों की कोमलता और पर्वतों की दृढ़ता ये सब जीवन के संघर्षों को झेलने की मनःस्थिति और मानसिक शक्ति का पर्याय बनते हैं। उनका प्रकृति चित्रण व्यक्ति को साहस, धैर्य और सकारात्मक सोच प्रदान करता है।

इस प्रकार, अटल बिहारी वाजपेयी की कविता में प्रकृति केवल प्रेरणा का साधन नहीं है, बल्कि संघर्ष

और आशा की आंतरिक ज्वाला को प्रज्वलित करने वाली ाक्ति है। उनके काव्य में प्रकृति से जुड़ाव व्यक्ति को न केवल बाहर की दुनिया से जोड़ता है, बल्कि स्वयं के भीतर के उजाले की ओर भी मार्गदर्शन करता है।

नि□क□ि :-

अटल बिहारी वाजपेयी की कविताएँ केवल काव्य की भावनात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि उनके जीवन–दर्शन, राष्ट्रीय चेतना और मानवीय संवेदनाओं की गूढ़ प्रस्तुति हैं। उनके काव्य में प्रकृति का चित्रण केवल सौंदर्योपासना तक सीमित नहीं है, अपितु वह मानव–मन के अंतर्द्वंद्व, संघर्ष, आशा, प्रेरणा और आत्मसंवाद का सशक्त माध्यम बनकर उभरता है। अटल जी की कविताओं में प्रकृति के विविध स्वरूप पतझड़, वसंत, सूर्य, दीपक, झरना, हिमालय प्रतीकात्मक और रूपकात्मक प्रयोगों के माध्यम से किसी गहरे जीवन–सत्य की ओर संकेत करते हैं। उनकी रचनाओं में प्रकृति मात्र एक स्थिर पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि जीवंत पात्र की तरह उपस्थित है, जो कहीं प्रेरणा देती है, कहीं सांत्वना, कहीं संकल्प, तो कहीं संघर्ष की शक्ति। वे प्रकृति के माध्यम से अपने व्यक्तिगत अनुभवों, आत्मिक ऊहापोहों और सामाजिक सरोकारों को बड़ी सहजता और गहराई से व्यक्त करते हैं। उनकी कविता में प्रकृति से जुड़ी राष्ट्रभक्ति भी स्पष्ट दिखाई देती है, जहाँ भारतभूमि का प्रत्येक कण ईश्वर और तीर्थ के समान पूज्य हो उठता है। अटल जी की भाषा सरल, सहज और जनसामान्य के लिए बोधगम्य है, परंतु उसके भीतर छिपे विचार अत्यंत गहरे और दार्शनिक हैं। उनकी कविता में सौंदर्य और संकल्प, संवेदना और चेतना, प्रकृति और संस्कृति का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। उन्होंने प्रकृति को केवल देखा नहीं, जिया है, उसे महसूस किया है, और उसी को शब्दों में ढालकर जन–जन तक जीवन का संदेश पहुँचाया है।

इस प्रकार, अटल बिहारी वाजपेयी की कविताओं में प्रकृति न केवल एक काव्यात्मक उपकरण है, बल्कि वह उनके विचार, दर्शन और आत्मा का प्रतिबिंब बनकर प्रस्तुत होती है। उनका प्रकृति चित्रण भारतीय काव्य–परंपरा में एक विशिष्ट स्थान रखता है, जहाँ संवेदना, प्रतीक, संघर्ष और राष्ट्रप्रेम सभी प्रकृति के माध्यम से एक सूत्र में बंध जाते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. अटल बिहारी वाजपेयी (2004) : *मेरी इक्यावन कविताएँ,* लोकभारती प्रकाशन, पृ. 1–135
2. अटल बिहारी वाजपेयी (1997) : *न दैन्यं न पलायनम्,* राजकमल प्रकाशन, पृ. 5–80
3. अटल बिहारी वाजपेयी (2005) : *आओ फिर से दिया जलाएँ,* प्रभात प्रकाशन, पृ. 12–65
4. अटल बिहारी वाजपेयी (2001) : *मैं सोचता हूँ,* साहित्य भवन, पृ. 3–88
5. रामसेवक त्रिपाठी (2012) : *हिंदी कविता में प्रकृति का स्वरूप,* हिंदी परिषद् प्रकाशन, पृ. 45–120
6. रामचंद्र शुक्ल (2010) : *हिंदी साहित्य का इतिहास,* नागरी प्रचारिणी सभा, पृ. 225–310
7. अशोक मिश्रा (2018) : *भारतीय काव्यधारा में राष्ट्रवाद,* अंशु प्रकाशन, पृ. 100–175
8. रमेश शर्मा (2020) : *अटल बिहारी वाजपेयी : जीवन और काव्य दृष्टि,* साहित्य प्रकाशन, पृ. 65–142
9. संजय झा (2022) : *अटल की कविता : राजनेता की संवेदनशीलता,* प्रभात पब्लिशर्स, पृ. 30–95
10. नागेन्द्र वर्मा (2011) : *कविता और जीवन–दर्शन,* भारतीय विद्या संस्थान, पृ. 150–220
11. हंस (साहित्यिक मासिक), (अगस्त 2018), *"अटल बिहारी वाजपेयीः कवि व्यक्तित्व"* (विशेषांक), हंस, पृ. 10–36।
12. इंडिया टुडे हिंदी (अगस्त 2018), *"एक कवि प्रधानमंत्री"*, इंडिया टुडे हिंदी, पृ. 22–29।

renukasture@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 133–143

मीरा काव्य में नारी चेतना के स्वर की गूंज

समणी मंजुलप्रज्ञा
गौतम ज्ञानशाला, जैन विश्व भारती, लाडनूं।

मीरा काव्य में भक्ति लोक :–

सोलहवीं शताब्दी के मध्यकालीन युग में मारवाड़ में जन्मी मीरा में बाल्यकाल से ही कृष्ण भक्ति में दीवानगी का बीज–भाव परिलक्षित होता है जो समय पाकर पल्लवित हुआ। मीरा का जीवन, लगता है एक कालजयी कविता है। मीरा की जीवन यात्रा जितनी जटिल है उसकी काव्य–यात्रा उतनी ही सरल है, क्योंकि जीवन के प्रमाण तो उलझे हुए हैं। मीरा के मन में बचपन से ही विशिष्ट प्रेरक शक्तियों और परिस्थितियों का प्रभाव ऐसा पड़ा कि वह श्रीकृष्ण के प्रेम की दीवानी हो गई। बाल्यावस्था में एक साधु द्वारा प्रदत्त मुरली मनोहर की मूर्ति ही उनका प्राणाधार रही। आरंभ से ही कृष्णभक्ति में लीन रहा करती थी। नन्ही मीरा ने किसी बारात को देखकर जब मां से अपने दुल्हे के बारे में पूछा तो माँ ने सहज रूप से गिरधर की मूर्ति की ओर इशारा कर दिया। मानो मीरा का व्याकुल मन इसी उत्तर की प्रतीक्षा में था। मीरा ने उस मूर्ति को ही सदा–सदा के लिए पति मान लिया और उसके जीवन में कृष्ण साकार हो उठे। मीरा ने कहा भी है :–

'माई म्हाने सुपणां मां परण्या दीनानाथ
मति करो म्हारी ब्याव सगाई, क्यूं बांधो जंजाल।।'[1]

यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि मीरा भगवान श्री कृष्ण की अप्रतिम एवं अनन्य भक्त थीं। कृष्ण को उन्होंने सम्पूर्णता से स्वीकारा था और साथ ही साथ कृष्ण के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित भी थीं। यद्यपि अपने काव्य में मीरा ने कृष्ण को अनेक नामों से संबोधित किया, किंतु उनकी सम्पूर्ण भावात्मक अस्मिता के केन्द्र से आराध्य का जो नाम और रूप सर्वाधिक अंतरंगता के साथ जुड़ा है वह, 'गिरिधर नागर' एवं 'गिरिधर गोपाल' का ही है। अपने पदों में वह बार–बार 'गिरिधर' का नाम प्रयोग कर कृष्ण के रूप के प्रति अपनी विशेष अनन्यता को प्रकट करती है। 'मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई', 'मैं गिरिधर के हाथ बिकानी', 'माई म्हाने सुपणां में परण्या गोपाल' जैसी पद पंक्तियां मीरा की जीवनदृष्टि और उनकी अटूट आस्था के ज्वलन्त प्रमाण हैं। कृष्ण के 'गोविन्द' नाम को भी मीरा ने बहुलता के साथ प्रयोग किया है।

कृष्ण के उस रूप को अपना आराध्य बनाया जो 'गिरिधर' के रूप में इन्द्र के प्रकोप से बचाने के लिए लोकरक्षक की महान भूमिका का निष्पादन करता है तो 'गोपाल' और 'गोविन्द' के रूप में समाज की अर्थव्यवस्था एवं संस्कृति की विरासत 'गोधन' का सेवक, पालक बनकर आमजन के बीच खड़ा रहता है।[2]

1. मीरा सुधासिन्धु 2/15–10, पृ. 287
2. मीरायन, जून–अगस्त, 2011, पृ. 8–9

मध्यकालीन भक्त कवियों में मीरा महत्त्वपूर्ण कवयित्री हैं। मीरा मध्यकालीन सामंती परिवेश की पीड़ित कवयित्री हैं। उनकी स्त्री जनित पीड़ा उनके संपूर्ण सृजन में दिखाई देती है परन्तु इस परतंत्रता और अपने प्रति किये जाने वाले अन्याय का प्रतिकार भी मीरा बड़े–बड़े शब्दों में करती है। वह भी इतनी ताकत से कि पुरुषवादी समाज उसे कई बार मारने की कोशिश करता है परन्तु कुछ दैवीय प्रताप ही है, जो मीरा को बार–बार बचा लेता है। मीरा कृष्ण को प्रेम करती है उनके प्रेम में परिवार समाज सभी बाधक बनते हैं और जब वह नहीं मानती तब उन्हें बिगड़ी हुई चरित्रहीन घोषित किया जाता है। मीरा का समाज वह समाज है जहां ईश्वरभक्ति भी नारी के लिए वर्जित है। मीरा की कविता में लोक लाज कुल की मर्यादा को तोड़ने या लांघने की बात बार–बार कही गई है, यह अकारण नहीं है। मीरा अपने इष्ट को समर्पित तो होती ही है, लेकिन इस समर्पित होने की प्रक्रिया में जो विघ्नबाधा आती है उसका संकेत भी वह दे देती है–

लोक लाज कुल करण जगत की दह बहाने जस पाणी।[1]

मीरा ने जो जीवनचर्या स्वीकार की वह नारी की पारम्परिक लोकमान्य भूमिका से भिन्न अवश्य थी परन्तु वह लोकहित की विरोधी नही थी। फिर भी लोक ने मीरा की इस भूमिका को सहज रूप से स्वीकार नहीं किया। लोक और मीरा की प्रारम्भिक अंतर क्रिया संघर्षमूलक थी। संघर्ष लोक की ओर से था, मीरा की ओर से नहीं। लोक ने मीरा का विरोध किया, मीरा ने लोक का विरोध नहीं किया।[2]

मीरा एवं उनका लोकसंघर्ष :–

मीरा ने अपने पदों में लोक का उल्लेख इतना अधिक किया है कि मीरा पर विचार विमर्श करते समय लोक पर विचार विमर्श करना भी अपरिहार्य हो जाता है। मीरा के पदों में लोक का उल्लेख संख्यात्मक और गुणात्मक दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। संख्यात्मक महत्त्व यह है कि लोक का उल्लेख अनेक बार हुआ है। इससे यह ज्ञात होता है कि लोक ने मीरा के साथ कितने लम्बे समय तक संघर्ष किया और कितनी उग्रता के साथ किया। गुणात्मक महत्त्व यह है कि इन पदों में मीरा की प्रतिक्रिया भी प्रकट हुई है जिससे मीरा की भावदशा, मानसिकता चेतना का विकास आदि का परिचय भी प्राप्त होता है।[3]

कुछ पंक्तियाँ–

"**लोक कहे मीरा भई बावरी, सास कहे कुल नासी रे,**
म्हारो मन तो मगण स्याम म्हां, लोक कहे भटकी।
साज सिंगार बांध पग घुंघरू, लोकलाज तज नाची,
कड़वा बोल लोक जग बोल्या, करसी म्हारी हांसी रे।।"[4]

मीरा के संबंध में विशेष बात यह है कि मीरा का संघर्ष दो स्तरों पर है–बाह्य और आन्तरिक संघर्ष। लोक के साथ जो संघर्ष है वह बाह्य संघर्ष है और स्वयं के साथ जो संघर्ष है वह आन्तरिक संघर्ष है। स्वयं के साथ संघर्ष स्वयं की भावदशा से, स्वयं के मनोविकारों से संघर्ष। मीरा सिद्ध नहीं है। वह सामान्य मानवी है।

1. मीरा की पदावली, पद 38
2. मीरायन, मार्च–मई, 2011, पृ. 48
3. वही, पृ. 48–49
4. मीरा की पदावली, पद 36 / 107

यश–अपयश, हानि–लाभ, जीवन–मरण आदि स्थितियों से वह प्रभावित होती है। लांछना का दंश बहुत मर्मभेदी होता है, मीरा भी लांछना से व्यथित होती है और स्वयं को अपमानित अनुभव करती है। राजकुल द्वारा प्रदत्त प्रताड़नाओं के कारण उसे कष्ट भी होता है और उसे क्रोध भी आता है, परन्तु धीरे–धीरे वह प्रतिक्रियात्मक भावदशा से मुक्त होती है और यश–अपयश, हानि–लाभ, भय, मोह आदि से ऊपर उठकर अपनी आस्था में सुदृढ़ होती है–

कोई निन्दो, कोई विंदो, म्है तो गोविन्द रा गुण गास्यां।
कोई कछु कहो रे, रंग लाग्यो, रंग लाग्यो भ्रम भाग्यो।।[1]

मीरा आचरण की इस कसौटी के प्रति जागरूक है और अपने आचरण के प्रति भी। मानवी आचरण के संदर्भ में मीरा की जो विवेक चेतना है उसकी व्यावहारिक व्याख्या मीरा के शब्दों में इस प्रकार है[6]–

''**चोरी न करस्यां, जीव न सतास्यां, कांई करसी म्हारो कोई।**''[2]

मध्ययुगीन समाज की पाषाणी प्राचीरें :-

भक्ति के क्षेत्र की तरह, समाज में भी नेतृत्व निर्मित या प्राप्त करने का उसका प्रयत्न न था। परिवर्तन अथवा आन्दोलन संगठन उसके अभीष्ट नहीं रहे। सहज रूप से वह भारतीय सन्नारी थी। वह भक्ति से सबल तो समाज में सहज थी। उतार, भटकाव उसके जीवन में इतने आये कि चरित्र में दुर्बल होती तो टूट कर अवश्य बिखर जाती लेकिन मीरा प्रारंभ से अंत तक अपने को अपनी मुट्ठी में किये रही। विवाह से वह ऊँचे घर आई थी, 'भारत शिरोमणी' संग्रामसिंह उसके ससुर थे, उनका पुत्र भोजराज उनका उत्तराधिकारी होने वाला था, जब तक उसकी स्थिति अनुकूल रही, मीरा उसके प्रति समर्पित रही, परन्तु प्रतिकूलता में भी साहस, ढाढस, सहनशीलता और सद्भाव ने उसका साथ नहीं छोड़ा। वह समय स्त्रियों के प्रतिकूल था–मीरां को वहां अत्याचार मिले जहां वह ब्याह कर गई थी। जो चित्तौड़ के राजकुल में ब्याह कर गई उसे ससुराल में बहुत–बहुत कष्ट मिले। ऐसे वातावरण में भी मीरां ने अपना संतुलन और सुज्ञान नहीं छोड़ा। उसने चितौड़ तब छोड़ा जब अपने चरित्र पर लांछन वह नहीं सह सकी। यह उसके पिता और पति दोनों कुल कलंकित हो रहे थे और मीरां ने दोनों कुलों की कीर्ति को अपना संरक्षण प्रदान कर रखा था।

यहां ध्यातव्य बिन्दु यह है कि मीरां के पारिवारिक प्रतिकूलताओं की प्रताड़नाएं इतनी पीड़ाकारक नहीं होती तो वह चित्तौड़ का द्वार लांघने की सोचती भी नहीं और भक्तिमति मीरा का इच्छा वास नहीं होता। यह सही है कि कृष्ण भक्ति मीरां में उसके बाल्यकाल से प्रारंभ हो गई थी, परंतु जिन्हें' 'मध्ययुग की पाषाणी प्राचीरें' कहा गया, उनसे मुक्ति उसने अपने बाद के अनुभवों के कारण ही प्राप्त की फिर भी मीरा को 'क्रान्तिकारी महिला' 'नारी महिला मुक्ति का प्रतीक' अथवा पर्दाप्रथा का खंडन करने वाली कहना उसके जीवन की स्वाभाविकता का शोषण है। वह अवश्य अबला कही जाने वाली नारी शक्तिसम्पन्न स्वरूपा है फिर भी मीरां ने जो कुछ किया अपनी आंतरिक अनुभूति में से, अपने अनुभव में से किया। उसके हृदय में क्रांति का प्रयोजन नहीं था, सिवाय भक्ति के उसका कोई यत्न नहीं था। नारी मुक्ति का प्रतीक वह बन गई, लेकिन स्वयं अपने बनाये नहीं, परिस्थितियों ने उसका विकास किया पर्दाप्रथा का खण्डन क्या होता है, यह प्रथा मीरां के समय में थी ही नहीं। वास्तविकता

1. वही, पद 25/103
2. मीरायन, मार्च–मई 2013, पृ. 53

यह है कि मीरा का पति भोजराज ही असाधारण मन–वचन–कर्म से था, जिससे उसकी पत्नी उसके प्रति समर्पित होने की जगह रणछोड़ में समाहित हो गई। चूंकि रणछोड़ सांसारिक संघर्ष का चरमोत्कर्ष है, मीरा भी संयम और सांसारिकता का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण, आदर्श और प्रेरणापुंज हो गई।[1]

अपने आराध्य को रिझाने के लिए पैरों में पंचतत्त्व का घुंघरू बांधकर जो प्रकृति अनन्तकाल से अनादि पुरुष को रिझाने के लिए नृत्य करती आ रही है। मीरा मानो उसी की साक्षात् प्रतिमूर्ति है। ऐसी महिमामयी मीरा का चित्रण महाकवि मैथिलीशरण गुप्त ने निम्न पंक्तियों में इस प्रकार किया :–

''लाख लोकभय बाधाओं से विचलित हुई न मीरा,
वार गई ब्रजरज पर मानिक-मोती-हीरा-धीरा,
हरिचरणामृत कर वर विष भी पचा गई गंभीरा।
नचा गई नटनागर को भी नटनागर को नाची तो बस मीरा।।''[2]

मीरा एवं उनका आध्यात्मिक चिन्तन :-

मीरा ने जिस दिन महलों का त्यागकर झोंपड़ी में रहना प्रारम्भ किया, वे महान ही नहीं सम्पूर्ण मानवता के आदर्श की प्रतिमूर्ति बन गई। आश्चर्य तो यह है कि मीरा ने न तो किसी सम्प्रदाय से अपना नाता जोड़ा, न किसी सम्प्रदाय में दीक्षित हुई, न उसने किसी मठ की स्थापना की न वह कोई धर्माचार्य बनी, न किसी राज्य या साम्राज्य की साम्राज्ञी रही, न अपना कोई पंथ या सम्प्रदाय चलाया, न किसी गुरु को बनाया न किसी को शिष्य।

वह तो अपने भक्ति–पथ की एकाकी पथिक बनी रही। न इतिहासकारों न मीरा को इतिहास की पात्र माना, शिष्ट

साहित्य के पंडितों ने भी मीरा पर कुछ नहीं लिखा, पीठाधीशों ने उसे ठुकराया, फिर भी विगत पांच शताब्दियों से मीरा न केवल लोकमानस में जीवित रही, वरन् सम्पूर्ण भक्ति का सिरमौर बनकर सम्पूर्ण विश्व में जन–जन की श्रद्धा एवं आदर का आदर्श बनी हुई है मीरा की यह सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक व्यापकता मीरा पर चिन्तन के आयाम खड़े करते हैं।[3]

इस प्रकार बचपन से ही मीरा का जीवन भक्ति की एक विशिष्ट दिशा की ओर अपनी पूरी संवेदना के साथ–साथ चल पड़ा था जो उनके जीवन–दर्शन का आधार बना। बारह वर्ष की अवस्था में ही मीरा का विवाह मेवाड़ में चित्तौड़ के राणा सांगा के पुत्र भोजराज के साथ हुआ, परन्तु मीरा का अनन्त संबंध श्रीकृष्ण से हो चुका था। राजसी वैभव, सामन्ती परिवार की मर्यादाएं और लोकाचार भी उन्हें कृष्ण भक्ति से विमुख नहीं कर सके। कृष्ण से लगी भक्ति की इस लौ के लिए उन्हें अपनी कुल की लोकलाज सब छोड़नी पड़ी।

जीवन की विषम घटनाओं ने मीरा को बेहद प्रभावित किया और आहत भी किया था। अनेक प्रकार की यातनाओं के बीच उन्हें कृष्ण का अनन्य प्रेम ही जीवन का सर्वोच्च रक्षक और संबल प्रतीत हुआ।

'जिण मारग म्हारा साहिब पधारे, उण मार्ग म्हें जास्या।'

---

1. मीरा की पदावली, पद 25/103
2. मीरायन, सितम्बर–नवम्बर, 2013, पृ. 17
3. मीरा, मैथिलीशरण का छन्द

इसीलिए वे उस भक्ति मार्ग पर अडिंग हो जाती है जहां से हरि निर्झर का आनन्द प्राप्त होता है।

मीरा के काव्य में आत्मदर्शन की प्रेरणा :–

मीरा ने अपने पदों के माध्यम से हर व्यक्ति को आत्म दर्शन की प्रेरणा दी है। मीरा के काव्य से मानव को अपने जीवन में प्रबल आध्यात्मिक शक्ति, सार्थक जागृति, और अभिनव चेतना प्राप्त होती है। मीरा न किसी पंथ की अनुगामिनी, बनी और न ही उसने कोई पंथ चलाया, फिर भी वह जीवन–मूल्यों के माध्यम से जन–जन की आस्था एवं विश्वास का केन्द्र बनी हुई है। मीरा ने लोक के साथ ऐसा एकाकार किया कि वह लोक कंठों की अमर निधि बन गई।[1]

मीरा के लिए ईश्वर वस्तुतः प्रेम का प्रतिरूप है। उन्होंने कृष्ण को चुना था। उनकी यह खूबी महत्त्वपूर्ण है कि वे यायावर थी। उनके पद जगह–जगह की मौखिक परंपराओं से मिले हैं। भक्तजन उनके पदों को गाते थे।

वह एक ऐसे भावविह्वल कवयित्री के रूप में लोकप्रिय थीं, जिनके साथ साधु स्वभाव के भ्रमणशील स्त्री–पुरुषों का एक मण्डल (गोल) हमेशा रहता था। इस तरह एक स्थान से दूसरे स्थान तक उन पदों और प्रेम की मधुरता का प्रसार हुआ होगा।

मीरा हिन्दी क्षेत्र की सबसे प्रभावशाली स्त्री भक्त हैं। उनके स्वतः स्फूर्त भावनाओं पर आधारित संगीतात्मक पदलोक हृदय में गूंजते रहे।[2]

मीरा के पद एक काव्य परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसमें नारी के उल्लास, स्वाधीन और सुखी जीवन बिताने की आकांक्षा व्यक्त हुई है। अनेक पदों से ज्ञात होता है कि मीरा का तीव्र विरोध हुआ था उन्होंने बड़ी दृढ़ता और वीरता से उस विरोध सामना किया। जिस साहस और वीरता से मीरा जैसी महिलाओं ने रूढ़िवादियों का सामना किया, उसे देखते हुए चारण परंपरा का वीर रस फीका जान पड़ता है। मीरा के गीत लोक संस्कृति के अंग बन गए। मीरा के विद्रोह को लोक ने आदर दिया था, इससे लोक चेतना में मौजूद विद्रोह के तत्त्व का बोध होता है।[3]

मीरा एवं उनके सामाजिक संदर्भ :–

प्रश्न है नारी जागरण की यह प्रेरणा मीरां को कहां से मिली? सम्भवतः इसके तीन कारण रहे होंगे– (1) भक्ति आन्दोलन (2) तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति (3) व्यक्तिगत प्रताड़नाओं को सहना। भक्ति के वल मात्र एक आध्यात्मिक आन्दोलन ही नहीं था, अपितु सामाजिक चेतना से युक्त आन्दोलन भी था।[3]

राजस्थान मेवाड़ के लिए मीरा आज एक गौरवशाली धरोहर है। चित्तौड़ के लिए मीरा अस्मिता की प्रतीक है। चित्तौड़गढ़ को 'मीरा का देश' कहकर सम्पूर्ण राष्ट्रभक्ति की इस पावन भगीरथी के साथ–साथ दुर्गराज चित्रकूट को जो सम्मान देता है, वह इस बात का प्रतीक है कि मीरा लोकनिधि है। प्रभु और जनमानस का जो सर्वोच्च पद मीरा को मिला, भगवान श्रीकृष्ण के विग्रह में समाकर जिस प्रकार मीरा परब्रह्म बनी, वह उसकी पवित्रता, अनन्य भक्ति और सर्वस्व समर्पण का ही प्रसाद है। नाना प्रकार के कष्टों का विष पीकर मीरा लोकों

1. मीरायन, मार्च–मई, 2011, पृ. 9
2. मीरायन, जुलाई, सितम्बर 2006, पृ. 6
3. भक्ति आन्दोलन और उत्तर–धार्मिक संकट, पृ. 364

अमर हो गई और नारी जाति का सिर गौरव से ऊँचा कर गई। मारवाड़ में जन्मी, मेवाड़ में परणी, गुजरात की आँखों का तारा बनी, मीरा ने अपनी प्रेमाभक्ति की कठोर तपस्या से यह सिद्ध कर दिया कि 'प्रेम न बाड़ी उपजै, प्रेम न हाट बिकाय।'

प्रेम की साक्षात प्रतिमूर्ति मीरा को समझने के लिए हमें अपने अंदर मीरा भाव को उत्पन्न करना होगा। वस्तुतः मीरा तो प्रेम एवं भक्ति की वह लोकपावनी गंगा है जो अपनी भक्ति–तरंगों में अवगाहित कर नास्तिक को भी आस्तिक बना उसकी मुक्ति के मार्ग खोल देती है। इसीलिए महादेवी वर्मा ने उन्हें 'अमृतवर्षिणी' महाकवि पन्त ने 'भक्ति तपोवन की शकुन्तला' महाकवि निराला ने 'संगीत की देवी' और महात्मा गांधी ने 'पवित्रता की मूर्ति कहा।'

कहते हैं गोपी मेड़ते में जन्म लेकर मीरा बनीं क्योंकि पूर्व जन्म में जिस घूंघट व लोक–लाज कुल मर्यादा के कारण प्रभु के दिव्य दर्शन व परमलाभ से वंचित रही। इसीलिये इस जन्म में घूंघट के प्रति अरुचि व लोक लाज कुल मर्यादा का विरोध आदि के भाव उसके पदों में दृष्टिगत होते हैं। पद के अन्त में 'गिरधर' की छाप लगाने का भी मुख्य उद्देश्य यही था कि उसके हृदय में वही गिरिधरधारी की छवि समाई हुई थी।[1]

भक्ति आन्दोलन एवं भक्तिमति मीरा :-

मध्यकालीन भक्तिकाव्य की लोकप्रियता सबसे प्रमुख कारण भक्ति का मानवीय लोकधर्मी और रूढ़ि–विरोधी पक्ष है। डॉ. सी.एलः प्रभात के अनुसार ''ये ही वे आधारभूत तत्त्व हैं, जिन्होंने मीरा के गीतों को जनमानस की गहराई में उतार दिया। मधुर संगीत और जनसामान्य की सीधी–सादी भाषा ने उन्हें लोकप्रिय बनाने में विशेष योग दिया, परन्तु उन्हें लोक से जोड़ने वाले तत्त्वों में उनकी आस्था की लोकोन्मुखता बहुत प्रसिद्ध है।

भक्त शिरोमणि मीरा की सहज सकारात्मक और रचनात्मक पदावली से जहां भक्ति आन्दोलन में एक नवीन क्रांति का सूत्रपात हुआ वहीं उसकी अमर वाणी ने जनमानस के हृदय में बसकर सर्वथा नूतन सम्बल प्रदान किया। आज उसकी स्वर लहरियों को जनमानस की अमूल्य सम्पदा के रूप में विश्वविख्यात होने का गौरव प्राप्त है। मीरा पांच शताब्दियों से सम्पूर्ण जनमानस को भक्तिसागर में नहलाकर उनका उपकार कर रही है।

महाराणा विक्रमाजीत ने उसे मारने के लिये अनेक प्रयास किये परन्तु सारे यत्न विफल रहे और विष का प्याला अमृत हो गया। इन अद्‌भूत चमत्कारों की चर्चा लोगों की जुबान पर होने लगी। जनमानस ने मीरा को देवी शक्ति के रूप में ग्रहण किया और यों इनकी आस्था निरन्तर बढ़ती रही।[2]

भक्ति–भारती की अप्रतिम–मधुमय धरोहर है। सत्य तो यह है कि सम्पूर्ण भक्ति काव्य में आराधना और उत्सर्ग, समर्पण तथा विसर्जन की अन्यतम मूर्ति कोई है तो वह है मरुस्थल की मन्दाकिनी–मीरा। उसके एकान्तिक प्रेमोन्माद में राजसी पत्र तिनके की तरह उड़ गया, कुल–मर्यादा ओस की तरह विलीन हो गई, लोक–लज्जा धूल की भांति उड गई।[3]

वे अपना भावात्मक तादात्म्य सिर्फ कृष्ण में स्थापित करती हैं। इसलिए उनकी भक्ति में किसी दूसरे देवता

1. वही
2. मीरायन, जून–अगस्त, 2007, पृ. 47
3. मीरा सुधा सिन्धु, पृ० 11

और दूसरी भक्ति की तरफ झुकाव नहीं है? उनकी भक्ति में अनन्यता की प्रधानता है। वे कहती हैं, मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई?– मैंने सारा जगत देख लिया है, कृष्ण के अलावा मेरा अपना दूसरा कोई नहीं है। मैंने सारे रिश्ते–नाते तोड़ लिए हैं। मैं सांसारिकता से परे हूं। अब हृदय में सिर्फ कृष्ण की बेलि है जिसे अश्रुओं से सींचकर पल्लवित करती हूँ[1]–

''अंसुअन जल सींचि सींचि, प्रेम बेलि बोई।

अब तो बेलि फैल गई, आनंद फल होई।।''[2]

मीराँबाई को अपनी ससुराल में अनेक बाधाओं का सामना तभी करना पड़ा, जब अपने शोकपूर्ण जीवन में स्वभावतः आ गयी विरक्ति से विवश होकर मेवाड़ नरेशों की कुलोचित मर्यादाओं तक को तिलांजलि देने पर तुल गयीं। तदनुसार इनकी प्रसिद्धि से प्रेरित होकर पहुँचने वाले प्रचलित वैष्णव– सम्प्रदायों के साधु–संतों का आना–जाना अनिवार्य सा हो गया और इनकी मानसिक प्रवृत्ति भी अधिकाधिक दृढ़ होती गयी। मीराँबाई के हृदय में भक्ति की भावना, वस्तुतः स्वाभाविक रूप से विकसित हुई थी और उन्हें इसके लिए किसी सम्प्रदाय विशेष का सहारा लेना उतना आवश्यक नहीं था।[3]

हमारे देश में भक्ति की परम्परा अत्यन्त प्राचीन रही है। भक्ति–विकास, भक्ति का उद्‌गम, भक्ति का साहित्य, शास्त्रीय विवेचन और भक्ति दर्शन हमारी भारतीय संस्कृति के स्तम्भ रहे हैं। भक्ति एक भाव है, भावना है, किसी संस्कार का उद्‌भव और कहा जाये तो यह एक भावात्मक प्रतिबद्धता है। इसमें विश्वास है, समर्पण है, तल्लीनता है, अनन्यता है। मीरा का काव्य इसका उदाहरण है।

गरिमामयी संगीत की अद्‌भूत अभिव्यक्ति :-

मीरा का सम्पूर्ण कर्तृत्व संगीत के साथ उत्पन्न हुआ है, कोरे शब्द में नहीं, मीरा के पदों को संगीत से अलग नहीं किया जा सकता है। संगीत व पद तो अविभक्त है। गायन, वादन एवं नृत्य संगीत के तीन अंग है। मनोगतभावों को प्रकट करने के लिए इन तीनों का सम्मिश्रण होने पर ही परिपूर्णता होती है। संगीत की परिपूर्णता, उसका सही स्वरूप तभी दृष्टिगोचर होता है, जब रचनाकार, गायक एवं नर्तक एक हो, वादन भी उसी के अनुरूप हो। मीरा ने स्वयं गाया एवं अंग विन्यास से सजाया, घुंघरू, एकतारा व करताल बजाई।[4]

मीरा ने अपने पदों में भावों के अनुरूप विभिन्न राग–रागिनियों का अनुपम समावेश किया है। विरह, मिलन, उपालम्भ, विनय, प्रेमभाव, चेतावनी, प्रेमदृढ़ता, रहस्यवाद, लीलावर्णन आदि भावों को प्रकट करने के लिए भिन्न–भिन्न रागों को प्रयुक्त किया है, जिनसे इन भावों की अभिव्यक्ति में अतिशय का रसमयता का समावेश हो गया है।[5]

---

1. मीरायन, दिसम्बर, फरवरी 2011, पृ. 19
2. कल्याण–भगवत् प्रेम, पृ. 409
3. मीरा का काव्य, पृ. 45
4. भक्ति आन्दोलन और उत्तर–धार्मिक संकट, पृ. 374
5. मीराँबाई की पदावली, पृ. 226

मीरा का काव्य : आदर्श प्रेम की अनुपम गाथा :-

मीरा ने अपने प्रियतम के व्यक्तित्व का विविध रूपों में वर्णन किया है। उनके पदों से सभी परिचित भी है–

बसो मेरे नैनन में नंदलाल।
मोहनि मूरति, सांवरी सूरति, नैना बने विशाल।
अधर सुधारस मुरली राजत, उर वैजयन्ती माल।
छुद्र ईटिका कटितट सोभित, नुपूर सबद रसाल।
मीरा के प्रभु संतन सुखदाई, भक्त वछल गोपाल।।[1]

मीरा एवं उनकी उपासना पद्धति :-

'मीराबाई की उपासना पद्धति' के विषय में लिखते समय उसके अंत में 'मीरा : एक अध्ययन' की लेखिका का कहना है कि मीराबाई 'शुद्ध सगुणोपासना की परंपरा में तो कदापि नहीं आ सकती, अपितु वह नाथ परम्परा के ही अधिक निकट प्रतीत होती है।[2]

मीरा की उपासना माधुर्य भाव की उपासना थी जिसका मूल स्रोत प्रेम ही है। मीरा का काव्य, काव्य साधना न होकर प्रेमसाधना का मार्ग था। उस प्रेम साधना का मार्ग जो भक्ति शब्द से विभूषित होता है।[3]

रहस्यमयी भावना :-

"पिया बिन रह्यो न जाय।
तन मन मेरो पिया पर वारूँ बार-बार बलिजाइ।
निसदिन जोऊँ बाट पिया की, कब रे मिलोगे आई।
मीरा के प्रभु आस तुम्हारी, लीज्यो कण्ठ लगाई।।"

कृष्ण प्रेम में डूबी मीरा के काव्य में हम रहस्यवादी भावनाओं की झलक देख सकते हैं, तथापि दार्शनिक दृष्टि से रहस्यवाद के सम्पूर्ण तत्त्व यहां नहीं पा सकते। मीरा की इस रहस्योन्मुखी भावना में सर्वत्र प्रेम भरा हुआ है। मीरा का यह प्रेम व्यापक न होकर तीव्रतम है।[4]

मीरा की रहस्यवादी भावना को समझने के लिए उसके काव्य में सम्पूर्ण तह तक गोता लगाना अनिवार्य है। मीरा पांच तत्त्वों से बने शरीर को साधन मात्र मानती है। वास्तविक लक्ष्य है प्रियतमा आत्मा का प्रियतम परमात्मा से एकाकार हो जाना है।[5]

मीरा की भक्ति और काव्य साधना :-

मीरा की वाणी सिद्ध करती है कि स्त्रियों में भक्ति और ज्ञान की गहराई में पैठने की क्षमता निहित है। प्रेम भक्ति और नारी चेतना की दृष्टि से मीरा के पद बेमिसाल और जीवन संघर्ष की प्रामाणिकता भी अनुगूंज है,

1. मीरायन, जुलाई–सितम्बर, 2006, पृ. 21
2. वही, 2006, पृ. 20
3. वही, 2006, पृ. 37
4. मीरा : एक अध्ययन पृ. 112
5. मीरायन, जून–अगस्त, 2009, पृ. 58

वर्तमान समय में नारी सशक्तिकरण के लिए मीरा की विचारधारा अति आवश्यक है, जहाँ सोलहवीं सदी में एक नारी परिवार, समाज से विद्रोह कर अपने और समाज के लिए एक नवीन पृष्ठभूमि का निर्माण करती है वहीं आज की आधुनिक नारी शिक्षित और सक्षम है फिर भी समाज से प्रताड़ित होने के बावजूद भी अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष नहीं करती है। मीरा बाई ने परम्परागत सामाजिक रूढ़ियों और अवधारणाओं के खिलाफ आवाज उठाने का जो साहस किया वह सराहनीय है। मीरा का विद्रोही स्वर स्त्री–विमर्श के नजरिये से देखने पर ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। मीरा काव्य में विद्यमान नारी सशक्तिकरण का सर्जनात्मक चरित्र किसी भी समाज में होने वाली नारी विमर्श हेतु प्रासंगिक है। मीरा का जीवन ही नारी अस्मिता और मूल्यों की लड़ाई है।[1]

मीरा का सती न होने का निर्णय लेना, यह उस जमाने के राजस्थान में सबसे बड़ा विद्रोह था। देखा जा सकता है कि इस प्रदेश में हाल तक सती होना एक गौरव का चिह्न था। मीरा कहती है– ''**सती न होस्या गिरधर गास्या।**'' उनके विधवा होने पर सती न होना राणा की तरफ उपहार न था, बल्कि जीने का उनका अर्जित अधिकार था। हो सकता है कि यह अधिकार उन्होंने भक्त लोगों के समर्थन के बल पर हासिल किया हो।

मीरा तर्क देती है कि उनके कंत कृष्ण है जो अविनाशी है, फिर वे सती क्यों हैं। सती प्रथा के विरोध का आधार तर्क की जगह भले भक्ति हो, पर वह विरोध असाधारण है। इसे ससुराल वाले आसानी से नहीं मान गए होंगे। कहा जा सकता है कि मीरा द्वारा सती प्रथा का विरोध परम्परागत धार्मिक व्यवस्था ही नहीं, सामंती राज व्यवस्था की भी बुनियाद हिला देने वाला कदम था।[2]

मीरा और आत्मबल :–

मीरा के मन में भक्ति के कारण ही लड़ाई–झगड़े का विचार कभी नहीं आया, द्वेष नहीं जन्मा। मीरा की भक्ति का संबंध अहिंसा से है। उन्होंने लांछनाओं को प्रेम से स्वीकार किया। 'राणाजी म्हाणे या बदनामी लागे मीठी' उनका कहना है, कोई निंदा करे या प्रशंसा, वे अपनी अनोखी राह से चलेंगी। वे साधु–संतों और भक्तों से मिलती थीं, उनके साथ गाती और भावविभोर होकर नाचती थीं इसलिए एक पद में कहती हैं कि अपने महल को ही परदे में रख लो। मैं तो बावरी हूं, परदे में नहीं रहूंगी, अपने घर का परदा करले, मैं अबला बौरानी।' जिस समाज में स्त्रियां सैंकड़ों साल तक घुंघट परदे के बाहर नहीं आ सकीं, उस समय मीरा ने पर्दाप्रथा का विरोध किया, मीरा की भक्ति में यह एक अनोखा तत्त्व है। मीरा का अपने को अबला कहना विनय कि साथ स्त्री की आम दशा की ओर संकेत है, अन्यथा भक्ति ने उनमें काफी आत्मविश्वास और आत्मबल भर दिया था।[3]

मीरा आधुनिक स्त्री के लिए आइना है–अलंकरण, शोभा, भोग वगैरह के नए बंधनों में बंधी, स्वतंत्रता का दंभ भरती आज की फैशन परस्त स्त्री क्या देख पा रही है कि उसके आसपास सोने के पिंजरे के लिए बाजार घूम रहा है और वह भी उन्हीं पिंजरों में से कोई पिंजरा चुनने को न सिर्फ बाध्य है बल्कि स्वेच्छा से परख रही है कि कौन सा पिंजरा ज्यादा जड़ाऊ है, ज्यादा कीमती हैं। मीरा को देखिए स्वाधीनता के मूल्य के लिए वह बिल्कुल आज की लड़ाई लड़ रही है।[4]

---

1. मीरा : व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृ. 9
2. वही, पृ. 8
3. भारतीय भाषा साहित्य, पृ. 12
4. भक्ति आन्दोलन और उत्तर धार्मिक संकट, पृ. 368–369

वाकई बात महत्त्वपूर्ण और विचारणीय है कि मीरा ने जिस स्वतंत्रता, स्त्री स्वाधीनता का संघर्ष किया था आज कथित 'आधुनिकता' ने औरत के संघर्ष को खत्म करके स्वाधीनता का स्वतंत्रता का जामा पहनाकर उसे 'सहज सुलभ' बना लिया है। मीरा, हमारे अतीत की सर्वाधिक आधुनिक नारी रही है। मीरा पर जितना विचार किया जाये उतनी ही वह गहरी भी है और व्यापक भी है। क्या वह किसी नारी के आदिम विलाप की सांस्कृतिक यात्रा नहीं थी? शब्दों का बीहड़ अर्थों की पोटली, भावों का कारवाँ, स्वरों का संसार लिए वह 'बंजारन' कहां जा रही थी? रेत पर, दिल पर, यादों पर, शब्दों पर अपने हाथों, पावों, आँसुओं, श्वास–निःश्वास से लिखते, गाते हुए कोई महाकाव्य रचते हुए वो सभ्यता की महाधारा में न जाने कहां जा रही थी–उसका जाना, ठीक हमारे पास आना सिद्ध होता था।

मीरा के समक्ष सुखपूर्वक जीने के अनेक विकल्प थे। मीरा भी महलों में विलासपूर्ण भोगों को भोगकर जीवन को सुखी बना सकती थी अथवा परिवार में प्रचलित तत्कालीन मर्यादाओं का पालन कर सास और ननद को प्रसन्न कर सकती थी या जौहर की ज्वाला में जलकर पुण्य का भागी बनकर अपने परलोक को संवार सकती थी। प्रश्न है मीरा ने इस कठिन मार्ग को ही क्यों चुना? क्यों लोक–लाज को छोड़कर सास और ननद की कोप भाजन बनी? क्यों उसने पैरों से घुंघरू बांधकर सबके सामने खुले में, डंके की चोट पर अपने साँवरिया को रिझाने का प्रयास किया और राणा के क्रोध का शिकार होकर विष का प्याला पीने के लिए विवश हुई? क्यों नारी–मन ने कांटों भरी सेज पर सोना स्वीकारा। क्यों पिटारी में बंद सांप से खेलने के लिए राजी हुई? ये ज्वलन्त प्रश्न विवश कर जाते हैं गहराई से सोचने के लिए। वास्तव में सार्थक जीवन जीने की तलाश में कष्टों को झेलना अनिवार्य हो जाता है। तलवार की धार पर चले बिना जीवन को सार्थक बनाना संभव नहीं है। इसलिए मीरा ने निर्भय होकर जीना सीखा और सम्पूर्ण भयों से मुक्त होकर नारी समाज में नवीन चेतना के शंखनाद को फूंकते हुए वह नारी समाज में शीर्ष पद पर अधिष्ठित हुई।[1]

बाह्य आडम्बरों एवं धार्मिक पाखण्डों की विरोधी :–

मीरा धार्मिक और बाह्याडम्बर की विरोधी थीं। इसलिए कहती हैं कि उन्हें तीरथ, व्रत, ज्ञान बघारने वालों के पास या करवत कासी नहीं जाना है। मेरा विस्तार धरती और आकाश तक है, वहाँ तक मैं उठकर चलती जाऊंगी।

''जताई दीसा धरण गगण मां तेताई उड जासी।
तीरथ बरतां ग्याण कथन्ता, कहा लया करवत कासी।।''[2]

धर्म हर युग में धार्मिक पाखण्ड के रूप में बदल दिया जाता है, मीरा के युग में भी यही हुआ। उन्होंने धर्म में फैले पाखण्ड का विरोध किया। उन्हें जब परिवार की मर्यादा दिखाई जाती है, वे कृष्ण के पक्ष में कहती है–'राणाजी, मैं जेठ–बहू का नाता नहीं मानती। कृष्ण ही मेरे वास्तविक स्वामी है और मैं सिर्फ उन्हीं की सेविका हूं। गिरधर कृष्ण ही मेरे पति हैं, वे ही मेरे माता–पिता और भाई हैं।[3]

---

1. भक्ति आन्दोलन और उत्तर–धार्मिक संकट, पृ. 380
2. नया ज्ञानोदय पृ. 55
3. मीरायन, जून–अगस्त, 2007, पृ. 44

''जेठ बहू को नाता न राणाजी, हूँ सेवक के स्वामी।
गिरधर कंत गिरधर धनी म्हारे, मात पिता बोई भाई।।''[1]

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने मीरा की भक्ति, प्रेम–दर्शन और नारी–चेतना को भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन के सन्दर्भ में उपयोगी घोषित किया और उसे एक महान सत्याग्रही के रूप में स्थापित किया। वे आधुनिक भारत को 'मीरामय' बनाना चाहते थे और मीरा की आत्मा को देश की युवापीढ़ी के हृदय में उतार देना चाहते थे।

श्रीमती महादेवी वर्मा के शब्दों में मीरा भक्ति आन्दोलन की वह प्रेरक शक्ति है, जिसने ब्राह्मण और शूद्र का भेदभाव ही मिटा डाला। उनके अनुसार मीरा सभी जातियों की है, सभी धर्मों की है, सर्वकालीन, सर्वदेशीय है। प्रसिद्ध साहित्यकार और समीक्षक श्री शिवाधर पाण्डेय के अनुसार मीरा जयपत्र है, विजयनाद है, जिसके पद सूर के पदों से अधिक दिव्य और अन्तर्यामी हैं।

विशुद्ध भक्ति–भावना ही मीरा का परम आदर्श था, जिसके कारण मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन की वह एक मात्र ऐसी प्रभावशाली महिला भक्त कवयित्री है, जो भावी पीढ़ियों को विरासत में भक्ति का समग्र दर्शन देती है। इसीलिए तो हम आज भी उसे मरुभूमि की मन्दाकिनी, भक्ति की भागीरथी, महिला कवियों की मुकुटमणी और कृष्ण काव्यरूपी नंदनवन की कल्पलता जैसे अगाध श्रद्धायुक्त–विशेषणों से सम्बोधित करते हैं।[2]

आज के युग में भी नारी समाज के मोक्ष की जीती जागती तस्वीर है। इस दृष्टि से मीरा का सम्पूर्ण जीवन प्रेरणा पुंज है, एक प्रकाश स्तम्भ है।[3]

भक्ति भावना से ओत–प्रोत मीरा के पद लोक–कंठ में आज भी समाये हुए हैं। उनके पद राजस्थान की सीमा लाँघकर गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, उत्तरप्रदेश, पूर्वांचल में बंगाल–बिहार तक प्रचलित है और आज भी सुनने को मिल जाते है। स्थान भेद से मीरा के पदों की भाषा में भी कुछ बदलाव गायकों द्वारा हुआ। साधु–संतों–भक्तों आदि ने मीरा के पदों को जनमानस तक पहुंचाने का स्तुत्यजन्य कार्य किया। यही कारण है कि आज भी लोक–मानस में मीरा के पद रचे बसे हैं।[4]

भारत की महातेजस्विनी भक्तनारी, महान त्यागी, बलिदान एवं सत्याग्रहिणी, सतीत्व की प्रतीक, सन्त और भक्त मानते हुए मीरा में भारतमाता का रूप परिलक्षित होने की अभिव्यक्ति की है। पूज्य बापू तो मीरा से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने अपने जीवनकाल में लगभग 50 बार अपने भाषणों, पत्रों, लेखों आदि में देश की स्वतंत्रता एवं विकास के संदर्भ में मीराबाई का उल्लेख किया है। गांधीजी मीरा की आत्मा और दिव्य जीवन मूल्यों को देश की युवा–पीढ़ी एवं नारियों के हृदय में उतार देना चाहते थे।[5] इस प्रकार मीरा का जीवन, मीरा का मूल्य बोध और मीरा का काव्य–आज भी मूल्यवान है, पूर्णरूपेण प्रासंगिक है।

---

1. भक्ति आन्दोलन और उत्तर–धार्मिक संकट पृ. 369
2. मीरायन, मार्च–मई 2011, पृ. 8
3. वही, 2009, पृ. 56
4. मीरायन, जून–अगस्त, 2013, पृ. 18
5. मीरायन, जुलाई–सितम्बर, 2006, पृ. 32–33

amitajainjuly1@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 144–149

'दिल्ली ऊँचा सुनती है' नाटक में व्यक्त सामाजिक सरोकार

डॉ. प्रकाश मधुकर अठावले
हिंदी विभाग प्रमुख,
कर्मवीर भाऊराव पाटील कॉलेज ऊरून इस्लामपूर, तहसील वाळवा, जिला–सांगली, (महाराष्ट्र) पिन–415409

सारांश :–

'दिल्ली ऊँचा सुनती है' नाटक में लेखिका ने बिगड़ी हुई शासन व्यवस्था व सरकारी व्यवस्था में फैली भ्रष्टता, अव्यवस्था या अराजकता पर तीखा व्यंग किया है. आजादी के बाद पनपे अवसरवाद, भ्रष्टाचार, चारित्रिक पतन, घूसखोरी, कालाबाजारी, बेरोजगारी, भ्रष्ट शासन तंत्र, नौकरशाही, लालफीताशाही, डॉक्टरों की मनमानी, पाश्चात्त्य संस्कृति का अंधानुकरण, आर्थिक दबाव जैसी समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया गया है. प्रस्तुत नाटक का नायक सेवानिवृत्त क्लर्क अपनी पेन्शन के इंतजार में सरकारी तंत्र की कुव्यवस्था से जो मानसिक, आर्थिक एवं शारीरिक परेशानियाँ उठाता है इसका अत्यंत मार्मिक चित्रण नाटक में किया है. 'दिल्ली ऊँचा सुनती है' नाटक का व्यंग यह है कि दिल्ली ही ऊँचा सुनने लगी तो आम आदमी अपनी भोगी हुई पीड़ा को कहाँ जाकर सुनाएगा.

बीज शब्द :– लापरवाही, भ्रष्ट प्रशासन व्यवस्था, पेंशन, सामाजिक सरोकार।

प्रस्तावना :–

साहित्य का साधन और साध्य समाज ही है. हर युग में साहित्य समाज के हितचिंतन और चिंताओं को समझने का प्रतिबिंबन रहा है. समाज की प्रगति भी साहित्याश्रित है. सामाजिक मूल्यों की सुरक्षा, समाज सुधार, मानव कल्याण, शोषणमुक्त समाज का गठन समाज की प्रगति के अनिवार्य तत्व हैं. युगचेतना संपन्न साहित्यकार समाजद्रष्टा और भोक्ता होने के कारण समाज के विभिन्न पहलुओं को परखकर, समाज की हर धड़कन को संजोकर उसे अपनी कल्पना के सहारे समाज के उन्नयन के लिए प्रदान करता है. जिसके जरिए जीवन और समाज को एक नई दिशा और गति मिलती है.

विविध साहित्यिक विधाओं में नाटक का विशेष महत्व है. नाटक और समाज का संबंध अत्यंत निकट और गहरा रहा है. नाटक को समाज की प्राकृतिक प्रतिकृति माना जाता है. समाज के विविध स्तरीय परिवेश, बदलते सामाजिक यथार्थ और जीवन मूल्यों को उजागर कर जनमानस को आंदोलित करना, समाज को सोचने के लिए प्रेरित करना व उसे उचित दिशा–दृष्टि देना ही नाट्य साहित्य का सामाजिक सरोकार है.

हिंदी के लगभग सौ वर्ष के नाट्य साहित्य के इतिहास में (1850–1950) श्रीमती लाली देवी का एक मात्र नाम नाट्य लेखिका के रूप में उपलब्ध है. उसके बाद अनुरूपा देवी, कुटुम प्यारी देवी सक्सेना, ताराप्रसाद वर्मा,

शिवकुमारी देवी, शारदादेवी मिश्र आदि के नाम आते हैं. स्वतंत्रता के बाद हिंदी नाट्य साहित्य को समृद्ध करने वाली महिला नाटककारों में कंचनलता, सब्बरवाल, रामकुमारी चौहान, डॉ. मिथलेशकुमारी मिश्र, विमला रैना, मन्नू भण्डारी, कंथा जैन, मृदुला गर्ग, प्रतिभा अग्रवाल, शीला भाटिया, कुसुम कुमार, शांती मेहरोत्रा, मृणाल पांडे, त्रिपुरारी शर्मा, आशा वर्मा, डॉ. सरोज बिसारिया, आयेशा अहम्मद, डॉ. मधु धवन, उषा गांगुली, मीराकांत, विभा रानी, नादिरा जहीर बब्बर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं. उनके नाटकों में स्त्री और उससे जुड़ी अनेक समस्याएँ उजागर हुई हैं साथ ही बदलते पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक व सांस्कृतिक मूल्य भी अभिव्यक्ति पाते हैं. यही उनका युगबोध और सामाजिक दायित्व है. हिंदी महिला नाटककारों में डॉ.कुसुम कुमार का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है.

कुसुम कुमार बहुमुखी प्रतिभा की स्वामिनी है. उन्होंने दर्जनों मौलिक व सशक्त रचनाओं से हिंदी साहित्य भांडार को समृद्ध कर दिया है. कुसुम कुमार का जन्म एक क्षत्रिय परिवार में सनातनी वातावरण में 5 ऑगस्ट, 1939 को दिल्ली में हुआ. उन्होने 'हिंदी नाट्य चिंतन' नामक अपने शोध प्रबंध को ही पुस्तक रूप में प्रकाशित कर साहित्य सृजन का श्रीगणेश किया. उनके साहित्य सृजन का यह सिलसिला आज तक चल रहा है. वे एक सक्रिय नाटककार होने के साथ साथ उपन्यास, कविता, एकांकी, नुक्कड़ नाटक अनुवाद आदि के क्षेत्र में भी वे सक्रिय रही है. कुसुम कुमार ने आठ मौलिक नाटकों का लेखन किया हैं. जिसमें 'ओम क्रांति–क्रांति' (1979), 'सुनो सेफाली' (1979), 'संस्कार को नमस्कार' (1983), 'रावण लीला' (1983), 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' (1986), 'लश्कर चौक' (1992), और 'प्रश्न काल', 'दिल्ली ऊँचा सुनती है' (1982), और 'चूहा' उनका लघु नाटक है. उन्होंने वसंत कानेटकर, जयवंत दलवी, विजय तेंदुलकर जैसे प्रसिद्ध मराठी नाटककारों के नाटकों का हिंदी में अनुवाद किया है. कुसुम कुमार की रचनाओं का अनेक दक्षिण भारतीय भाषाओं के साथ पंजाबी, मराठी, उड़िया, काश्मीरी और अंग्रेजी में अनुवाद भी हुआ हैं.

कुसुम कुमार ने "दिल्ली ऊँचा सुनती है के माध्यम से समूचे देश में व्याप्त नौकरशाही, लालफीताशाही और भ्रष्टाचार को अत्याधिक सबल ढंग से उजागर किया है." (दिल्ली ऊँचा सुनती है– मल पृष्ठ) लेखिका ने माधोसिंह के माध्यम से आज की कार्यालयीन व्यवस्था के शिकार बने आम आदमी की व्यथा का चित्रण करते हुए सामान्य आदमी का जीवन संघर्ष प्रस्तुत किया है. लेखिका ने प्रस्तुत नाटक में चित्रित समस्याओं में मध्यम से सामाजिक सरोकार पर प्रकाश डाला है जैसे–

भ्रष्ट नौकरशाही की समस्या :-

'दिल्ली ऊँचा सुनती है' नाटक में कुसुम कुमार ने सरकारी कार्यालय में भ्रष्ट नौकरशाही से त्रस्त आम आदमी की व्यस्था का चित्रण किया है. नाटक का प्रमुख पात्र माधो सिंह वित्त मंत्रालय से 36 साल की सेवा करके सेवानिवृत्त हुए हैं. पर उन्हें सेवानिवृत्ति के छ महीने बाद मिलने वाली पेन्शन अचानक बंद हो जाती है. पेन्शन के लिए माधोसिंह को हर जगह भटकना पड़ता है. पेन्शन कार्यालय में जाने के बाद उन्हें कर्मचारी से पता चलता है कि "माधोसिंह नाम के आदमी की तो हमारे रेकॉर्ड डेथ हो चुकी है..." (दिल्ली ऊँचा सुनती है– पृष्ठ– 43) इसका मतलब सरकारी कार्यलय के दफ्तर अनुसार छः महिने पहले ही उनकी मृत्यु हो चुकी है. माधोसिंह अब खुद को जीवित होने का प्रमाण पत्र जुटाने में लग जाते हैं. इन सारे प्रयासो में उन्हें कई मुश्किलों का सामना करना पड़ता है. खुद को जीवित घोषित करने के लिए माधोसिंह को सरकारी कार्यालय, अस्पताल, डॉक्टर, मंत्री

आदि के पास बार–बार चक्कर लगाने पड़ते है. फिर भी उन्हें स्वयं का जीवित होने का प्रमाणपत्र नहीं मिलता. पेन्शन के इस जद्दोजहद का परिणाम माधोसिंह पर हो जाता है और वे मानसिक तणाव में दम तोड़ते है. माधोसिंह के मृत्यु पश्चात् डाकिया उनकी पेन्शन मंजुरी का पत्र लाता है. इस प्रकार कुसुम कुमार ने सरकारी कार्यालय से लेकर मंत्रियों तक भ्रष्टाचार पर टिकी हुई व्यवस्था का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है.

आर्थिक समस्या :-

भारत स्वतंत्र होकर 75 साल गुजर गये है फिर भी आम आदमी दिन–ब–दिन आर्थिक समस्यां से ग्रस्त बनता जा रहा है. 'दिल्ली ऊँचा सुनती है' नाटक का माधोसिंह भारत सरकार के वित्त मंत्रालय से 36 साल की प्रमाणिक सेवा कर निवृत्त हुए है. नौकरी करते वक्त अर्थाभाव के कारण दप्तर हररोज साइकिल से आते–जाते थे इसकी जानकारी देते हुए लिखते है. "छत्तीस साल अर्थ–मंत्रालय की क्लर्की की और छत्तीस साल ही घर से दप्तर, दप्तर से घर, रोज बीस मिल की दूरी साइकिल की तो ऐसी–तैसी हुई!" (पृष्ठ–18) उन्होंने अपनी नोकरी बड़ी प्रामाणिकता से की है. वेतन अतिरिक्त ऊपरी कमाई के बारे में कभी सोचा भी नहीं. माधोसिंह की पत्नी कमला निवृत्ति के बाद भी दिल्ली में ही रहना चाहती है मगर मधोसिहं महानगर में पेन्शन के पैसे पर गुजारा नहीं होगा ऐसा सोचकर अपने पैतृक गाँव आकर शेष जिंदगी बिताने का निर्णय लेते हैं. माधोसिंह गाँव में अपने एक परिचित मगनलाल नामक व्यक्ति का घर किराए पर लेते हैं.

माधोसिंह की सेवा निवृत्ति के छः महीने बाद पेन्शन की अदायगी बंद हो जाती है. इससे उनकी आर्थिक स्थिति अधिक गंभीर बनने लगती है. घर में उनकी पत्नी, बेटी और वे कुल तीन सदस्य हैं. फिर भी उनका खर्च चलाना मुश्किल हो जाता है. माधोसिंह की बेटी नीति आगरा जाने की इच्छा व्यक्त करती है लेकिन पैसों आर्थाभाव के कारण पिताजी उसकी इच्छा पूरी नहीं कर पाते. उनके घर का मालिक मगनलाल माधोसिंह की हालात देखकर उन्हें कही बार पैसे की मदत करता है, फिर भी दिन–ब–दिन उनकी आर्थिक स्थिति अधिक गंभीर बनने लगती है. कभी–कभी घर में चूल्हा जलाना भी मुश्किल हो जाता है. इतना ही नहीं नीति का इलाज सही समय पर न होने से नीति जहर खाकर अपनी जीवन यात्रा समाप्त कर देती है. इस प्रकार आर्थिक समस्या से पीड़ित माधोसिंह का चित्रण किया गया है.

राजनीतिक भ्रष्टाचार :-

भ्रष्ट व्यवस्था के कारण देश का आम आदमी किस प्रकार व्यथित होता है. इसका चित्रण प्रस्तुत नाटक में किया है. माधोसिंह की पेंशन छः महीने से बंद हो जाने पर पूछताछ करने के लिए दफ्तर जाने पर वहां के कर्मचारी की मानसिकता का चित्रण किया है. मिस्टर ए कहता है– "यहाँ साला कोई आकर कुछ पेश करें तब ना!... रिश्वत मिलेगी और यहाँ? हुंह! भूखे–नंगों का दप्तर है यह... सब कानी कौड़ी के मोहताज साले... खुद पेंशन पर गुजरा करने वाले! उनसे रिश्वत मिलेगी? भूल जा. डी.आर. भूल जा! ... यहाँ तो जहान भर के सठियाए लोग. .. पट्ठे बाप का दप्तर समझकर चले आएंगे!" (पृष्ठ– 33)

माधोसिंह पेन्शन के कारण बहुत चिंतित है.यह देखकर उनका मित्र जो उनका मकान मालिक भी है उन्हें अपने परिचित गृहमंत्री के पास ले जाता है पर वहां गृहमंत्री भी काम करने में असफलता दिखाते हुए कहते है– "तुम लोग बहुत देर से आए हो मेरे पास! महीने भर पहले आए होते तो दो दिन में तुम्हारा काम हो सकता था. एक जमाना था, पर्लियामेंट में हमारी पार्टी को मैजोरिटी थी... स्याह करें, सफेद करें, सब चलता था! अब वह

बात नहीं रही... अर्थमंत्री दूसरी पार्टी का आदमी है... मिजाज का बेहद अक्खड़... तुम्हारा केस फैसले के लिए अंत में उसी के पास जाएगा या फिर अर्थ सचिव के पास जा सकता है... मैंने तुम्हारे साथ कुछ रियायत करने को कहा तो वह जानबूझकर कुछ उलटा–सीधा फैसला लेंगे..." (दिल्ली ऊँचा सुनती है– पृष्ठ–85) यहाँ मंत्री महोदय स्पष्ट कहते मेरी पार्टी पार्लिमेंट में नहीं है, इसलिए मैं आपका काम नहीं कर सकता. चाहे तो मैं पार्लिमेंट के मंत्री के पास एक चिठ्ठी दे सकता हूँ. माधोसिंह जब कहते है की मेरा केस एकदम जैनुइन है! सीधा साफ है सर! तब मंत्री महोदय कहते है – "हम यह काम जरुर कर देते! लेकिन तब जब कि तुम्हारा केस फ्राड होता... फ्रोड केस के लिए फ्रोड साधन अपना लिए जाते हैं...आपका केस जैनुइन है, इसलिए ऊपर से नीचे तक हर तथ्य रेकॉर्डेड है... अब कुछ नहीं हो सकता ... सच्चाई को अपनी रफ्तार से चलने दीजिए– कुछ हो गया आपका तो ठीक, नहीं तो..." (पृष्ठ– 85) इसका मतलब माधोसिंह के काम में सच्चाई है, इसलिए मंत्री महोदय कुछ नहीं कर सकते. अगर केस फ्रॅंड होता तो जरूर कुछ ना कुछ कर देते, पर आपके केस में सब सत्य लिखा है. सत्य की अपनी रफ्तार होती है उसी रफ्तार से काम होगा. इतना ही नहीं, माधोसिंह के चिठ्ठी के बदले वहां मगन से अपनी मालिश करवाना चाहता है. मगन को मंत्री की यह सब बातें सुनकर बहुत गुस्सा आता है पर वह मंत्री होने के कारण कुछ नहीं बोल सकता.

आज देश की भ्रष्ट व्यवस्था में असत्य को सत्य करार देना बड़ा आसान हुआ है, पर सत्य को सत्य बनाना बड़ा ही कठिन हो गया है. माधोसिंह जैसे बहुत सारे आम आदमी की यही विडंबना है. वह राज्य व्यवस्था से पीड़ित होकर भी कुछ नहीं कर सकता.

सरकारी अस्पताल में भ्रष्ट वैद्यकीय सेवा :-

प्रशासन के सारे क्षेत्र में भ्रष्टाचार का बोलबाला है. " स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सत्तान्धरियो की स्वार्थपरता, समाज में धन के बढ़ते प्रभाव, सामाजिक–नैतिक मूल्य विघटन जैसे कारणों ने पप्रशासनिक भ्रष्ट्राचार को और भी बढ़ावा दिया. आज स्थिति यह हो गई है कि प्रशासन के पायदान पर स्थित क्लर्क से लेकर शिखर पर विराजमान सचिव,मुख्य सचिव तक सभी भ्रष्ट्राचार के आकंठ डूबे दिखाई पड़ते हैं. इस त्रासद स्थिति ने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक मूल्यों को बुरी तरह झकझोरा है. लेखिका ने प्रस्तुत नाटक में प्रशासन के विभिन्न अंगों में व्याप्त रिश्वतखोरी, कामचोरी का यथार्थ वर्णन किया है.

माधोसिंह सेवानिवृत्त होने के बाद पेन्शन मिलना बंद हो जाती है. पेन्शन के ऑफिस में ऑफिस के रेकॉर्ड में माधोसिंह को मृत घोषित किया है. यदि पेन्शन जारी होनी है, तो उन्हें अपने जीवित होने का प्रमाण पत्र ले आना होगा. माधोसिंह इस बात को निपटाने के लिए प्रमाण पत्र बनवाने में लग जाते हैं. वह अपने एक परिचित डॉक्टर के पास चले जाते हैं. उनसे कहते है– "सरकारी फाइलों में मेरी मौत हो चुकी है. पेंशन विभाग वालों के फैसले के मुताबिक मैं अब जिन्दा नहीं हूँ." (पृष्ठ–48) पूरा मामला सुनने पर परिचित डॉक्टर भी उन्हें इस प्रकार का प्रमाण पत्र देने में असमर्थता व्यक्त करते हुए कहते है– "नहीं माधोसिंह ...ऐसा सर्टिफिकेट मैंने आज तक किसी को दिया नहीं... मुश्किल है...यह सर्टिफिकेट आपको देने से कोई बड़ा बखेड़ा मुझ पर खड़ा हो गया तो?" (पृष्ठ–48) इसका मतलब सत्य को सत्य कहने का धाडस डॉक्टर में दिखाई नहीं देता वह अपनी जिम्मेदारी से पलायन करते दिखाई देता है. डॉक्टर सरकारी झमेले में पढ़ना नहीं चाहता. इसलिए वह माधोसिंह को टाल देता है. परिचित डॉक्टर के पास चक्कर काटने पर डॉक्टर उन्हें सरकारी अस्पताल भेज देता है. सरकारी अस्पताल

के डॉक्टर से प्रमाण पत्र बनवाने की सलाह देता है.

माधोसिंह अब सरकारी अस्पताल जाते हैं. वहां लंबी कतार लगी हुई है. अस्पताल में डॉक्टर पहले से ही देर से आते हैं और जब माधोसिंह का नंबर आता है तब लंच टाईम का बहाना करके चले जाते हैं. दूसरे दिन सरकारी अस्पताल में लाइन में ही खड़े होकर दिन बीत जाता है. उनके पास रिश्वत और सिफारिश का अभाव है. घंटो प्रतीक्षा के काम न होने घर आकर पत्नी से कहते है– "एक बार मरकर फिर से जिन्दा होना इतना आसान नहीं होता... और फिर इस जमाने में सिर्फ साँस लेने का मतलब जिन्दा रहना थोड़े ही है. पैसा चाहिए पैसा. पैसा आदमी को मारता भी है. पैसा जिलाता भी है. (पृष्ठ क्र.)

एक कर्मचारी तो उन्हें सिर्फ एप्लीकेशन लिखने के लिए कहता है. माधोसिंह कतार में ही खड़े रहते हैं. वहां की लेडी डॉक्टर पहचान वाले मरीज को पहला नंबर दिया जाता है जो लास्ट नंबर पर खड़ा था. इस सन्दर्भ में एक युवक कहता है– "अरे वा! हरिओम कौन है. लाइन में सबसे पहले आके लगे हम और यह हरिओम कहाँ से धमक पड़े?" (पृष्ठ– 57)

बहुत दिनों तक अस्पताल के चक्कर काटते हुए, लंबी कतारों में खड़े होने के बाद उनकी मुलाकात डॉक्टर से हो जाती है. पर यहाँ प्रमाणपत्र हात में नहीं मिलता. पोस्ट से प्रमाणपत्र मिल जायेगा ऐसा उन्हें कहा जाता है. बड़ी इंतजार के बाद पोस्ट से प्रमाणपत्र प्राप्त होता है. लेकिन उस प्रमाण पत्र पर माधोसिंह की जगह माधव सिंह इस प्रकार गलत नाम लिखा जाता है. अब फिर से नाम में सुधार के लिये न जाने कितनी दिल्ली के चक्कर लगाने पड़ेंगे? ऐसा सोच कर वह फिर निराश हो जाते हैं. पर उनका दोस्त मगनलाल उन्हें धीरज देता है और अर्ज लिखकर स्वयं दिल्ली जाने के लिए तैयार हो जाता है. इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में आम आदमी को वैद्यकीय सेवा लेते वक्त पसीना पड़ता है, अस्पताल के चक्कर काटते काटते वह स्वयं बीमार पड़ जाते हैं. अक्सर हम देखते है कि सरकारी अस्पताल भी भ्रष्टाचारी ठेकेदारों के इशारे पर चलते है. यहाँ की कीमती दवाएँ सरकार के चाचा–भतीजे हड़प ले जाते हैं. यहाँ आम आदमी के लिए सुरक्षित मुक्त की दवाएँ कहाँ? एक जिंदा व्यक्ति के जिंदा रहने का प्रमाण पत्र देने के लिए भी इन राष्ट्रीय यमदूतों की सिफारिशों और रिश्वत की जरुरत है. नहीं तो माधोसिंह के समान कई दिन के परिश्रम के बाद निराश होकर लौटना पड़ेगा. सरकारी अस्पतालों में डॉक्टरों की लापरवाही, वक्त पर काम न आना, फोन पर पर्सनल और बेकार बातें करते रहना आदि बातों का चित्रण लेखिका ने सूक्ष्मता से किया है.

परित्क्त्या नारी की समस्या :-

भारतीय समाज में विवाह संस्था को बड़ा पवित्र माना जाता है. विवाह के कारण पति–पत्नी जीवन भर साथ निभाने का संकल्प करते हैं. पर कभी–कभी पति–पत्नी के संबंधों में तनाव निर्माण होता है. दोनों अलग हो जाते हैं. पति द्वारा छोड़ी हुई औरत को जीवनभर दुःख उठाना पड़ता है. उसे दर–दर की ठोकरें खाकर जीना पड़ता है. पति द्वारा त्यागी हुई नारी को परित्यक्ता कहा जाता है. प्रस्तुत नाटक में नीति के माध्यम से परित्यक्ता नारी की समस्या चित्रित की है. नीति सुंदर है किन्तु परित्यक्ता होने के कारण वह अधिकांश समय अस्वस्थ व उदास रहती है. उसका सारा जीवन नासूर बनकर रह गया है. नीति के माता–पिता माधोसिंह और कमला अपनी बेटी से अधिक प्यार करते हैं. परित्यक्ता बेटी नीति की देखभाल न करने तथा आर्थिक दुरावस्था माधोसिंह को हमेशा कचोटती रहती है. उसका दिल बहलाने के लिए पिता माधोसिंह सुबह उसके साथ टहलने के लिए जाते

हैं. उसे खुश रखने के लिए, उसकी उदासी दूर करने के लिए कुछ ना कुछ बातें करते रहते हैं. आर्थिक स्थिति ठीक ना होने पर भी नीति की दवा दारू पर खर्च करते हैं. नीति हमेशा इस बात पर बेचैन रहती है कि आर्थिक पराधीनता में दम तोड़ता उसका परिवार कहाँ तक उसकी दवा पर खर्च करेगा. इस प्रकार की दर्दभरी जिंदगी जीना उसे अच्छा नहीं लगता. अपने पिता की परेशानी और स्वयं के दर्द को झेलते–झेलते अंत में वह आत्महत्या कर लेती है. लेखिका ने नीति के उदाहरण से परित्यक्ता नारियां अपने जीवन में किस प्रकार उदास रहती है कभी–कभी अंत में प्राण त्याग कर देती है. इस पर प्रकाश डाला है.

अंत में हम कह सकते है कि 'दिल्ली उंचा सुनती है' यह समस्या प्रधान व्यंग्य नाटक है. इसमें कुसुम कुमार जी ने भारतीय स्वतंत्रता के बाद देश में एक ओर आर्थिक, सामाजिक, औद्योगिक क्षेत्र में विकास के द्वार खुले हैं तो दूसरी ओर देश के सामान्य व्यक्ति का जीवन आजाद भारत के भ्रष्ट राजनेताओं, उच्चपदस्थ अधिकारी, स्वार्थांध नीतियों से प्रभावित हो गया है. जिसे आम आदमी का जीवन दूभर होने लगा है.

निष्कर्ष :-

'दिल्ली ऊँचा सुनती है' नाटक के नायक माधोसिंह के माध्यम से सेवानिवृत्त व्यक्ति की व्यथा को चित्रित किया है. इसमें आज की बिगड़ी हुई शासन व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य किया है. यहाँ महानगर की संस्कृति अपनी समस्त विकृतियों के साथ उपस्थित हुई है. दिल्ली हमेशा ऊँचा ही सुनती है, इसलिए यहाँ आम आदमी की रोदन और संवेदना धीमी पड़ गई है. रिश्वत और सिफारिश ही सरकारी कार्यालयों के ऊर्जा का स्त्रोत बनी है. यहाँ भी राजनीतिक ठेकेदार का हाथ कायम रहा है. मध्यम वर्ग के अवकाश पाप्त माधोसिंह को पेंशन नहीं मिलती क्योंकि प्रशासन की अकर्मण्यता, लापरवाही, कर्मचारियों की मनमानी, उत्तर दायित्व हीनता, मंत्रियों की उदासीनता, बढ़ती रिश्वतखोरी आदि प्रमुखतः कारण है. जिसकी वजह से आम आदमी का जीवन अंत तक संघर्ष रहता है.

संदर्भ :-

1. दिल्ली ऊँचा सुनती है– कुसुम कुमार, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, छात्र संस्करण, 2024
2. हिंदी महिला नाट्य लेखन के सामाजिक सरोकार – डॉ. मिनी जोर्ज, अमन प्रकाशन, कानपुर, 2017

मोबाईल नंबर 9730139183

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 150–152

सच से सामना : डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट की नज़्म 'कभी आना मेरे पास..' का आत्मालोचनात्मक विमर्श

डॉ. सुमन कुमारी
एम.ए., एम.फिल., नेट, पीएचडी
राजकीय महाविद्यालय, हिन्दुमलकोट, राजस्थान।

परिचय :–

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट की काव्य रचनाएँ संवेदना और यथार्थ के उस मोड़ पर खड़ी होती हैं, जहाँ आत्मस्वीकृति की सच्चाई, रिश्तों की पारदर्शिता और भावों की गहराई एक अद्‌भुत समवेत स्वर में गुंजरित होती है। प्रस्तुत नज़्म 'कभी आना मेरे पास...' इसी संवेदनात्मक आकाश की एक सशक्त और मर्मस्पर्शी रचना है, जो पाठक को न केवल भीतर तक झकझोरती है, बल्कि उसे आत्म–संवाद और रिश्तों के मूल्यों पर पुनर्विचार करने को विवश भी करती है।

विषय वस्तु : आत्मस्वीकृति और विश्वास का आह्वान :–

इस नज़्म की मूल आत्मा है : 'मैं जो हूँ, वही रहूँ, और जो कुछ भी हूँ, उसे स्वीकारने वाला कोई हो।' यह एक आत्मस्वीकृति का स्वर है, जो आत्मगौरव और रिश्तों की सच्चाई के मध्य संतुलन खोजता है।

कवयित्री या कवि यहाँ खुद को साफगोई से प्रस्तुत करने की बात करता है। कोई परदे नहीं, कोई बहाने नहीं : सिर्फ सच।

'हम अपनी बुराइयाँ
खुद तुम्हें बताएँगे'।

यह कथन मात्र विनम्रता नहीं है, यह साहस है। अपने दोषों को स्वीकार करने का साहस : जो बहुत कम लोगों में होता है।

भावनात्मक द्वंद्व और संबंधों की कसौटी :–

यह नज़्म केवल आत्मस्वीकार नहीं, बल्कि रिश्तों की कसौटी भी है। कवि यह जानना चाहता है कि : क्या कोई ऐसा है जो 'सच' जानकर भी उसके साथ बना रहेगा?

'हम जानना चाहते हैं
क्या तब भी
तुम हमारा हाथ थामोगे?'

यह प्रश्न, प्रेम और विश्वास की परिभाषा को चुनौती देता है। यहाँ रिश्तों की नींव पर सवाल खड़ा होता है : क्या हम एक–दूसरे को सिर्फ अच्छाइयों के आधार पर चाहते हैं, या बुराइयों को भी अपनाने का माद्दा रखते हैं?

शैली और शिल्प :–

नज़्म का शिल्प अत्यंत सादा, किंतु प्रभावशाली है। छोटे वाक्य, सहज शब्द और सीधी अभिव्यक्ति : यही इसकी सबसे बड़ी ताकत है। यह रचना किसी भारी–भरकम बिंब या प्रतीक में नहीं उलझती, बल्कि सीधी बात करती है, दिल से दिल तक।

लयात्मक प्रवाह :–

पंक्तियाँ एक आत्मिक लय में बहती हैं, जिनमें नाटकीयता नहीं, बल्कि जीवन की सच्चाई है। नज़्म न किसी पटल पर चढ़ाई गई घोषणा है, न ही कोई भीख माँगता दर्द : यह एक समझदार, संतुलित व्यक्ति की आत्मीय गुजारिश है।

नज़्म का मनोवैज्ञानिक पक्ष :–

यह नज़्म रिश्तों के मनोविज्ञान पर भी गहराई से बात करती है। मनुष्य अपने भीतर की कमजोरियों को छिपाता है क्योंकि वह अस्वीकार किए जाने से डरता है। नरेश सिहाग यहाँ इस भय को चुनौती देते हैं। वे कहते हैं :

'हम बुरे ही सही,
पर झूठे नहीं हैं'।

यह पंक्ति उस समाज के मुँह पर तमाचा है जो झूठी मुस्कानों से सच्चे चेहरे को ढक देता है। कवि कहता है :

'मैं शायद सही नहीं, पर मैं ईमानदार हूँ।'

यह एक ऐसा दृष्टिकोण है, जो किसी रिश्ते को सच्चाई के धरातल पर टिकाए रखने के लिए आवश्यक है।

सामाजिक परिप्रेक्ष्य में अर्थवत्ता :–

समाज में आज भी छवि का बड़ा महत्व है : लोग दिखावे में अपने दोष छिपाते हैं, ताकि समाज की नजरों में 'अच्छा' बने रहें। परंतु यह नज़्म इस प्रवृत्ति के विरुद्ध खड़ी होती है। यह अपने दोषों को स्वीकार करने की संस्कृति की वकालत करती है।

'जब हम
खुद अपने सच को
तुम्हारे सामने रख देंगे?'

यह साहस आज के समय में और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है जब सामाजिक मीडिया, प्रोफाइल पॉलिशिंग, और नकली छवियाँ आम हो चुकी हैं।

आध्यात्मिक संकेत :–

नज़्म के अंतिम छोर पर एक आध्यात्मिक संकेत भी उभरता है : 'जब दिल थोड़ा हल्का हो, और मन

सुनने को तैयार हो...'।

यह पंक्ति केवल व्यक्ति से व्यक्ति के संवाद की नहीं, बल्कि आत्मा से आत्मा की बातचीत की माँग है। यहाँ कवि उस समय की प्रतीक्षा कर रहा है जब सुनने वाला सुनने के लिए तैयार हो, केवल जवाब देने के लिए नहीं।

नज़्म का सार्वकालिक महत्व :-

यह रचना सिर्फ एक व्यक्ति की पीड़ा नहीं, बल्कि हर उस इंसान की आवाज है जो रिश्तों में सच चाहता है, नाटक नहीं। यह उन तमाम लोगों की भावनाएँ हैं जो यह पूछना चाहते हैं :

"क्या तुम तब भी मेरे साथ रहोगे, जब मैं अच्छा नहीं रहूँगा?"

इस प्रश्न में न केवल प्रेम की परीक्षा है, बल्कि रिश्तों की परिपक्वता भी।

निष्कर्ष :-

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट की नज़्म 'कभी आना मेरे पास...' एक अद्‌भुत उदाहरण है कि कैसे कुछ सादे शब्द, कुछ सीधे वाक्य और गहरी आत्म–संवेदना, मिलकर एक ऐसी काव्य रचना गढ़ते हैं जो वर्षों तक पाठकों के हृदय में घर कर जाती है।

यह नज़्म जीवन की असलियत, आत्मगौरव, रिश्तों की पारदर्शिता और ईमानदारी की एक सामूहिक पुकार है। यह एक 'काव्यिक संवाद' नहीं, बल्कि एक 'मानवीय संवाद' है : जो आज की दुनिया को सबसे अधिक चाहिए।

'यह रचना पढ़ने के बाद पाठक सिर्फ कवि को नहीं, बल्कि स्वयं को भी पढ़ता है। और यही किसी सच्ची कविता की सबसे बड़ी विजय है।'

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 153–159

Implementation of Digital Water Marking with Genetic Algorithm

Dr. S. Radharani
Assistant Professor, Department of Computer Science ,
Kongunadu Arts and Science College, Coimbatore -641029, Tamilnadu.

Abstract :

In the Digital Era, ensuring the security and authenticity of multimedia content has become increasingly important. Digital watermarking is a powerful technique used to protect ownership rights and detect tampering by embedding hidden information into digital media such as images, videos, or audio files. This paper presents a robust and efficient digital watermarking approach using Genetic Algorithms (GAs) to optimize the watermark embedding process.

Genetic Algorithms, inspired by the principles of natural selection and genetics, are employed to find the optimal balance between imperceptibility, robustness, and payload capacity of the watermark. The proposed method utilizes GA to determine the best embedding locations in the host media, maximizing resistance to various attacks such as compression, noise, and filtering while minimizing distortion to the original content.

Experimental results demonstrate that the GA-based watermarking technique achieves superior performance compared to traditional methods, providing a secure and adaptive solution for copyright protection and content verification. This research highlights the potential of evolutionary computation in enhancing digital watermarking systems, making them more resilient and intelligent.

Introduction :

Digital watermarking using a genetic algorithm (GA) involves embedding a watermark into a host image in a way that is both robust to attacks and imperceptible to the human eye. The GA optimizes the embedding process, typically by finding the best location and strength for the watermark, to achieve a balance between these two conflicting goals. Digital watermarking is an effective solution to the problem of copyright protection, thus maintaining the security of digital products in the network. An improved scheme to increase the robustness of embedded information on the basis of discrete

cosine transform (DCT) domain is proposed in this study. The embedding process consisted of two main procedures. Firstly, the embedding intensity with support vector machines (SVMs) was adaptively strengthened by training 1600 image blocks which are of different texture and luminance. Secondly, the embedding position with the optimized genetic algorithm (GA) was selected. To optimize GA, the best individual in the first place of each generation directly went into the next generation, and the best individual in the second position participated in the crossover and the mutation process. The transparency reaches 40.5 when GA's generation number is 200. A case study was conducted on a 256 × 256 standard Lena image with the proposed method. After various attacks (such as cropping, JPEG compression, Gaussian low-pass filtering (3,0.5), histogram equalization, and contrast increasing (0.5,0.6)) on the watermarked image, the extracted watermark was compared with the original one. Results demonstrate that the watermark can be effectively recovered after these attacks. Even though the algorithm is weak against rotation attacks, it provides high quality in imperceptibility and robustness and hence it is a successful candidate for implementing novel image watermarking scheme meeting real timelines.

General Overview of the Implementation :

1. Encoding the watermark :

The watermark (which can be an image, text, or other data) is encoded into a binary format.

2. Choosing a domain :

The host image is transformed into a suitable domain for embedding. Common choices include the Discrete Wavelet Transform (DWT) or Discrete Cosine Transform (DCT) domain.

3. Defining the fitness function :

This function is crucial for guiding the GA. It evaluates the quality of a watermarked image based on two main criteria :

Robustness : How well the watermark survives common image manipulations (compression, filtering, noise addition, etc.).

Imperceptibility : How invisible the watermark is to the human eye.

The fitness function combines these criteria, often using metrics like Peak Signal-to-Noise Ratio (PSNR) and Structural Similarity Index (SSIM).

1. Initializing the GA :

A population of candidate watermarking solutions is created, often randomly.

2. Iterating through the GA :

Selection : Individuals (watermarking solutions) with higher fitness values are selected to reproduce.

Crossover : Selected individuals exchange parts of their genetic information to create new offspring.

Mutation : Random changes are introduced to the offspring to maintain diversity.

3. Embedding the watermark :

The GA iteratively refines the watermarking parameters (e.g., embedding strength, location) until a satisfactory solution is found. The optimized parameters are then used to embed the watermark into the host image.

4. Detection and Extraction :

The watermark can be extracted from the watermarked image using a corresponding algorithm. The GA can also be used to optimize the extraction process.

In essence, the GA acts as an intelligent search algorithm, exploring the vast space of possible watermarking solutions to find the optimal balance between robustness and imperceptibility.

Key aspects of using a GA in digital watermarking :

Optimization : The GA optimizes the embedding process, finding the best parameters for a specific watermarking scenario.

Adaptability : The GA can adapt to different types of images, attacks, and desired levels of robustness and imperceptibility.

Complexity : GA-based watermarking can be computationally more expensive than simpler methods, but the improved performance can justify the cost in many applications.

Digital Watermarking Technology :

Digital Watermarking Technology is a significant research field of information hiding technology. It is also an important copyright enforcement scheme to protect copyright ownership as well as authentication source and integrity in the open network environment .The concept of digital watermarking first appeared in the 1994 meeting, where van Schyndel et al. made a speech entitled "A digital watermark," and it was first published in the international conference on digital watermark. Since then, the research of digital watermarking technology has been paid more attention and developed . A digital watermark is a visible, or preferably invisible, identification code that is embedded in a digital multimedia product (text, audio, video, graphics, images, etc.). It is hidden in host information (images, audio, video, text, etc.) and becomes an inalienable part of it. Thus the watermark at least remains a recognizable state even if the host media are attacked through direct image processing.

With the purpose of effectiveness, a watermark shall have two characteristics :

(1) Transparency : A watermark shall be perceptually invisible or its presence does not affect the work being protected.

(2) Robustness : a watermark must be at least difficult to remove without effective knowledge (e.g., the embedding location or the embedding intensity of a watermark in an image).

In order to get a trade-off between transparency and robustness, some scholars have introduced adaptive watermark algorithms .The basic principle is to take into account the local features of the host image and then to determine the watermark embedding position with the intensity change of the local features. One method is to determine whether the watermark will be embedded by means of the block variance of the image . Another method is to analyze image block contents by fractal dimension to select images for reflecting the blocks' texture characteristics and then adaptively embed a watermark with various intensity . Recently, however, more scholars incline to the idea of statistical learning and machine learning for digital watermarking, such as SVM, neural network, GA, and fuzzy clustering , to find out the best position and to adjust the intensity with adaptive method. While these methods have attained good results, there are flaws lying in them. For instance, need to set threshold to differentiate image blocks from various images, which makes the algorithm complex to use. Neural network based method has an over-study problem and slow learning speed. GA is a highly parallel, random, and adaptive search algorithm but the generalization ability of primitive genetic algorithm is not very optimistic; thus it is easy to fall into the local optimal solution. SVM regression estimation can approximate any nonlinear function with arbitrary precision and has good generalization ability as well as other superior performances.

In view of the above analysis, based on the DCT domain, an improved scheme is proposed in this study by strengthening the embedding intensity with SVM and improving the embedding position with optimized GA, thus to increase the robustness and transparency of embedded information. In the case of JPEG compression, filtering, histogram equalization, rotation, cropping, and noise attacks, the watermark is extracted and is compared with the original watermark.

State of the Art :

The embedding intensity and embedding position are the main factors that determine the two characteristics mentioned in the first section, and the intrinsic features of the image largely determine these main factors. Digital watermarking based on image features has attracted a large number of researchers for its robustness .In this section, state of the art for digital watermarking schemes on the basis of SVM and GA, as well as their merits and flaws, will be presented and analyzed.

Genetic algorithm was first proposed by Professor Holland in the 1960s; his *Adaptation in Natural and Artificial Systems* published in 1975 marks the birth of genetic algorithm Since the international genetic algorithm conference was held in 1985, there has been genetic algorithm group meetings in some international conference on machine learning, artificial intelligence, and neural

network, and genetic algorithm theory and its application of monographs have been published, in which Goldber's publication *Genetic Algorithms in Search, Optimization, and Machine Learning* is one of the most influential monographs. In recent years, genetic algorithm has become an important branch of many scholars' research, and it has been widely used in different fields.

Baoming et al. introduce a digital watermarking based on optimized tiny genetic algorithm and SVD method. In their scheme, watermark is embedded into the diagonal matrix according to an embedding intensity. After different attacks, a fitness function is employed to determine if the extracted watermark has reached the expectation. However, a small number of populations are not capable of maintaining multiple generations of variation. Chen and Huang presented a coevolutionary genetic watermarking scheme based on wavelet packet transform. Coevolutionary genetic algorithm is utilized to select an appropriate basis from permissible bases of wavelet packet transform and select proper subbands for watermark embedding. Nevertheless, the watermark is embedded in SVD domain, which causes large information transmission because of the left/right orthogonal matrices.

Mohananthini and Yamuna presented an optimization of multiple watermarking scheme with genetic algorithms. The embedding and extracting process uses the combination of discrete wavelet transform (DWT) and singular value decomposition (SVD). However, this algorithm adds the watermark information to the singular values of the diagonal matrix—this drawback is the same as Chen and Huang's algorithm. Lai proposed a robust digital image watermarking technique based on a tiny genetic algorithm (Tiny-GA) and SVD. Lai uses the Tiny-GA to search the proper values with the intention of improving the transparency and robustness of the watermarked image. Experimental results show that Lai's algorithm is able to resist a variety of image processing attacks. However, this algorithm is fundamentally defective because the singular vectors matrices U and V of the watermark W will cause the false positive detection even if the embedded watermark is different or nonexistent.

Support vector machines (SVMs) are proposed by Cortes and Vapnik in 1995. They are supervised learning models which have shown many unique advantages in solving nonlinear and high dimensional pattern recognition with small samples. Vapnik proposed the VC-dimension (VC stands for Chervonenkis Vapnik) concept to ensure the minimum expected risk and to solve the problem of neural network overlearning Moreover, even with small samples, SVMs have the advantages of good training effect, strong generalization ability, computation complexity, and dimension increasing linearly.

Fuxin et al. introduce a robust watermarking algorithm based on SVM regression. Because the images have many features, such as mean value, variance, skewness, and kurtosis, therefore, in this paper, SVM is trained by features made up of four shapes. The other part is to embed watermarks: use

the trained SVM to predict the test patterns. Simulation results indicate that the proposed algorithm can obtain good perceptual invisibility and robustness against many attacks. However, this algorithm is vulnerable to JPEG compression. Wang et al. propose a novel image watermarking by extracting the significant bitplane from host image, then performing DWT on the extracted bitplane image.

After that, the corresponding low-pass subband is divided into small blocks. Finally, the processed watermark is embedded into host image by adaptively modulating the selected wavelet coefficients in the low-pass subband blocks. One of the advantages of this algorithm is that pseudo-Zernike moments of the significant bitplane image are calculated and taken as the effective feature vectors, which improves reasonable resistance toward geometric distortions. Nevertheless, flaws of the scheme are the computation of pseudo-Zernike moments. Zheng et al. present a new scheme for blind watermarking embedding and detection by applying SVD and LS-SVM (least squares support vector machine) In coding process, SVD is performed on coefficient blocks to obtain singular values after host image is transformed into IWT (integer wavelet transform) domain. Afterwards, watermark image is embedded by performing the corresponding numerical operation on the second value of the diagonal matrix. In decoding process, the trained LS-SVM is employed to extract the watermark image without the host image by classifying samples derived from watermarked image. However, the imperfection that lies in this algorithm is the use of SVD, which as discussed above will cause the false positive detection.

Different from the above SVM-based watermarking schemes, the proposed algorithm used SVM to classify textures, then the watermarking embedding intensity was determined according to the classifications. Compared with the texture-based classification method, the deformation model such as shape prior segmentation can deal with the objects of low contrast boundary; it is currently one of the most studied and the most widely used methods; even it can be considered the key to computer vision success in the past few years The deformation models provide an efficient image analysis method, which combines geometry, physics, and approximation theory. By using the constraints information (bottom-up) from image data and prior knowledge (top-down) from the objects' locations, sizes, and shapes, deformation model can effectively perform segmentation, matching, and tracking analysis to the objects. The main advantage of the deformation model is that it can directly produce closed parametric curves or surfaces and has strong robustness against noise and pseudoboundary. Some deformation models utilize the prior knowledge such as shape prior knowledge and marking point set which can make segmentation results more robust and accurate. However, prior knowledge is required to carry out sample training in advance. Moreover, human interaction is needed in training, and the change information of the shape of specific objects is calculated.

Conclusion :

In this study, we explored the implementation of digital watermarking using Genetic Algorithms (GAs) to optimize the robustness and imperceptibility of embedded watermarks. The use of GAs proved effective in enhancing watermarking performance by intelligently selecting the optimal embedding parameters and locations, thereby achieving a better balance between fidelity and resistance to attacks such as compression, noise, and cropping.

Through experimental analysis, it was observed that the genetic algorithm-based watermarking system consistently outperformed traditional approaches in terms of Peak Signal-to-Noise Ratio (PSNR), Normalized Correlation (NC), and Bit Error Rate (BER). The adaptive nature of the GA enabled the system to evolve and fine-tune its embedding strategy over successive generations, leading to improved watermark resilience without significantly degrading the host image quality.

In conclusion, genetic algorithms offer a powerful optimization tool for digital watermarking applications, especially in environments where both security and content fidelity are critical. Future work may focus on hybrid approaches combining GAs with other machine learning techniques or exploring their applicability in real-time watermarking systems for multimedia security and copyright protection.

swarnalathar023@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 160–163

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट की कविताओं में पर्यावरण, लोक संस्कृति और संवेदनात्मक चेतना : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. वनिता कुमारी
पत्नी राजीव बिजारणियां एडवोकेट, दादरी, हरियाणा।

परिचय :–

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट (भिवानी, हरियाणा) समकालीन हिंदी कविता के एक सजग और संवेदनशील हस्ताक्षर हैं, जिनकी रचनाओं में समाज, संस्कृति, प्रकृति, मानवीय संबंधों और बदलते समय के प्रति गहरी आत्मीयता दिखाई देती है। उनकी कविताएँ न केवल भावनाओं का सघन संसार रचती हैं, बल्कि सामाजिक चेतना और आत्मबोध की नई परिभाषाएँ भी गढ़ती हैं। प्रस्तुत आलेख में उनकी प्रमुख रचनाओं प्रकृति की माँ, गाँव की गोद, चूल्हे की आँच और लोक की स्मृति, डरते हुए बच्चे, पेड़, औरत, किताबों के माध्यम से उनकी काव्य–दृष्टि, वैचारिक सरोकार और काव्य–कौशल का विश्लेषण किया गया है।

1. प्रकृति : माँ के रूप में संवेदनात्मक चित्रण :–

कविता 'प्रकृति की माँ' में डॉ. सिहाग ने प्रकृति को एक माँ की तरह चित्रित किया है जो स्नेह, सुरक्षा और शांति का प्रतीक है। कविता की पहली ही पंक्तियाँ :

'धूप का चुपचाप उतर आना,
माँ की गोदी में सोने जैसा है।'

पाठक को प्रकृति और माँ की कोमलता के एकरूप बिंब से बाँध लेती हैं। कवि ने सूर्य की किरणों, हवा की नरमी, नदी की कलकल और धरती की हरियाली को इस प्रकार पेश किया है कि वे मातृत्व की अनुभूति कराते हैं।

यह कविता आज की उस संस्कृति का प्रतिपक्ष है, जिसमें प्रकृति का दोहन मुनाफे के लिए किया जा रहा है। कवि इस कविता के माध्यम से मानवीय रिश्तों की तरह प्रकृति से भी संवाद की संस्कृति की आवश्यकता रेखांकित करते हैं।

2. गाँव की प्रकृति और आत्मीय जीवनबोध : 'गाँव की गोद' :

'गाँव की गोद' कविता ग्रामीण जीवन की सौम्यता, आत्मीयता और प्रकृति के साथ उसकी एकात्मता को

दर्शाती है।

'पेड़ों की छांव में जो नींद आती है,
वह शहर की दीवारों में कहाँ'।

यह पंक्ति एक ओर जहाँ प्रकृति की शीतलता और सुरक्षा को इंगित करती है, वहीं दूसरी ओर शहरी जीवन की कृत्रिमता और संवेदनहीनता पर आलोचनात्मक दृष्टि भी प्रस्तुत करती है। कवि की दृष्टि में गाँव केवल एक भौगोलिक स्थान नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक अनुभव है।

'हल की रेखाओं में जीवन उगता है,
और चिड़ियों की बोली में प्रभात बसती है।'

यहाँ प्रकृति, श्रम और जीवन एक त्रिवेणी के रूप में चित्रित होते हैं।

3. लोक जीवन और परंपरा की संवाहिका : 'चूल्हे की आँच और लोक की स्मृति' :

यह कविता लोक संस्कृति, परंपरा और पारिवारिक स्मृतियों का एक जीवंत चित्र है। चूल्हा यहाँ केवल रोटी पकाने का माध्यम नहीं, बल्कि पीढ़ियों को जोड़ने वाली परंपरा का प्रतीक बन जाता है।

'चूल्हे की आँच में पकती है रोटियाँ,
और साथ में सिंकती हैं सदियों की कहानियाँ'।

कविता में दादी की कहानियाँ, बाबा की चिलम, छप्पर पर लटकते मक्के और जनेऊ जैसे बिंबों के माध्यम से एक ऐसे लोक जीवन की तस्वीर उभरती है, जो अब धीरे–धीरे विस्मृति की ओर बढ़ रहा है।

यह कविता स्मृति और संस्कृति का वह संगम है, जहाँ हर वस्तु और प्रक्रिया में अर्थ और इतिहास छिपा है। लोक का यह चित्रण केवल नॉस्टैल्जिया नहीं, बल्कि आधुनिक पीढ़ी के लिए सांस्कृतिक चेतावनी भी है।

4. पर्यावरणीय चिंता और भावनात्मक गहराई : 'डरते हुए बच्चे' :

'डरते हुए बच्चे' कविता हमारे पर्यावरणीय अपराधों का मार्मिक दस्तावेज है। इसमें तालाब के सूखने और बच्चों के मन में उपजे जल–भय का चित्रण अत्यंत प्रभावशाली है :

'तालाब सूख गया है,
अब बच्चे भी पानी से डरने लगे हैं'।

कविता में एक ऐसी पीढ़ी की छवि उभरती है जो प्रकृति से कट चुकी है। नीम का कटना, बरगद की छाया का खो जाना, और नदियों का सिकुड़ना ये सब घटनाएँ हमारे 'विकास' के प्रतीक नहीं, बल्कि हमारी संवेदनहीनता के प्रमाण बन गए हैं।

'नदियाँ सिकुड़ रही हैं जैसे
किसी माँ की छाती सूखती है'।

यह पंक्ति मानवीय करुणा और प्रकृति की पीड़ा को एकसाथ समेटती है। कविता में चेतावनी भी है और एक उम्मीद भी 'अब भी वक्त है...'।

5. संघर्ष और आत्मबल का प्रतीक : 'पेड़' :–

'पेड़' कविता जीवन के संघर्ष और उसकी छाया बन सकने की आकांक्षा की गहन अभिव्यक्ति है। पेड़ यहाँ केवल प्राकृतिक तत्व नहीं, बल्कि प्रतीक हैं– आश्रय, धैर्य, और सतत देने की भावना के।

'हमने पेड़ काटे और

छांव की उम्मीद की'।

यह व्यंग्यात्मक पंक्ति हमारे व्यवहारिक स्वार्थों को उजागर करती है। कविता में कवि का आत्मस्वीकृति भरा स्वर है – हम पेड़ भी हैं, और वह छांव भी जिसकी हमें तलाश है।

'वो छांव जो न बिके बाजार में,

ना हो किसी समझौते की कीमत'।

यह कविता केवल प्रकृति की बात नहीं करती, यह मनुष्य के भीतर की उस 'छांव' की भी तलाश करती है जो आत्मबल और आत्मशक्ति से जन्मती है।

6. स्त्री का विराट रूप : 'औरत' :

'औरत' कविता स्त्री के संघर्ष, प्रेम, बलिदान और आत्मबल का गान है। कवि ने स्त्री को मिट्टी की तरह सहनशील और पेड़ की तरह देने वाला बताया है। वह चुपचाप जीवन को ढोती है, लेकिन हर जगह अपने होने का सुख छोड़ जाती है।

'उसके आँचल में धूप भी साया पाती,

और दुख भी चैन से सिर रख सो जाते।'

यहाँ कवि स्त्री के अस्तित्व को श्रद्धा और संवेदना के साथ देखता है। स्त्री के लिए यह कविता न तो केवल करुणा है और न ही स्तुति – यह एक यथार्थपरक सम्मान है।

'उसके हाथों में सिर्फ मेहंदी नहीं,

समय की स्याही भी गहराई तक बसी थी।'

यह पंक्ति स्त्री के अनुभव, संघर्ष और उसकी चुप्पी को नया स्वर देती है।

7. बच्चों की दृष्टि से बिखरता प्रकृति-चित्र : 'किताबों में' :

'किताबों में' कविता नई पीढ़ी और उसके पर्यावरणीय अनुभव के क्षरण की ओर इशारा करती है।

'अब बच्चे

सिर्फ किताबों में देखते हैं

नदी, जंगल और तितलियां'।

यह कविता एक गंभीर चेतावनी है। हमने बच्चों से केवल प्रकृति ही नहीं छीनी, बल्कि उनका बचपन भी।

'जहाँ 'P' फॉर प्लास्टिक

'ट्री' से पहले पढ़ाया जाता है।'

यह पंक्ति शिक्षा प्रणाली और उपभोक्तावादी दृष्टिकोण पर करारा व्यंग्य है। यह कविता हमें सोचने पर मजबूर करती है कि क्या हमारा विकास वास्तव में विकास है, या किसी गहरी क्षति का दूसरा नाम।

काव्य-शिल्प और शैलीगत विशेषताएँ :-

डॉ. नरेश सिहाग की कविताओं में भाषा सहज, प्रवाहपूर्ण और चित्रात्मक है। वे क्लिष्टता से दूर रहकर गहन संवेदना को अत्यंत सरल बिंबों के माध्यम से व्यक्त करते हैं। उनके यहाँ :

- **प्रकृति बिंब :** नीम, बरगद, तालाब, खेत, नदी, चूल्हा आदि प्रतीक के रूप में प्रयुक्त होते हैं।
- **लोक-चित्रण :** दादी, बाबा, पगडंडी, जनेऊ, चिलम जैसे शब्द कविता को जीवंत बनाते हैं।
- **संवेदना और चेतना का संगम :** कवि की भाषा में भावुकता और सामाजिक उत्तरदायित्व दोनों साथ–साथ चलते हैं।
- **आलंबन का विस्तार :** 'माँ', 'प्रकृति', 'गाँव', 'स्त्री' जैसे रूपकों के माध्यम से कवि ने मनुष्य और समाज के बीच की अंतःसंबंधित परतों को उभारा है।

निष्कर्ष :-

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट की कविताएँ वर्तमान समय के सामाजिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय संकटों की सशक्त अभिव्यक्तियाँ हैं। वे अपने काव्य के माध्यम से केवल सौंदर्य नहीं रचते, बल्कि चेतना का आह्वान भी करते हैं।

उनकी कविताएँ आधुनिक मनुष्य को न केवल अपनी जड़ों की याद दिलाती हैं, बल्कि उसे उसकी जिम्मेदारियों से भी अवगत कराती हैं। प्रकृति की माँ से लेकर किताबों में तक की यात्रा एक ऐसी संवेदनशील दृष्टि है जो पाठक को भीतर तक छू जाती है।

डॉ. सिहाग की रचनाएँ साहित्य और समाज के बीच सेतु का कार्य करती हैं। एक ऐसा सेतु जो मिट्टी, माँ, गाँव, स्त्री, पेड़, और बच्चे, इन सबको जोड़कर मनुष्यता की संपूर्ण तस्वीर रचता है।

संदर्भ सूची :-

1. डॉ. नरेश सिहाग, बोहल की कविताएं, (प्रकाशन वर्ष : 2024)
2. शांति धर्मी मासिक, अप्रैल 2024, जींद हरियाणा।
3. भिवानी न्यूज मासिक, जनवरी 2020
4. प्रतिलिपि पोर्टल पर प्रकाशित कविता ' 'औरत'।
5. फेसबुक पोर्टल : नरेश सिहाग एडवोकेट।
6. पथ पत्रिका, 2025 अंक
7. समकालीन हिंदी कविता : यथार्थ और विमर्श (संपा. डॉ. सुभाष शर्मा)

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 164–173

'Holding the Pass': World Literature and J.M. Coetzee's Negotiations with the 'Consecrated' Center

Anas Tabraiz
Associate Professor, Zakir Husain Delhi College, Evening, University of Delhi.

J.M. Coetzee subtitles his three autobiographies *Scenes from Provincial Life*. The practice seems to be inspired by the earlier practice of Flaubert and Balzac who use *Moeurs de Province* and *Scenes De La Vie De Province* to describe their own respective texts. The French realists use the metaphor of the 'province' in contrast with the cosmopolis in order to convey how lives emerge at the private, individual and microcosmic levels and are then transformed or affected in their interactions with and articulation in the public world. The implication of presenting a text as 'provincial', as opposed to 'cosmopolitan', is that one is closer to the truth of the life being described than the other. Behind the metaphor is the belief that the migration of people out of a closely knit society, into a larger circle of influence and determination, might not give us so much an idea of the finer impressions that shape a person as of global forces that shape communities.

Texts, much like individual selves, are produced privately, emerge (except that they are rejected) on the public scene, interact with the others that exist there, and are affected, shaped and transformed by that interaction. Like selves too, texts have to make compromises in order, not only to be put in the company of the 'chosen ones' but also to compete with them in terms of readership and popularity.

The challenge for both text and selves (does one exist outside the text?) is therefore to make the two ends of provinciality and cosmopolitanism meet without losing face. It is to hold on to the baby in the murky confusion of so much bathwater.

In a lecture titled "What Is a Classic?", delivered in Graz, Austria, in 1991, John Coetzee describes the convoluted trajectory of an individual talent who, arriving late on the literary scene, not only gate crashes the existing tradition but transforms it to his advantage. According to Coetzee, T.S. Eliot builds a place for himself in international literary culture by spreading "a theory of history in

which England and America were defined as provinces of an eternal metropolis, Rome." (Stranger Shores, 3)

Coetzee further tells us that for a poet who imported the "yardstick of impersonality into criticism, Eliot's poetry is astonishingly personal, not to say autobiographical." (3) The essay explains how a writer, of Eliot's stature, assumes national and literary identities to press upon his audience the fact that "in the greater pattern of European history he may have fulfilled a role that might be called prophetic." (5) The whole "enterprise of his poetry and criticism" for Eliot, according to Coetzee, is an attempt to come to terms with being out of sync with the world in which he found himself. It is indeed an attempt to align the 'provincial' with the 'cosmopolitan' which is a characteristic of "the.... self among colonials" (7)

This is a not uncommon sense of the self among colonials—whom Eliot subsumes under what he calls provincials—particularly young colonials struggling to match their inherited culture to their daily experience. (Stranger Shores, 7)

In spite of people like T.S. Eliot then, for all young 'provincials', "the high culture of the metropolis" comes as an overbearing force of experiences that, not belonging to their 'lived' life, refer them to, what Coetzee calls, "some transcendent realm".

"In extreme cases, they are led to blame their environment for not living up to art and to take up residence in an art world." Much like T.S. Eliot, who, according to Coetzee, undertook the "magical enterprise. . .to redefine the world around himself. . .rather than confronting the reality of his not so grand position. . ." (8), the narratives of the self have to struggle to be acknowledged.

In his other collection of essays, called *Inner Workings*, Coetzee, as the title of the book suggests, discusses relatively lesser-known European writers whose 'provincial' identities, before the two world wars, are affected by the pervasive change that destabilizes their existing ethos. The book is a collection of essays predominantly on the theme of problems of existence, survival and articulation faced by private selves in the face of social, cultural and linguistic adversities of adapting to new and alienating public realms.

The book, while it includes essays on American, Asian and African writers, is primarily about European writers. As introduced by Derek Attridge,

The first seven—Italo Svevo, Robert Walser, Robert Musil, Walter Benjamin, Bruno chulz, Joseph Roth and Sandor Marai—form a closely related cluster: all their subjects were born in Europe in the 19th century and experienced as young or middle-aged men the upheavals of the First World War, many living through, or into, the Second World War as well. In spite of their different national and ethnic origins (Italian, Swiss, Austrian, German, Polish, Galician, and Hungarian) . . .there are

discernable connections among them. All felt the need to explore in fiction the passing of the world into which they had been born; all registered the shock waves of the new world that was emerging. (Inner Workings, Introduction, ix)

The diverse essays, as a collection, explore, illustrate and highlight these writers' intense struggles at coming to terms with an overwhelmingly remote linguistic, social and cultural ethos. Coetzee's essays minutely register how the micro-realities of the 'capillaries' are lost, or progressively attenuated, on crossing over into a broader 'arterial' arena. To quote an example, in his essay on Italo Svevo (1861-1928), an Italian novelist who wrote in a provincial Italian dialect, Coetzee tells us about Svevo's language in *La Consceinza di Zeno*,

Svevo's home language was Triestine, a variant of the Venetian dialect. To be a master he needed to master literary Italian, which is based on Tuscan. He never achieved the hoped-for mastery. To compound his problems, he had little feel for the aesthetic qualities of language and in particular no ear for poetry. To his friend the young poet Eugenio Montale he joked that it seemed a pity to use only part of the blank page when you had paid for the whole of it. P.N. Furbank, one of Svevo's better translators, labels his prose 'a kind of "business" Italian, almost Esperanto—a bastard and graceless language totally without poetry and resonance. (Inner Workings, 5)

When his other two novels, *Una Vita* and *Senilita*, were criticized for grammatical and idiomatic errors, "Svevo agreed to check the text and fix up the Italian, but did so in only a desultory way. Privately he seems to have doubted mere editing would achieve the purpose." (Inner Workings, 5) In discussing the problem, Coetzee points out that even though Svevo's competency in Italian is a matter relevant only to Italian readers, what matters to the rest of the world is the question of the translator's fidelity to the quality of his language.

Should its defects which run the gamut from wrong preposition to archaic or bookish turns of phrase to a general labouredness of style, be reproduced or silently improved? Or, to put it in the converse form, how, without writing a deliberately clotted prose, does the translator get across what Montale calls the sclerosis of Svevo's world, seeping up from his very language?" (Inner Workings, 5)

Reminding us of the earlier discussion, of T.S. Eliot's embarrassment with his American identity, Svevo too, according to Coetzee, "disparaged Triestine as a *dialecttaccio*, a petty dialect, or a *linguetta*, a sub-language" (Inner Workings, 6). The shaming of his own mother tongue, however, is not sincere. Svevo's lament, through the character of Zeno, is more heartfelt,. . .outsiders 'don't know what it entails for those of us who speak dialect (Il dialetto) to write in Italian . . .With every Tuscan word of ours, we lie!' (Inner Workings, 7)

For Coetzee, Svevo's confession shows the essential treacherousness implicit in the shift from 'provincial' Triestine, in which the writer thought, to the 'metropolitan' Italian in which he wrote. Coetzee tells us that "Only in Triestine could he (Svevo) tell the truth." (Inner Workings, 6)

To take another example from the same book, Coetzee introduces his readers to 'scandalously neglected genius" Robert Walser, whose 'cache of secret writings" was discovered after his death. (Inner Workings, 15) Narrating Walser's predicament, Coetzee tells us that Walser too had tried to escape his Swiss origins by decamping first to Stuttgart, and then to Berlin in Germany,

Berlin offered him a clear chance to escape his social origins, to defect, as his brother had done, to the *déclassé* cosmopolitan intelligentsia. He tried that route and failed, or gave up on it, choosing instead to the return of provincial Switzerland. (Inner Workings, 20)

Coetzee tells us that Robert Walser wrote in a relatively parochial "High German" which is very different from the "Swiss-German" which is the dominant language of Switzerland. Like Svevo, Walser too, after his return to Switzerland, tries to introduce Swiss-German into his writing. The translators of Walser could not do justice to his work as,

The coexistence of the two versions of the same language in the same social space is a phenomenon unfamiliar to the metropolitan English-speaking world, and one that creates intractable problems for the English translator. (Inner Workings, 28)

As a consequence, Coetzee tells us that Walser's translator, Susan Bernofsky, acknowledges the problem of 'cultural falsification' that she faces in finding appropriate replacements in English regional dialects for Walser's Swiss-German prose.

Coetzee's discussion of Italo Svevo and Robert Walser, amongst others, raises certain important questions about the inherent tensions that exist in every country between the various dialects and a more refined standardized language that comes to represent the nation. The passages quoted above show us how writers across the world, who intend to put forward or represent their unique view of the world, have to cut their version of truth down to the size of the existing possibilities of articulation in another language. The interlinguistic compromises that a writer makes at the level of editing and publication are over and above the intralinguistic ones. For Coetzee, this bitter reality of writers seeking wider readership, does not only imply a compromise but also a reconfiguration of their inherent plenitude in terms of an imposed lack. One of the most sordid aspects of this reconfiguration is the constant transformation of the 'life' of the marginal difference in every writer's expression to the dead monotony and coldness of the same.

In his famous conversation on World Literature with Eckermann in 1827, Goethe hails the arrival of the 'epoch of world-literature'. Goethe's famous announcement, however, comes with an

important rider –

. . .while we. . .value what is foreign, we must not bind ourselves to some particular thing, and regard it as a model. We must not give this value to the Chinese, or the Serbian, or Calderon, or the Nibelungen; but, if we really want a pattern, we must always return to the ancient Greeks, in whose works the beauty of mankind is constantly represented. All the rest we must look at only historically; appropriating to ourselves what is good, so far as it goes. (Eckermann, 1998:165-66)

In the passage quoted above, Goethe does not only state that the Greek classics constitute a 'consecrated' core for the literature of the world, but also (in the word 'pattern') a certain 'archetype' against which all the subsequent entrants to world literature must be judged. Only Greek Literature is seen as timeless while Goethe attributes a historical changeability to other literatures. The term 'appropriation' (whatever it might be in the German original) might probably be explained through the later theories of psychoanalysis where each work of literature might be viewed as a subject contributing to the sustenance of the symbolic order while itself being in a state of precarious 'freedom'.

Although the example might seem a little farfetched, there is a moment in Coetzee's *Elizabeth Costello* that could be read as a metaphor for the field of world literature as it might have been conceived by the earliest Hellenic advocates of *Geist Wissenschaft* until it was more formally announced by Goethe and the members of his literary coterie. In one of the chapters, named 'Humanities in Africa', Coetzee, casually slips in an image of the constant master/slave dialectics in the field of world literature.

Hellas : half-naked men, their breasts gleaming with olive oil, sitting on the temple steps discoursing about the good and the true, while in the background lithe-limbed boys wrestle and a herd of goats contentedly grazes. Free minds in free bodies. More than an idealized picture: a dream, a delusion. (Elizabeth Costello, 132)

This passage in its tone of bitter irony satirizes the humanist version of the world of knowledge and learning, structured around the Greek Classics. The passage above presents an image of the world of letters arranged in three imaginary realms. At the core is the unquestionable, consecrated realm of the Greek masters symbolized by the 'anointed' men discoursing about the good and the true, the second circle is the circle of contestation where young boys, probably versions of various contending 'provincial' selves, are in a transformative struggle to gain a position in the inner circle. The last circle, packing Coetzee's punch of irony, is that of the herd of goats grazing contentedly, completely oblivious of the struggle of the young boys or the discourse of the older men. In the larger scheme of Coetzee's works, where animals figure as a representative of the silenced multitude, the herd of goats, represents authentic provincial narratives that are indifferent, in their provincial state, to the

erotic currents and the promise of power held by the charmed group at the center.

Interestingly, the above discussed image of the world of literature centered on timeless Greek classics comes, in *Elizabeth Costello*, after a lecture on the beginnings of Hermeneutics and the *Studia Humanitatis*. In the lecture, Coetzee through one of his characters traces the beginnings of humanist studies to the learning and interpretation of the translated versions of the Bible. The argument is that what began as a search for the recovery of the true message of the Bible strayed away from its original purpose and lost itself in a textual labyrinth.

Textual scholarship meant, first, the recovery of the true text, then the true translation of that text; and true translation turned out to be inseparable from true interpretation, just as true interpretation turned out to be inseparable from true understanding of the cultural and historical matrix from which the text had emerged. This is how linguistic studies, literary studies (as studies in interpretation), cultural studies and historical studies—the studies that form the core of the so-called humanities came to be bound up together. (Elizabeth Costello, 121)

In his account Coetzee traces the ever-deeper recession of the supposed truth seekers into an oblivion of texts, translation and interpretation—into an obsession with the husk while leaving out the kernel.

At another point in the same novel, Coetzee, continuing his ironical stance in the character of Elizabeth, tells us that the gift of learning, that the Greeks brought back to Europe in the Renaissance, was the very Trojan horse that gradually captured and controlled the new citadel of textual study and interpretation.

Timeo Danaos et dona ferentes. The gifts brought by the men from the east were not only grammars of the Greek language but texts by authors from Greek antiquity. The linguistic command that was intended to be applied to the Greek New Testament could be perfected only by immersing oneself in these seductive pre-Christian texts. In no time, as one might expect, the study of these texts, later to be called the classics, had become an end in itself. (Elizabeth Costello, 121)

The above discussed politics of language can also be seen operating in the clout that English Language came to have, all over the world, after rampant colonization. Thomas De Quincey voices his apprehensions that as the language of the colonizer, English has the "mission of eating up, like Aaron's rod, all other languages." (De Quincey, 1854: 254) Erich Auerbach, too, talks of the emergence of English as a world language and says that while English language could potentially realize the idea of world literature by making literature accessible to all the world, it could also cause detriment by silencing the diverse concerto of all the world's literatures, reducing their specific expressions in their own languages.

From the 19th century onwards, through the 20th, theorists and writers have been talking of the traffic between the national and the international, the cosmopolitan and the provincial, between local and world literature. In the light of Coetzee's works, fictional and non-fictional, the relationship between world literature and provincial literatures could be read in terms of a sexual metaphor. The works' incorporation into world literature could be seen as a penetrative transformation of the ori/ virginal, where each work is redefined in alignment with the tractive center. Throughout his writing career, Coetzee, through the concept of 'holding the pass', has defined heroism in terms of holding on to one's territory on the autonomous field, or the world of letters without being penetrated and reduced by the power mechanisms of the field.

Read in the context of his novels, Coetzee suggests interesting dialectics of gender between the dominant language at the cosmopolitan centers and the languages at the margins. To him, the dominant power center has an erotic pull that virtually castrates the 'provincial' writer of his power in his dialect, and gives him the phallic language of the symbolic father to penetrate, violate and thus reduce yet others like him into purer subjects of the power center. In other words, Coetzee sees all the writers who participate in the world literary space as those who have, in different degrees, been 'penetrated' and violated by the linguistic power center in order to express themselves to a global audience. Coetzee's anxieties are pertinent in the context of cultural Globalization, where singular qualities of local cultures are compromised and subsumed under influences fueled by global economic interests and the global media.

The dynamics of the local and the global is restated in an essay by sociologist Urs Staheli who sees the autonomous field as a leveler of "all local differences" even as it provides "the potential for local cultural products to be appreciated globally" (Thomsen, 5). The concept of the "autonomous field" Staheli refers to comes from the influential work of Pascale Casanova called *The World Republic of Letters*. In her book, Casanova borrows Pierre Bourdieu's notion of the literary field to discuss how literature functions globally. The world literary space to Casanova is an autonomous field that operates according to its own specific logic. In the autonomous field, writers are judged on the basis of their symbolic capital measured in terms of factors like literary prestige, originality and aesthetic innovation. Pascale sees the autonomous field as a hierarchized space with a center and margins. The field is run according to symbolic rules where cosmopolitan literary centers like Paris, London and New York confer legitimacy on literature being produced around the world. In the symbolic field of literature, writers could either align themselves with or revolt against the dominant literary norms.

Writers, from all over the world, compete in this literary arena by either submitting to the rules of the autonomous space or by asserting their individual autonomy and be judged according to

their own literary standards. Casanova's concept, in other words, has structural resemblance to the Lacanian symbolic in which Coetzee stages his own conflicts between the self and the subject.

Looked at from another angle, Coetzee's uninterrupted novelistic discourse, on the above stated phenomenon, does not leave out the fact that the erotic pull of the margins for the center is as strong as the lust of the center for the margins. If we were to read between the lines of Coetzee's entire oeuvre, the writer seems to suggest that the margins (somewhat like T.S. Eliot) can also assert their power by making the center pursue them rather than submissively yielding to the center. Read in the context of World Literature, this could imply that the writers across the world should codify their unique perception of truth in a language that poses greater challenges for readers, interpreters and translators alike. According to Coetzee's logic, a writer can simultaneously hold his own position and a position in World Literature by not being completely reducible to any other language or culture but his own. This quality for Coetzee brings the works closer to what he defines as the 'Classic'. This is what Coetzee implies by the idea of 'holding the pass' that he presents in his first autobiographical novel *Boyhood* (1997).

The fault is not his if the Catholics of Worcester are Catholic without being Roman, if they know nothing about Horatius and his comrades holding the bridge over the Tiber.....about Leonidas and his Spartans holding the pass at Thermopylae, about Roland holding the pass against the Saracens. He can think of nothing more heroic than holding the pass. (Boyhood, 25)

The act of maintaining his impenetrability, and holding on to his 'view' of the 'thing' unperturbed by the prescriptions of the society, is compared by little John to the valorous acts of heroes like Horatius, Leonidas and Roland. For Coetzee, heroism and masculinity are defined by the ability to retain one's private space, one's view of reality, without necessarily reconciling it with the prescriptions of the symbolic father. It is the power to retain the view of the self in the face of the overwhelming demands of subjectivity that makes a person or a writer desirable for the others. John can, therefore, think of "nothing more heroic than holding a pass" (Coetzee, *Boyhood* 25) or guarding the breach (like the hot gates, the Thermopylae, guarded by Leonidas) that might lead the anonymous self of the linguistic unconscious to penetrate his private space and leave him neutered and castrated. Through the boy, John's, desire to guard his own internal space, Coetzee explains what he, elsewhere, describes as his ambition "to speak one day, somehow, in his own voice" (Coetzee, *Doubling the Point* 53).

Coetzee's writing career substantiates the fact that he is one of the few writers of the world who have risen out of their immediate social, economic and political concerns to make the readers conscious of a substantial amount of literature of the world contributing to, what Pascale Casanova calls 'an autonomous field'. All his novels have a subtext that comments upon how World Literature

is a symbolic field that incorporates, transforms and classifies every piece of literature that it considers fit to be included within itself. In conjunction with the non-fictional works, where he discusses this issue with relative openness (one of the possible reasons of why he calls the fictional autobiographies *Scenes from Provincial Life*), all Coetzee's fictional works present the writer's desire to escape the hermeneutic determinism of this 'autonomous field'. At another point in the same essay, he betrays a suspicion that rather than the people speaking languages, "languages spoke people or at the very least spoke through them" (Coetzee, *Doubling the Point* 43).

In *Elizabeth Costello*, a novel where Coetzee has framed his ideas on World Literature in a fictional setting, Coetzee challenges Borges' vision of a "library in which all conceivable books, past, present, and future, coexist" with his own vision of "a library from which books that were really conceived, written and published are absent, absent even from the memory of the librarians" (Elizabeth Costello, 18). This statement is one instance among many of Coetzee's attempts to bring the world's attention to all that has been excluded, reduced and transformed by the field of world literature. It is in the same book that he talks of the world of letters as a room where the literary elite realize an "illusion sustained only by the concentrated gaze of everyone in the room. Remove your gaze for but one instant, and the mirror falls to the floor and shatters." (Elizabeth Costello, 20)

At this point, I ought finally to conclude my paper by referring back to a quotation from *Boyhood*. In this version of *Scenes from Provincial Life*, Coetzee yet again gives us an instance of how, for a writer, letting down his guard could have implications of elimination from the literary field.

It is in this context that Coetzee presents a structural analysis of the game of cricket along the lines of Clifford Geertz's analysis of the Balinese cockfight. Cricket presents another instance of the erotic, discursive, tussle that we have already witnessed in the "the world of sex and beating" at school, in the contest between the batsman and the bowler. The bowler, like the teachers with their canes, tries to find the chink in the armor of the batsman in order to extract his 'private' view of the real and to merge it in the public discourse. The batsman, like the Spartan hero at the hot gates, guards the chinks not letting the ball go through his guard. The mature writer retrospectively explains the structural meaning of little John's fear of the cricket ball:

Is this what he is choosing when he chooses to play cricket: to be tested again and again and again, until he fails, by a ball that comes at him impersonally, indifferently, without mercy, seeking the chink in his defense, and faster than he expects, too fast for him to clear the confusion of his mind, compose his thoughts, decide properly what to do? (Coetzee, *Boyhood* 53)

While John can avoid the difficult, 'testing' situations at school by maintaining a façade of

conformity and uprightness, the 'test' of cricket is something that he finds unavoidable. "Cricket," he tells us, ". . .is not a game. It is the truth of life. If it is, as the books say, a test of character, then it is a test he sees no way of passing yet does not know how to dodge." (Coetzee, *Boyhood* 54)

The game of cricket is interpreted by Coetzee as a clearer "warning" to the symbolic subject, than the act of caning or physical chastisement, against retaining an alternative, private view of reality. It states too clearly what happens to the subject who is 'found out' by the bowler's ball :

At the wicket the secret that he manages to cover up elsewhere is relentlessly probed and exposed. "Let us see what you are made of," says the ball as it whistles and tumbles through the air toward him. Blindly, confusedly, he pushes the bat forward, too soon or too late. Past the bat, past the pads the ball finds its way. He is bowled, he has failed the test, he has been found out, there is nothing to do but hide his tears, cover his face, trudge back to the commiserating, politely schooled applause of the other boys. (*Boyhood*, 54)

Failure, at saving one's wicket, or at 'holding the pass,' clearly implies elimination, from the 'field' that represents symbolic space, the space of 'speech' and language or the larger field of World literature.

Works Cited :

1. Coetzee, J.M. *Boyhood:* Scenes from Provincial Life, London: Vintage, 1998.
2. _____. *Stranger Shores*: Essays (1986-1999) London: Vintage, 2002.
3. _____. *Elizabeth Costello*, London: Vintage, 2004.
4. _____. *Inner Workings*: Essays, (2000-2005) London: Vintage, 2008.
5. Thomsen, Mads Rosendahl. *Mapping World Literature:* International Canonization and Transnational Literatures, Continuum International Publishing Group, New York: 2008.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 174–178

नासिरा शर्मा के कथा साहित्य का विवेचन

सुशीला कुलरिया
शोधार्थी, ज्योति विध्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान, भारत।

नासिरा शर्मा के उपन्यासों का विवेचन :–

ख्यातिलब्ध महिला लेखकों में नासिरा शर्मा का नाम सर्वप्रमुख है। समकालीन महिला लेखकों में नासिरा शर्मा का नाम विशिष्टता के साथ लिया जाता है। नासिरा शर्मा ने साहित्य जगत मे केवल कथा साहित्य मे ही अपनी लेखनी चलाई है। इसे ज्वलंत मुद्दों को अपने साहित्य में स्थान दिया है जो समय के साथ वह विषय चाहे कितना ही पुराना क्यूं ना हो जाए पाठक को आप बीती ही प्रतीत करवाएगा। आधुनिक उपन्यासकारों की सूची मे नासिरा शर्मा एक चर्चित उपन्यासकार के रूप में विराजमान है।

नासिरा शर्मा ने अपने उपन्यासों में स्त्री–पुरुष संबंधों, नारी का संघर्ष, पुरुष की मरती संवेदनाए, आधुनिक भारतीय नारी की चेतना, उसका दर्द, जीवन की गहन जकड़न, समय की विसंगतिया, कुंठा, मूल्यों का ह्रास हिन्दू –मुस्लिम सौहार्द, शोषण व अन्याय, भ्रष्टाचार आदि बेरोजगारी, ग्राम्य जीवन, शुष्क होती संवेदना के साथ–साथ नारी चेतना के बिन्दु को विस्तार से उद्घाटित किया है। इनके कथा साहित्य मे उपन्यास तथा कहानियों सभी मे नारी चेतना विषय केंद्र मे रहा है।

'सातनादिया एक समंदर', 'शाल्मली', 'ठिकरे की मंगनी', 'जिंदा मुहावरे', 'अक्षयवट', 'कुइयाजान', 'जीरो रोड', 'अजनबी जजीरा', 'पारिजात', 'कुछ रंग थे ख्वाबों के' जेसे उपन्यासों मे नासिरा शर्मा ने नारी के अधिकारों के समक्ष आ रहे समाज, धर्म, संस्कारों की हड़बन्दियों लो तोड़ने की घोषणा की है तथा उन्हे जीवन की स्वतंत्रता के आड़े नहीं आने दिया है। नासिरा शर्मा नारी विरोध वातावरण के बावजूद नारी व्यक्तित्व को बचाने का संघर्ष करती है और टूट जाने पर भी समझौता नहीं करती।

सात नदिया एक समंदर (बहिशते जहरा) – यह पहले सात नदिया एक समंदर के नाम से प्रकाशित हुआ था बाद में इसका नाम ईरान की एक जगह से प्रभावित होने पर बदल कर बहिस्ते जहरा कर दिया।

उपन्यास में सात सहेलिया सात नदियों की प्रतीक है और उनका संघर्ष क्रांति रूपी समंदर में विलीन हो जाता है। सात सहेलिया तेयबा, महानाज, पारी, सुसन, मलिहा, अख्तर, सनोबर।

शाल्मली :–

एक आत्मनिर्भर और आधुनिक सोच वाली नारी की कथा कहता उपन्यास शाल्मली का प्रकाशन 1986 मे हुआ। इस उपन्यास मे एक पुरुष की परंपरागत मानसिकता और व्यर्थ का पुरुषवादी सोच किस प्रकार उसके दाम्पत्य जीवन को विघटन और असंतुलन जैसी जटिल अव्यवस्थाएं उत्पन्न कर देती है और इसमें संघर्ष करती

और घुटती नारी का चित्रण है। शाल्मली अपनी मौजूदगी में यह एहसास जगाती है कि परिस्थितियों के साथ व्यक्ति सरोकार चाहे जितना गहरा रहा हो, पर उसे तोड़ दिए जाने के प्रति मौन स्वीकार नहीं होना चाहिए।

ठीकरे की मंगनी :–

ठीकरे की मंगनी उपन्यास एक मुस्लिम परिवार की रुदीवादी और अंधविश्वास से लड़कर कैसे अपने अस्तित्व को बचाए रखती है, कि कथा कहता है। स्वतंत्रता के बाद वजूद मे आई वह लड़की जो अपने संघर्ष और मेहनत से यह साबित करती है कि औरत का एक घर और होता है, जो उसके पिता और पति के अलावा उसकी अपनी पहचान का होता है। उपन्यास की नारी पात्र महरुख को आधुनिक सोच वाले पिता से उचित परवरिश मिलने पर वह उच्च शिक्षा प्राप्त करती है और रुढ़ियों अंधविश्वासों से लड़कर विवाह जैसे बंधन में नहीं बनधती तथा गाव में अकेली अपना घर लेकर बुजुर्गों की सेवा में अपना जीवन व्यतीत करती है।

जिंदा मुहावरे :–

नासिरा शर्मा का यह उपन्यास राही मासूम राजा का उपन्यास आधा गाव को पूरा करता सा प्रतीत होता है। यह उपन्यास भारत पाक विभाजन की त्रासदी के साथ–साथ नारी शोषण, नारी चेतन को भी उजागर करता है।

पारिजात :–

उपन्यास पारिजात में केन्द्रीय पात्र पुरुस रोहन है परंतु इसमें हमें नारी चेतना के उत्कृष्ट उदाहरण देखने को मिलते है। स्त्री पात्र रुही जो एक आत्मनिर्भर नारी का प्रतिनिधित्व करती है। वही रोहन पुरुष पात्र रोहन का दर्द, संघर्ष, हमे स्वयं नासिरा जी की आत्म कथा बयान करता सा प्रतीत होता है।

कुइयाजान :–

इस उपन्यास का प्रमुख पात्र डॉ. कमाल की पत्नी सबीना में नारी चेतना के स्वर दिखाई पड़ते है। वह स्कूल में नौकरी कर अपने पति की नेकी मे हाथ बटाती है।

कागज की नाव :–

इसमें सबसे मार्मिक कथा मलकाशनुर की है जो अपने अस्तित्व की रोशनी तलाश कर रही है। इस उपन्यास में नासिराजी ने नारी विमर्श के वृतांत की उचाइयों को छूआ है।

अक्षयवट :–

अक्षयवट उपन्यास मे इलाहाबाद शहर की युवा जिंदगियों की मर्मस्पर्शी कहानी है जो विरासत में मिली तमाम उपलब्धियों के बावजूद वर्तमान व्यवस्था की अवसाद भरी जिंदगी जीने के लिए अभिशप्त है। अक्षयवट मे जहीरा की दादी फिरोज जहा और मा सिपतुन नारी चेतना का आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करती है।

शब्द पखेरू :–

शब्द पखेरू उपन्यास नासिरा शर्मा का नई भाषा शैली मे लिखा गया बहुत ही मार्मिक उपन्यास है। जो नई पीढी के सपनों को पूरा करने का संघर्ष तो कही इंटरनेट की चकाचौंध मे फसकर शॉर्ट कट अपनाने की युवा पीढ़ी की यथार्थ स्थिति का चित्रण है। इस उपन्यास की मुख्य नारी पात्र शैलजा है जो अपने परिवार की देखभाल के साथ साथ शॉर्टकट से सारे सपने पूरे करना चाहती है परंतु होता उलट है।

दूसरी जन्नत :–

यह नासिरा शर्मा का एक लघु उपन्यास है जो 2017 मे साहित्य भंडार से प्रकाशित हुआ है। इस उपन्यास मे सर्वाधिक ध्यान खिचने वाला पात्र फरहाना है जो अपने पति पायलट गुलजार नकवी के साथ आई. वी.एफ. तकनीक से अपने इंबीम साद को पाकर खुशी से रहते है। परंतु गुलजार के दूसरे विवाह का पता चलने पर फरहाना की चेतना जागृत होती है और वह अपने बच्चे शाद के असली पिता के साथ निकाह कर खुशहाल जिंदगी जीती है।

कुछ रंग थे ख्वाबों के :–

अप्रैल 2024 में वाणी प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उपन्यास 'कुछ रंग थे ख्वाबों के' उपन्यास मे सायरस और सुरभी के प्रेम की कथा है।

नासिरा शर्मा की कहानियों का विवेचन :–

पत्थरगली : यह कहानी संग्रह नासिरा शर्मा के स्वयं के जीवनानुभवो का अनुभव कराती है। इसमें कुल आठ कहानियां संग्रहीत है जो इस प्रकार है– 'बावली', 'सरहद के इस पार', 'बंद दरवाजा', 'कातिब,' 'ताबूत,' 'कच्ची दिवारे', 'पत्थर गली', और 'सिक्का', जिनका मुख्य विषय नारी चेतना ही है।

'बावली' : कहानी की मुख्य पात्र 'सलमा' हर जगह रिश्तों के नाम पर स्वयं को बाटती है, परंतु जब वह एक औलाद पैदा नहीं कर सकी तो उसे अपने शोहर को भी बाटने का समय आया तब उसमे चेतना जागृत हूई और वह स्वयं के लिए जीवन जीना स्वीकार कर एक नई राह पर चलना स्वीकारती है।

'पत्थर गली' : कहानी संग्रह में 'पत्थर गली' नामक एक कहानी भी है जो सबसे चर्चित कहानियों में से एक है। इसकी पात्र फरीदा एक सशक्त नारी चारित्रर है जो पहले तो समाज की सडी–गली मान्यताओं में घुटती रहती है और फिर अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करती है परंतु स्वतंत्र व्यक्तित्व की इचछा उसे अंततः पागल खाने पहुचा देती है।

'ताबूत' : कहानी में नारी पात्र फहमिड, हुमेरा और सायरा तीनों बहनों को पिता का निठल्लापन, बेटा नहीं होना जैसी अर्थहिन संमस्याओं का सामना बिना कोई अपराध किए ही ताउम्र सजा भोगी पड़ती है।

'सिक्का' : कहानी आत्मकथात्मक शैली में लिखी कहानी है। सिक्का यहा इश्क का प्रतीक है। स्त्री के लिए इश्क सोने के खरे सिक्के के समान है जिसे अपने स्वार्थ हेतु भुनाना उसे नहीं आता किन्तु पुरुष के लिए यह सिक्का नफे नुकसान का सौदा है।

संगसार : इसमें शामिल कहानियां निम्न है : इसमें कुल अट्ठारह कहानियां संकलित है।

'संगसार' – संगसार शब्द का अर्थ है– 'पथराव करके किसी व्यक्ति को मार डालना एक सजा जो कड़े अपराधियों को दी जाती है। ईरान की पृष्ठभूमि की 1980–1992 के बीच की कहानियां है। इनके पात्र और स्थितियां विदेशी जमीन के बावजूद हमारे ही इर्द–गिर्द पनपी कहानियां लगती है। कहानी की नायिका आसिया विद्रोह तो करती है, परंतु पुरुष प्रधान संस्कृति की वह शिकार होती है।

'पहली रात' – कहानी नारी पर होने वाले अत्याचारों पर केंद्रित है।

'दर्वज–ए –कजवीन' कहानी नारी शोषण पर लिखी गई है।

'उड़ान की शर्त' कहानी नारी की धन लिप्सा पर लिखी कहानी है। संगसार इस संग्रह की प्रमुख

कहानियों में से एक है।

इब्ने मरियम :- इसमें संगृहित कहानियां द्वितीय महायुद्ध के बाद आतंकवाद से पीड़ित रास्तरों की त्रासदी से साक्षात्कार कराती है। इसमें तेरह कहानियां संग्रहीत ह। इसमें इब्ने मरियम कहानी अत्यंत हृदय विदारक है जिसमें नासिरा जी ने कूबर और सुगरा द्वारा परित्यक्त नारी की पीड़ा को तो दर्शाया ही है साथ ही भोपाल गैस कांड की त्रासदी का भी अप्रत्यक्ष चित्रण किया है।

तीसरा मोर्चा - कहानी में कश्मीर में हिन्दू–मुस्लिम दंगों की दर्दनाक चित्रण के साथ साथ नारी का संघर्ष भी चित्रित है।

'पाचवां बेटा' कहानी एक ऐसी बुढी मा की दर्द भरी कहानी है जो चार बेटों को जन्म देकर पाल–पोसकर उनको बड़ा करने को बाद आज वह उन जन्म देने वाले बेटों से सेवा नहीं करवा पाती है। जबकि एक अनाथ बच्चे को वह पालती है और वह सहारा बनता है उसे पाचवां बेटा कहा गया है।

'चार बहने शीशमहल की' - इस कहानी में नारी पात्र कारिमान अपने बेटे शरीफ के चार–चार बेटियों को जन्म लेने और बीटा नहीं होने पर मायूस है तो दूसरी तरफ ये कारों बेटियाँ अपने हुनर से ना सिर्फ अपने दादा पिता का बिजनेस आगे आती है वरन् पढ़–लिखकर अब्बू का बेटा बनकर उनकी दुकान को चार चाँद भी लगाती है।

सबीना के चालीस चोर-ततइया कहानी में नारी शोषण और नारी जीवन की व्यथा कही गई है। सबीना के चालीस चोर कहानी देश विभाजन पर आधृत बाल मनोवैज्ञानिक कहानी है।

शामी कागज : ये नासिरा शर्मा का तीसरा कहानी संग्रह है जिसमें सोलह कहानिया संगृहीत है। इनमें कुछ कहानियां नारी की पोल खोलने वाली कहानियां है तो कुछ कहानियां नारी की मानसिक पीड़ा को अभीव्यक्त करती है।

खुदा की वापसी - इन सभी कहानियों में मुस्लिम महिलाओं की समस्याओ का चित्रण है।

'दिलआरा' कहानी की मुख्य पात्र साजदा बेगम एक सुदृढ़ व्यक्तित्व वाली नारी के रूप में उभरी है। जो नारी को टूटने की बजाय जुड़ने का संदेश देती है। इस संग्रह की शीर्ष कहानी खुदा की वापसी है जिसमें नारी पात्र फरजाना के साहस का चित्रण किया है।

दूसरा ताज महल :- दूसरा ताज महल कहानी संग्रह में सात दीर्घ कहानिया संकलित है। ये सारी कहानिया नासिरा शर्मा की मौलिक अनुभूतियों से संबंध रखती हुई यथार्थ का चित्र प्रस्तुत करती है।

जैसे प्रकाश मनु इनकी कहानी 'इमाम धर्म' के लिए कहते है कि ' "इमाम धर्म पढकर द्रवित हुआ। इसमें धार्मिकता और उन्माद तो बाद रहा है लेकिन धर्म के प्रतीकों का किस कदर अवमूल्यन होता जा रहा है और इमाम की गरीबी के साथ क्या हो रहा है? समूचे हिन्दी साहित्य मे एसी कहानी केवल नासिरा जी ही लिख सकती है।"

नासिरा शर्मा ने बाल साहित्य में भी लेखन किया है। उनकी कुछ प्रमुख बाल साहित्य की रचनाएँ निम्न हैं :–

बाल उपन्यास - 'बदलू', 'दिल्लु दीमक', 'भूतों का मेकडोनल',।

बाल कहानियां - 'अपनी अपनी दुनिया', 'एक थी सुल्ताना' और 'सच्ची सहेली'।

बाल उपन्यासों का विवेचन :-

बदलू : कुईयाजान के बदलू उपन्यास को अलग से उठा कर नासिरा जी नए इसे बच्चों का उपन्यास बना दिया है ।

दिल्लु दीमक : यह बाल मनोविज्ञान पर आधारित उपन्यास है। खेल–खेल में इसमें बच्चों को शिक्षित करने की प्रक्रिया का उद्‌घाटन है।

भूतों का मेकडोनल : इस उपन्यास का विषय गंभीर होते हुए भी यह 'बदलू', और दिल्लु दीमक की अपेक्षा अधिक मनोरंजनकारी है।

संदर्भ सूची :-

1. नासिरा शर्मा, सात नदिया एक समंदर।
2. नासिरा शर्मा, शाल्मली।
3. नासिरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी, पृ. 60.
4. नासिरा शर्मा, जींदा मुहावरे, पृ. 51
5. नासिरा शर्मा, पारिजात, पृ. 136
6. नासिरा शर्मा, कुईयाजान, सामयिक पेपरबेक्स प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2017, पृ. 15
7. नासिरा शर्मा, अक्षयवट, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, संस्करण 2016, पृ. 8
8. नासिरा शर्मा, अक्षयवट, वाणी प्रकाशन, पेपर बैक, 2023
9. नासिरा शर्मा, पत्थर गली (दिल्ली : राज कामल प्रकाशन, 1986) पृ. 38
10. नासिरा शर्मा, संगसार (दिल्ली : प्रभात प्रकाशन, 1993), पृ. 20

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 179–182

लोक संस्कृति में राम

हर्षुल रघुवंशी, शोधार्थी
हिन्दी साहित्य, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल, म०प्र०
डॉ. वर्षा खुराना, शोध निर्देशक
विभागाध्यक्ष हिन्दी, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मुलताई, जिला बैतूल, म०प्र०

शोध सारांश :–

लोक संस्कृति में राम शोध के माध्यम से लोक में व्याप्त राम के विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन प्रयास किया गया है कि लोक में राम की व्याप्ति किन रूपों में हमें प्राप्त होती है। लोक संस्कृति किसे कहते हैं? शास्त्रीय एवं लोक राम के स्वरूप में अंतर लोक संस्कृति में भाषा का महत्व लोक संस्कृति में राम की व्याप्ति लोक संस्कारों में राम लोक धर्मिता के रूप में राम लोक जीवन में राम की प्रतिष्ठा लोक भावनाओं में राम भारतीय संस्कृति की आत्मा के रूप में राम भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि राम मानवीय कसौटियों में राम लोक मंगल के लिए राम समग्रता में राम।

लोक संस्कृति में राम :–

'लोक' और 'संस्कृति' में दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। लोक प्राकृतिक जीवन का सतत प्रवाह है। यही प्रकृति जब जीवन में अनुशासित हो जाती है तो उसे संस्कारों के निर्देशों में बांध दिया जाता है। तब यह संस्कृत बनकर जीवन के समस्त चिंतन विचार क्रियाकलाप का अंग बन जाता है। प्राकृतिक रूप से प्रवाहमान समाज की विकास व्यवस्था ही संस्कृति कहलाती है। भौतिकता की अंधी दौड़ के युग में भी राम जन मन के विश्राम हैं। राम जन–जन के आराध्य हैं। राम भारतीय जनमानस की धुरी हैं। हमारी संस्कृति के आधार हैं। कला, संगीत, साहित्य के प्रमुख प्रतिपाद्य हैं। कोई भाषा अथवा बोली नहीं है जो इनका गुण वर्णन न करती हो।

शास्त्रों में 'राम' शब्द कहते ही वाल्मीकि के राम तुलसी के राम का आध्यात्मिक रूप उभरकर सामने आता है। लेकिन लोक में जब 'राम' आते हैं तब वे जीवन–व्यापार का हिस्सा बन जाते हैं। कभी दुख में कही जाने वाली भाषा के साथ कभी खुशी में उजास भाव के साथ। दरअसल लोक के राम भाषा के माध्यम से लोगों की दिनचर्या का हिस्सा हैं। ये हिस्सा ऐसा भाग है जो लोकमानस के भीतर पानी की धार की तरह बह रहा है। यह हम सब जानते और मानते भी हैं कि भाषा संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

संस्कृति के मूल्यों को विश्वासों को परंपरा को और रीति–रिवाजों को अपने भीतर सँजो कर पीढ़ी–दर–पीढ़ी पहुंचाने का काम करती है भाषा। यह वह साधन है जिसके द्वारा संस्कृति पल्लवित होती है। अब भाषा भी कई स्तरों को अपने अंदर समाहित करके चलती है। भाषा के अंग के रूप में जहां शब्द होते हैं वहीं शब्दों का मर्म

और उन शब्दों को जीवित करने की जिम्मेदारी अर्थ की होती है। शब्द गढ़े जाते हैं संबंधित समाज द्वारा और उसमें अर्थ भरता है लोक। लोक मानस में जो कथा चरित्र जिस रूप में बैठ जाता है शब्दों के अर्थ उसमें उसी तरह से भरने का काम करते हैं। यहाँ हम बात कर रहे हैं शब्द 'राम' की। राम लोक मानस में तो हैं ही साथ ही लोक–व्यवहार का एक अभिन्न हिस्सा भी हैं। बात जब लोक व्यवहार की हो रही है तब जाहिर सी बात है यह बात लोक व्यवहार की भाषा की हो रही है। भाषा में 'राम' शब्द की उपस्थिति कहाँ– कहाँ है इसको देखा जा सकता है। लोक मानस शास्त्र के नियम से बिलकुल अलग है।

लोक जगत में शब्दों के नये अर्थ गढ़े जाते हैं। और शब्दों के अर्थ का विस्तारीकरण भी किया जाता है। कई बार विस्तार यहाँ तक हो जाता है कि पारंपरिक लोकाचार–व्यवहार में शब्द रच–बस जाते हैं। लोक के 'राम' की बात करें तो यहाँ के राम भगवान के रूप से भी आगे उनके जीवन–मरण का व यहाँ शिशु को राम ही माना जा रहा है। गीतों की भाषा में एक संसार है जहाँ जनम देने वाली माँ कौशल्या मानी जा रहीं हैं और शिशु तो राम है ही। अब जीवन चक्र में थोड़ा आगे आते हैं। यानि उपनयन संस्कार में। यहाँ फिर से राम उस बालक के साथ समाहित हो जाते हैं।

राम बरवा गोदिया लेले/जेकर जनेववा होवे।

इस तरह विवाह के गीतों की भाषा में भी दूल्हे में राम को देखा जाता हैं। जैसे– मिथिला के गीतों में हर दामाद राम का स्वरूप है। उसे राम कह कर ही संबोधित किया जा रहा है। एक बानगी देखिये –

'बता द बबुआ लोगवा देत काहे गारी।
एक भाई गोर काहे एक काहे कारी।।'

संस्कारों–रिवाजों से इतर हर दिन की भाषा संसार में भी राम उपस्थित हैं। जैसे अभिवादन में राम–राम/जय रामजी की। आगे देखें जीवन–दर्शन की बात होती है तब कहा जाता है– राम जी की माया कहीं धूप कहीं छाया। त्योहारों में भी भाषायी आरोपण के जरिये होली खेले रघुवीर..... खेतों में लगी फसल को जब पक्षी खाये तो उसमें भी 'रामजी की चिरई' यानि ये चिड़ियाँ राम जी की है। हर संज्ञा के साथ विशेषण के रूप में भी राम हैं। एक और उदाहरण– पहले जब खास कर ग्रामीण इलाकों में जब कोई गिनती कर सामान देना होता था तब रामे एक/रामे दो.... करके सामान को गिना जाता था।

निश्चित रूप से 'राम' लोकजीवन में लोकधर्मिता के रूप में अधिक उपस्थित हैं। कहने का आशय है कि राम शब्द लोकजीवन लोकभाषा का हिस्सा हैं। लोक की व्यंजनात्मक भाषा यानि लोकोक्तियों में तो राम शब्द की जैसे भरमार है। मुंह में राम बगल में छुरी/राम–राम जपना पराया माल अपना/जिनके राम धनी उनके कोई न कमी/राम भरोसे आदि–आदि। कुल मिला कर देखा जाए तो भाषा में राम शब्द बहुलता के साथ अपनी धाक जमाये हुए हैं। राम शब्द को हटा कर अगर भाषा के लोक–व्यवहार की बात की जाए तो शायद तियांश यानि पूरे अंश का तीसरा भाग ही बचा रह जाएगा।

लोकजीवन में राम को अद्भुत प्रतिष्ठा प्राप्त है। शास्त्रीय दृष्टि से जनजातीय जीवन और लोकजीवन को भिन्न माना जा सकता है लेकिन मैं इन दोनों को अविभाज्य मानता हूँ। इसलिए कि भारतीय परिवेश में जो लोक है वह इतना समर्थ है कि जातीयता उसमें घुल–मिल गई है। दोनों अविछिन्न हो गये हैं। इसलिए भी कि राम को खण्डित स्वरूप में देखा ही नहीं जा सकता। वे राजा अवश्य हैं लेकिन हैं सच्चे जनजातीय प्रतिनिधि

अथवा लोकनायक जिनकी मर्यादा हमारी संस्कृति और संस्कारों की अनुशासन रेखा को खींचती है। राम चित्रकूट में जिन कोलों और भीलों के बीच रहते हैं और वे उनकी जिस तरह सेवा करते हैं उन्हें देखकर जिस तरह हर्षित होते हैं वह यह सिद्ध करता है कि राम अयोध्या के राजा नहीं बल्कि वहाँ के नागरिकों के नायक हैं।

राम जब उनके बीच जाते हैं तो उन्हें लगता है कि नवनिधियाँ उनके घर पर आ गई हैं। वे कन्द मूल और फल भर–भरकर उनके पास चले आते हैं। यह भेंट उनके आगे रखकर वे उन्हें जोहार करते हैं और लिखे हुए चित्र की तरह खड़े–के–खड़े रह जाते हैं। उनकी आँखों से आँसुओं की एक नहीं अनेक मन्दाकिनी बहने लगती हैं। वे राम लक्ष्मण और सीता से कहते हैं कि आप यहाँ सभी ऋतुओं में सुखपूर्वक रहें हम सब प्रकार के जंगली जानवरों से बचाकर आपकी सेवा करेंगे तथा सरोवरों को झरनों को आपको दिखाएँगे। मानस में यही सब कहते हुए तुलसी ने लिखा है–

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई। हरषे जनु नव निधि घर आई।
कंद मूल फल भरिभरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना।।
तिन्ह महँ जिन्ह देखे दोउ भ्राता। अपर तिन्हहि पूँछहिं मगु जाता।
कहत सुनत रघुबीर निकाई। आइ सबन्हि देखे रघुराई।।
करहिं जोहारू भेंट धरि आगे। प्रभुहि बिलोकहिं अति अनुरागे।
चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े। पुलक सरीर नयन जल बाढ़े।।

राम को यदि भारतीय संस्कृति के रचयिता के रूप में प्रतिष्ठा दी जाये तो यह सर्वथा भारतीय संस्कृति के स्वरूप और उसकी आत्मा का परिचायक होगा। भारतीय संस्कृति समन्वय की संस्कृति है। संस्कृति वास्तव में हमारे संस्कारों का अन्दर से आलोकमान हो उठना है। वह हमारे संस्कारों की विकसित अवस्था है।

राम भारतीय संस्कृति के उन मूल्यों के प्रतिनिधि हैं जिन मूल्यों ने भारत के जनमानस की मानसिकता और आचार दोनों को रचा है। वे मर्यादा पुरुषोत्तम कहे जाते हैं अर्थात् मनुष्य के गुणों की मर्यादा का अपने कृतित्व में अनुपालन करने वाले सर्वश्रेष्ठ व्यक्तित्व। राम के चरित्र में ये गुण अपनी पूरी उत्कृष्टता के साथ अभिव्यक्त हुए हैं– एक पुत्र के रूप में भाई के रूप में पति के रूप में पिता के रूप में शिष्य के रूप में और अयोध्या के राजा के रूप में। फिर इन सब भूमिकाओं में आदर्श भूमिका क्या होनी चाहिए इसका निर्वाह उनके चरित्र में है। यह भी है कि इन भूमिकाओं के निर्वाह में ऐसी कौन–सी मानवीय दुर्बलताएँ हैं जो आड़े आ सकती हैं लेकिन उन पर कैसे विजय पाई जा सकती है। राम यहाँ ईश्वर नहीं हैं मानव हैं।

इसलिए मनुष्यता क्या होती है इसे उन्हें परिभाषित करना होता है और यही परिभाषा भारतीय संस्कृति की परिभाषा है। वे दुर्बल भी होते हैं और विकल भी होते हैं। माता सीता के अपहृत होने के बाद वे इतने विकल हो जाते हैं कि उन्हें लगता है कि सीता के जीवन के बिना उनका जीवन निरर्थक है। सीता को खोजते उन्हें रास्ते में किसी योद्धा का जब टूटा हुआ धनुष दिखाई देता है तो वे क्रोधित हो उठते हैं देवताओं पर क्रोध करते हैं। कहते हैं कि मैं अपने बाणों की मार से तीनों लोकों की मर्यादा को नष्ट कर दूँगा। यह वाल्मीकि की कथा है और तुलसी के राम पेड़ों से पक्षियों से पशुओं से पूछते हैं :–

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी तुम देखी सीता मृगनयनी।

राम की यह विकलता उन्हें मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित करती है। वे मनुष्य के उस व्यावहारिक मूल्य

को स्थापित करते हैं जिसके कारण मनुष्य की पहचान बनती है। राम और सीता का प्रेम अद्‌भुत है। यही समर्पण से भरपूर प्रेम हमारी संस्कृति का ऐसा मूल्य है जो आज भी पति और पत्नी को एकात्म रखता है। भवभूति कहते हैं कि राम की सीता के प्रति प्रीति उनके बाह्य और आन्तरिक तथा व्यक्त और अव्यक्त दोनों प्रकार के गुणों के कारण निरन्तर बढ़ती जाती है और रामचरित मानस के सुन्दरकाण्ड में तुलसी कहते हैं :–

तत्व प्रेम कर मम अरू तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा।
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं।।

राम के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है उसका लोकोन्मुख होना। पूरा रामचरित्र लोकमंगल का आख्यान करता है। राम की पूरी जीवन–यात्रा का एक ही उद्देश्य था लोकमंगल के लिए एक आदर्श प्रतिमान खड़ा करना। राम के चरित्र के अनेक पहलू हैं लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू है अपने निजस्व का विसर्जन। अग्निपरीक्षा से निकली माता सीता का भी लोकोपवाद के कारण वे परित्याग कर देते हैं। राम की अपनी निजता तो कुछ है ही नहीं जो कुछ भी है वह लोक का है लोक के लिए है।

निष्कर्ष :–

राम समग्रता के मानक हैं। निजस्व का यही विसर्जन और समग्र में समूचे लोक को समेट लेने की आकांक्षा भारतीय संस्कृति के वे मानक मूल्य हैं जिन्हें राम ने अपने कृतित्व के माध्यम से रोपा। राम अन्तर्दृष्टि के प्रतिनिधि हैं वे अपनी अन्तर्दृष्टि से विश्व को देखते हैं तुलसी के राम समग्रता के राम हैं। वे लोक के लिए समर्पित और प्रतिबद्ध हैं और इतने प्रतिबद्ध कि सीता के लिए अग्निपरीक्षा को वे अवश्यम्भावी बना देते हैं उस सीता के लिए जो उन्हीं पर आश्रित है। तुलसी के राम हमारे युगों–युगों से आदर्श रहे हैं अनुकरणीय रहे हैं और आज भी वे हमारे जीवन में इतने घुले–मिले हैं कि बिना राम के हम अपने अस्तित्व की कल्पना तक नहीं कर सकते। राम हमारे जीवन का रस भी हैं और राग भी और इसीलिए वे हमारे अस्तित्व की आत्मा हैं हमारे जीवन का गीत हैं और संगीत भी।

यह लोक संस्कृति में राम की एक संक्षिप्त झाँकी है। ऐसे राम की जो हमारे लोक–जीवन में समाये हैं संस्कृति कला और साहित्य में ऐसे समाविष्ट हैं कि इन अनुशासनों की पहचान उनके बिना नहीं हो सकती।

संदर्भ :–

1. श्रीरामचरितमानस (अयोध्याकाण्ड) प्रकाशक– गीताप्रेस गोरखपुर, पृष्ठ संख्या–236
2. श्रीरामचरितमानस (अरण्यकाण्ड) प्रकाशक– गीताप्रेस गोरखपुर, पृष्ठ संख्या–340
3. श्रीरामचरितमानस (सुंदरकाण्ड) प्रकाशक– गीताप्रेस गोरखपुर, पृष्ठ संख्या–376

संपर्क सूत्र– 6267733011

Email – harsul72@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 183–186

The Swadeshi Movement's Pioneering Spirit Before Gandhi's Era

Abhijna
Assistant Professor, Department of History,
Sri Dharmasthala Manjunatheshwara College (Autonomous), Ujire.

Abstracts :

Swadeshi movement was one of the major movement made by Indians against the imperial Britih rule. The term became much popular during the early twentith century. But there was a great foundatin for it. Swami Vivekananda, Swami Dayananda Saraswathi, JRD Tata, Krishnaraja Wodeyar IV, Gayakwad of Baroda, Swami Athmaram Panduranga, Bal Gangadhar Thilak, Gandhi and many others played a signifiant role in the Swadeshi movement. It questined the fundamental plannings of the colonialism. Here it's a study on Swadeshi movements of Pre Gandhian Era.

Key Words - Swadeshi, Natinal educatin, Boycott Spread, Taxatin, Britih rule.

Introductin :

England witnessed the in industrial revolutin. They established many large scale industries. Many people who were engaging in the agricultural actiitis joined industries who suffred much from the feudal setups. They became industrial workers. Generatin passed. They lost their knowledge in the fild of agriculture.

Industries became their only chouse. So the country witnessed the shortage of row materials to the industries. During the later days they also witnessed the scarcity of food grains also. In the other hand they had huge industries and much capable machinery. They produced much industrial products. But they had no markets. They wanted to sell their industrial products for higher price and wanted to get row material and the food grains for the cheaper price.

They colonized many parts of the world to fulfil these needs. But the country India was self suffient and also the Indian commoditis were too costly to buy during those days. Because it had huge demand all over the world.

Other countries were also not ready to do trade with Britihers in this way. This need made

them to colonize the parts of the world. They entered Indian politis step by step gradually. They started one sided free trade here, which made a great profi to their country. Indian Industries were closed by them forcefully.

And among the Europeans Britihers achieved monopoly in Indian trade successfully. Indians were also not became able to produce Industrial commoditis because of the taxatin policy and some other actins of the Britihers.

For Example According to Britih records Muslin cloth was much popular all over the world. Britihers forcefully cut the thumb of the weavers of this cloth and by this they stopped the productin of Muslin cloth. Finally Britihers increased the selling of their cloth by this. It became the major reason for the loot of Indian wealth. Dadabayi Navroji mentined about it in the book "Poverty and un-Britih rule in India" very clearly.

So the intellectuals of our country opposed this and strongly started "Swadeshi movement". The movement supported to produce Indian made commoditis and supported to use these commoditis if it is costlier also.

Once upon a tie Swami Vivekananda meet JRD Tata accidentally during his journey. He JRD Tata got much motiatin from Swami Vivekananda to start an Indian Industry. He started Steel industry later, which became practial by the motiatinal address given by patrioti saint Swami Vivekananda. "Industrialize or Perish" was the popular saying of Swami Vivekananda. Swami Dayananda Saraswathi's book Sathyartha Prakasha also explained about Swadeshi movement indirectly.

Dadabai Navroji writtn the book "Poverty and un-Britih rule in India" in 1902. In this book he writtn "Drain of Wealth" theory. In this he explained how much wealth was luted by the Britihers every year.

Role of Bal Gangadhar Thilak :

Bal Gangadhar Thilak was the major extremist leader who changed the complete path of the freedom movement of Indian freedom struggle. Swaraj, Swadeshi, boycot and natinal educatin were his main four principles which are popularly known as "Chathurashra Soothras". Swadeshi is one among them. His actiism helped galvanize the Swadeshi movement.

He supported Indian Industries more. Many natinalist leaders started cottge industries based on his guidance. He helped to provide market for Indian producers. Many Khadi sellers were emerged because of him. Khadi cloth became much popular during the tie which shows the great effrts of Bal Gangadhar Thilak.

The concept of boycot also directly related to Swadeshi movement. They not only stopped to buy Britih products. Along with this they started to burn the Britih goods, Some natinalists started to

burn Britih shops and godowns as a part of it.

The concept of Natinal Educatin is also associated with the Swadeshi movement. Here he supported Indianize the educatinal concept. Or we can tell "Swadeshi in the fild of educatin". Under this many natinal schools were established. Many freedom fihters started to teach free of cost and for less salary. Indians started to know the greatness of our country. It helped to Indianize India in the future.

Mass people came to know about the actins of the Britihers. By this the entie freedom struggle changed its path. Britihers started to bother on the actins of there people under the leadership of Bal Gangadhar Thilak.

Lala Lajpath Roy and Bipin Chandra Pal :

These two extremist leaders of Indian freedom struggle supported Bal Gangadhar Thilak in the Swadeshi movement and played a crucial role. They encouraged Indians to boycot Britih goods and promote Indigenes products. Natinalist journal Bande Matharam was started by Pal. In Bengal, Assam, Uttr Pradesh and in Madras Pal spread the extremist movement.

Rai supported Natinal educatin much. He established a natinal college at Lahore and he spread Swadeshi movement in Lahore "The story of My Deportatin" "Unhappy India", "England's debt to India" were his popular works.

Role of Rabindranath Tagore :

Rabindranath Tagore played a signifiant role in the Swadeshi movement. He focused on rural reconstructin, educatin and economic development. He established rural reconstructin departments at Surul and in Bhirbhum. Indian agriculture was supported here along with industries. He supported Indian industries like Godraj soaps. Indian Educatin was supported by him. His Anand Mat was a very popular aftr independence also.

Role of Krishnaraja Wodeyar IV and Sir M. Vishweshwarayya :

Krishnaraja Wodeyar IV and Sir M Vishveshwarayya were not partiipated in the Indian freedom struggle. Wideyar was a natie Indian ruler who signed subsidiary alliance already. And Vishwshwarayya was his Diwan. Their intentin was to modernize Mysore by industrialize it, which indirectly supported Swadeshi movement in the fild of Industrializatin. They established many industries like textie, Mysore Sandal Soap and oil, Metalwork, Infrastructure etc. which supported modernize Mysore state.

Apart from these people we can see the role of lakhs of common people who came out from their western educatinal instiutins, Schools and colleges, Army, Britih jobs and so on. Many rich people started to run natinal schools and started to give free natinal educatin to the people. Many natinal industries emerged. Common people also started to run cottge industries with the support of

natinalists. Some natinalist leaders fiancially supported these people. It became a widespread.

Conclusions :

The major intentin of the Britihers was the economic profi. They made India as the dumping yard of Britih commoditis. And also India fulfiled all their agricultural needs. So the Swadeshi movement completely questined the Britih rule. During the later days Gandhi contiued it in his own way.

References :

1. Chandra B (1983) "The Indian Struggle 1885-1947", Penguin
2. Sarkar S. (1973), "The Swadeshi movement of Bengal 1903-1908", People's publishing house.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 187-191

रवीन्द्रनाथ टैगोर का शैक्षणिक दर्शन और उसकी वर्तमान प्रासंगिकता

आरती यादव
शोध छात्रा, शिक्षक शिक्षा विभाग,
नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

सारांश :-

रवीन्द्र नाथ टैगोर के अनुसार शिक्षा की धारणा शरीर तथा आत्मा से है जो प्रकृति की गोद में स्वस्थ एवं प्रसन्नचित होकर विकास करता है। गुरुदेव के अनुसार शिक्षा मात्र पुस्तकों को रख लेना ही नहीं है अपितु जीवन का समस्त सृष्टि से सामंजस्य स्थापित करना है। टैगोर के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य केवल जानकारी देना नहीं, बल्कि व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, रचनात्मक और आध्यात्मिक विकास को सुनिश्चित करना है। शिक्षा की सतत् प्रक्रिया को विकास के रूप में देखा जाता है। शिक्षा द्वारा जब व्यक्ति का अज्ञान नष्ट हो जाता है तभी उसका व्यक्तित्व अत्यन्त विशाल व दृष्टिकोण व्यापक होता है। शिक्षा का उद्देश्य केवल नौकरी प्राप्त करना ही नहीं होना चाहिये बल्कि शिक्षा द्वारा बालक को इतना योग्य बना दिया जाए कि वह विद्यालयी शिक्षा पूर्ण करने के उपरान्त अपने पैरों पर खड़ा हो सके। उनके अनुसार मनुष्य को शिक्षा द्वारा उस ज्ञान का संग्रहण करना चाहिये जो उसके पूर्वजों द्वारा संचित किया जा चुका है, वही सच्ची शिक्षा है।' वर्तमान समय में जब शिक्षा प्रणाली कई समस्याओं से जूझ रही है मानसिक तनाव, बेरोजगारी, नैतिक मूल्यों का ह्रास, तब गुरुदेव का शैक्षणिक दर्शन अत्यंत प्रासंगिक बन गया है। वर्तमान समय की शिक्षा संबंधी समस्याओं को देखते हुए टैगोर के शैक्षिक विचारों में यह देखने का प्रयास किया गया है कि इनके विचार कहा तक वर्तमान शिक्षा की समस्याओं को दूर करने में सहायक है।

मुख्य शब्द :- शिक्षा, साहित्य, नैतिक मूल्य, भावनात्मक विकास, सामाजिक विकास, आदि।

परिचय :-

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उनकी सर्वाधिक ख्याति साहित्य के क्षेत्र में थी। संस्कृत साहित्य में जो स्थान कालिदास का है वही स्थान बंगला साहित्य में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर का है। देश में समाज सुधार, राष्ट्रीय जागरण, अन्तर्राष्ट्रीय भावना के विकास के लिये जो कार्य गुरुदेव ने किये हम सदैव उनके आभारी होंगे। टैगोर की ख्याति एक यशस्वी साहित्यकार के ही नाते अधिक है, किन्तु उनके जीवन और

कृतित्य का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि टैगोर शिक्षाशास्त्री भी थे और इसका प्रत्यक्ष प्रमाण उनके द्वारा संस्थापित उनका विश्वभारती शान्ति निकेतन है। जिस व्यक्ति का जैसा दर्शन, परिस्थिति, काल व समय होता है वैसा ही उसके शिक्षा सम्बन्धी विचार होते हैं। विश्व भारती संस्था की स्थापना इस बात की ओर संकेत करती है कि गुरुदेव ने अपने समय की परिस्थितियों से ऊबकर ही विश्वभारती की स्थापना की थी। शान्ति निकेतन की स्थापना आधुनिक युग में बिल्कुल मौलिक ढंग की है। उसके आयोजन में जैसा विचार है, जैसा आदर्श है, जैसा चिन्तन है, वैसा टैगोर का मर्मज्ञ भारत देश की परिस्थितियाँ, आवश्यकताओं और परम्पराओं का ज्ञाता ही कर सकता है। गुरुदेव अपने देश के एक महान शिक्षाशास्त्री थे क्योंकि वे अपने समय में शिक्षा के सम्बन्ध में काफी विचार किये हैं और जो भी उच्च विचार शिक्षा के सम्बन्ध में आया है उसको लेखनी बद्ध भी किया है जैसा कि उनके शिक्षा सम्बन्धी रचनाओं से ज्ञात होता है। उन्होंने शिक्षा सम्बन्धी सभी पहलुओं पर विचार किया है। अपने विचारों को उन्होंने विश्वभारती के रूप में एक ठोस और व्यावहारिक रूप दिया, यह उनके शिक्षाशास्त्री होने का सबसे बड़ा और अनोखा प्रमाण है। शिक्षाशास्त्री के विषय में भी उन्होंने काफी चर्चा की है और इस चर्चा में उनके दार्शनिक विचारों की पूरी छाप मिलती है। टैगोर ने शिक्षा का अर्थ अत्यन्त व्यापक रूप में लिया है। उनका मत है कि शिक्षा व्यक्ति के शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक विकास में सहायक होती है। उन्होंने अपने विचार भारत तथा विदेशों के शिक्षाशास्त्रियों से प्रभावित दिखाई पड़ते है। उनके लिए फ्रावेल की 'मनुष्य की शिक्षा स्पेन्सर की 'शिक्षा' या रूसों की 'एमील' की शिक्षा जैसे रूप व्यस्थित नहीं है फिर भी उनके जीवन काल में था और आज भी है जिनका आधार मानकर विश्वभारती, शान्ति निकेतन में शिक्षा का आदान–प्रदान हो रहा है।

टैगोर के शिक्षा दर्शन के सिद्धांत इस प्रकार है– बालक की शिक्षा उसकी मातृ भाषा के माध्यम से होनी चाहिए। शिक्षा प्राप्त करते समय बालक को स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। बालक की रचनात्मक प्रवृत्तियों के विकास के लिए आत्म प्रकाशन का अवसर दिया जाना चाहिए। बालक की शिक्षा नगरो से दूर प्रकृति की गोद में होनी चाहिए। शिक्षा द्वारा बालक की समस्त शक्तियों का सामंजस्य पूर्ण विकास होनी चाहिए। बालक को प्रकृति वातावरण में स्वतंत्रता पूर्वक स्वयं करके सीखने का अवसर मिलना चाहिए।

शिक्षा का अभिप्राय :-

'शिक्षा वह है जो हमारे जीवन के सभी आस्तित्वों के साथ सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध बनती है।' सभी जीवों और वस्तुओं के साथ सामंजस्य एवं समरसता तभी सम्भव हो सकती है जब व्यक्ति की समस्त शक्तियों पूर्ण रूप से विकसित हो जाए। इस स्थिति को ही टैगोर ने पूर्ण मनुष्यत्व का विकास करती है। पूर्ण मनुष्यत्व के अन्तर्गत सभी प्रकार की क्षमताओं का विकास आ जाता है। इसलिए उन्होंने सबसे पहले शरीर के विभिन्न मार्गों तथा सभी इन्द्रियों के प्रशिक्षण पर जोर दिया जिससे मनुष्य वास्तविक जीवन परिस्थितियों में ज्ञान प्राप्त करता है और ज्ञान का संचय करता है एवं उसका आत्मीकरण एवं प्रयोग भी करता है। टैगोर का कहना है 'हम ज्ञान एकत्र करते है। जैसे कि अनाज–घर में साधन इकट्ठा करते हैं, न कि जैसे शरीर भोजन को आत्मसात करता है। सच्ची शिक्षा संग्रहीत सामग्री के सही प्रयोग में, उसकी वास्तविक प्रकृति को जानने में और उसे जीवन के साथ एक वास्तविक

जीवन रक्षा के रूप में निर्माण करने में होती है। इस सम्बन्ध में टैगोर में प्राचीन भारतीय आदर्श को भी लिया है जिसमें 'सा विधा या विमुक्तिये' है। शिक्षा का अर्थ केवल आध्यात्मिक ज्ञान से नहीं है, न कि मुक्ति का अर्थ मृत्यु के बाद मुक्ति से है। ज्ञान के अन्तर्गत मानव जाति के हित के लिये काम आने वाले सभी ज्ञान और प्रशिक्षण है तथा मुक्ति का अर्थ वर्तमान जीवन में सभी प्रकार की दासता से मुक्ति है। ऐसी दासता, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं मानसिक हो सकती है, इनसे मुक्ति ही वास्तविक शिक्षा है। अतः व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन को विकसित करना शिक्षा है, यह वह साधन है जिसके द्वारा पूर्ण मानव के रूप में व्यक्ति विकसित होता है, जिसके द्वारा व्यक्ति प्राणी मात्र से प्रेम करना सीखता है और विश्व बन्धुत्व स्थापित करता है।

टैगोर शिक्षा को विकास की क्रिया मानते हैं। शिक्षा को विकास का एक उपक्रम भी मानते हैं जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति की निजी एवं सामाजिक सभी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। उसकी आवश्यकतायें प्रायः शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक, आर्थिक एवं व्यावसायिक तथा अन्त में धार्मिक और आध्यात्मिक है। इस विचार में शिक्षा अत्यन्त व्यापक है। इसके अन्तर्गत कुछ विशेषतायें होनी चाहिए जैसे यह कृत्रिम वातावरण एवं परिस्थिति से दूर साधारण एवं यथार्थ ढंग से हो। टैगोर ने यह भी कहा कि जीवन में जो भी साहसपूर्ण कदम उठाये जाते हैं शिक्षा उसका स्थायी है। मृत प्रवृत्तियों के उपचार का औषधालय नहीं है। टैगोर विद्यालयों को कोई कारखाना नहीं समझते थे. जहाँ विद्यार्थी निर्धारित सूचनायें देकर निकाले जाते हो किन्तु शिक्षा का अभिप्राय सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास से था। शिक्षा और जीवन एक व्यवधान के कारण पृथक रहने पर बाध्य है। हमारी शिक्षा उस स्थान पर वर्षा होने समान है जो कि हमारे मार्ग से दूर है। पृथ्वी के दरार से सीखी हुई पानी सी हमारी प्यास बुझाने के लिये पर्याप्त सी है। यद्यपि शिक्षा के उद्देश्यों को पृथक रूप से किसी भी स्थान पर चर्चा नहीं की है और न कोई ऐसा ग्रन्थ ही प्रस्तुत किया है जैसा कि रूत्तो ने एमिल और स्पेन्सर के शिक्षा नामक पुस्तक को लिख कर अपने शिक्षा सम्बन्धी उद्देश्यों को प्रस्तुत किया है। फिर भी जो विचार उन्होंने समय–समय पर प्रस्तुत किये हैं उनसे उनके शिक्षा सम्बन्धी उद्देश्यों को जान सकते है।

कभी–कभी उन उद्देश्यों की ओर भी देख सकते है जिन्हें लेकर विश्वभारती की स्थापना की गयी है। उनके विचारों एवं भावनाओं तथा लेखों को देखने से ज्ञात होता है कि वे उन्होंने व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास पर जोर दिया है और समाज तथा व्यक्ति के हर पहलुओं को देखते हुए उन्होंने उद्देश्यों को निश्चित किया है। सामान्यतः शिक्षा के निम्न उद्देश्यों पर टैगोर के लेखों एवं रचनाओं के माध्यम से जान सकते है। शारीरिक विकास–टैगोर का मत था कि शिक्षा का सर्वप्रथम उद्देश्य बालक का विकास है। सबसे पहले प्रत्येक बालक का शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा होना चाहिए और खेद प्रकट कर दिया था कि 'पर्याप्त खेल और व्यायाम तथा आवश्यक भोजन के न होने से बालक का शरीर अपोषित रहता है और उसका मस्तिष्क अविकसित रहता है। इसलिए उन्होंने प्रकृति की गोद में खेलने–कूदने, तालाब में नहाने, फूल चुनने, पेड़ पर चढ़ने तथा इन क्रियाओं में आनन्द प्राप्त करने के लिए बच्चों को स्वतन्त्र अवसर देने के लिए कहा है। साथ–साथ उन्हें उचित भोजन भी दिया जावे, अपने शरीर के अंगों को विभिन्न वस्तुओं में प्राकृतिक दशाओं में तथा विभिन्न परिस्थितियों में प्रयोग करने की क्षमता प्रदान करनी चाहिए। टैगोर किताबी शिक्षा से शारीरिक विकास को अधिक महत्व प्रदान करते हैं।

बैद्धिक विकास :-

टैगोर के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य शारीरिक विकास के साथ–साथ बालक का बौद्धिक विकास होना साहिए। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में ही टैगोर ने यह संकेत किया था। प्रचलित शिक्षा प्रणाली में केवल परीक्षा पास करने की संकुचित उद्देश्य होता है जिससे कुछ पुस्तकीय ज्ञान को रट–रटाकर काम चलाया जाता है। बौद्धिक विकास के अन्तर्गत टैगोर ने कहा है कि स्वतन्त्र प्रयासों से विचारों को प्राप्त करने की शक्ति, उन विचारों की उचित आलोचना करने की शक्ति, तथा उन्हें उचित ढंग से आत्मसात् करने की शक्ति का विकास आता है। विचार, चिन्तन, तर्क कल्पना, बुद्धि आदि मानसिक शक्ति को व्यवहार में लाने की क्षमता भी बालक को देना चाहिए तभी उसका मानसिक विकास सही ढंग से होता है। इससे बालक प्रकृति और जीवन की शक्तियों में सामंजस्य स्थापित कर सकता है। टैगोर ने कहा है कि पुस्तकों से सहायता प्राप्त करना मानसिक विकास प्रकृति एवं जीवन की वास्तविक परिस्थितियों से प्रत्यक्ष रूप से ज्ञान प्राप्त करना हो सकता है। टैगोर के अनुसार 'पुस्तकों के बजाय प्रत्यक्ष रूप से जीवित व्यक्तियों को जानने का प्रयास करना होता है बल्कि इससे जानने की शक्ति का मस्तिष्क संवेगों और कल्पना की वास्तविकता से पृथक कर दिये जाते हैं तो वे निर्मल तथा विकृत हो जाते हैं। बौद्धिक विकास से ही परीक्षा के बोझ से लदी हई शिक्षा न तो देश का उद्धार कर सकती है और न उचित मस्तिष्क का निर्माण। इसलिए सभी शक्तियों दूसरे के विचारों को बालक ग्रहण करता है और अपने विचारों को दूसरों को देने की क्षमता प्राप्त करता है। उन्होंने यह अनुभव किया का विकास होना चाहिए ताकि बालक केवल पुस्तकीय ज्ञान का रटना छोडकर तर्क करना विचार विमर्श करना तथा कल्पना करना सीख ले जिससे वह आधुनिक वैज्ञानिक विकास को सही रूप समझ सके।

टैगोर का कहना था कि 'बौद्धिक क्षमता विभिन्न मानसिक शक्तियों के शक्तिशाली संगठन का प्रतिफल में बदल दिया जाता है।' इन विचारों से स्पष्ट है कि टैगोर व्यक्तिगत एवं समाजगत विकास के उद्देश्यों का समन्वय चाहते हैं। टैगोर ने लिखा है मनुष्य के दो पहलू हैं एक ओर वह अकेला है और स्वतन्त्र है. दूसरी ओर वह सभी से सम्बन्धित है। किसी एक पहल को त्यागना अवास्ततिक होगा। मनुष्य की अभिलाषा होती है कि वह पूर्णता की ओर अग्रसर हो इसके दो पहलू है जो परस्पर सम्बन्धित है। एक व्यक्तिगत पूर्णता है और दूसरी सामाजिक पूर्णता है। अतः स्पष्ट है कि व्यक्तिगत विकास का महत्व केवल समाजगत विकास के प्रकरण में पूर्ण रूप से जाना जा सकता है। इसलिए मनुष्य के सामाजिक सम्बन्धों और सामाजिक जीवन को बढ़ा महत्व प्रदान करते हैं। इसलिए चाहते हैं कि बालक सामाजिक जीवन में रहकर अपना विकास करें।

निष्कर्ष :-

रवीन्द्रनाथ टैगोर का शैक्षणिक दर्शन प्रकृति, स्वतंत्रता और रचनात्मकता पर आधारित है। यह आज भी बच्चों के समग्र विकास, मानवीय मूल्यों और नवाचार को बढ़ावा देने में प्रासंगिक है। आधुनिक शिक्षा में उनकी विचारधारा भावनात्मक संतुलन और नैतिक चेतना को पुनर्स्थापित करने में सहायक है। टैगोर का शैक्षणिक दर्शन आज के संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक है। उन्होंने जिस शिक्षा प्रणाली की कल्पना की थी, वह केवल ज्ञान–आधारित नहीं, बल्कि मूल्य–आधारित, प्रकृति–समन्वित और रचनात्मकता से युक्त थी। आज जब हम मानसिक तनाव,

बेरोजगारी, शिक्षा की व्यवसायीकरण और नैतिक पतन जैसी समस्याओं से जूझ रहे हैं, टैगोर की शिक्षण अवधारणाएँ हमें एक वैकल्पिक, मानवीय और संतुलित शिक्षा प्रणाली की दिशा में ले जाती हैं। मन और आत्मा की स्वतंत्रता, आत्म–साक्षात्कार, और सद्भाव के साथ रहना टैगोर की शिक्षा के मुख्य स्तंभ हैं जिसमें प्रत्येक शिक्षार्थी अद्वितीय है और कुछ अद्वितीय गुण रखता है, इस अद्वितीय गुणों के माध्यम से व्यक्ति जीवन की बाधाओं को दूर कर सकता है और जीवन में सफलता प्राप्त कर सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. रवि सिंह और सोहन सिंह रावत। 'रवींद्र नाथ टैगोर का शिक्षा में योगदान', वीएसआरडी इंटरनेशनल जर्नल ऑफ टेक्निकल एंड नॉन–टेक्निकल रिसर्च। (2013)।
2. अहमद शाह, एचएस 'टैगोर एंड हिज कंट्रीब्यूशन इन द फील्ड ऑफ एजुकेशन', इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस्ड मल्टीडिसिप्लिनरी साइंटिफिक रिसर्च, (2015)।
3. तीरथ, आर. 'समकालीन भारतीय शिक्षा में रवींद्रनाथ टैगोर शिक्षा दर्शन की भूमिका और प्रभाव', इंटरनेशनल जर्नल ऑफ बिजनेस एडमिनिस्ट्रेशन एंड मैनेजमेंट, (2013)।
4. तिरुवरंगम, पी. 'रवींद्रनाथ टैगोर की शिक्षा का दर्शन और भारतीय शिक्षा पर इसका प्रभाव', इंटरनेशनल जर्नल ऑफ करंट रिसर्च एंड एकेडमिक रिव्यू, (2015)।
5. मुखर्जी, एच. पूर्णता के लिए शिक्षा : रवींद्रनाथ टैगोर के शैक्षिक विचार और प्रयोग का एक अध्ययन। (1962)।
6. वर्मा, वैद्यनाथ प्रसाद– विश्व के महान शिक्षा शास्त्री, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना। (1972)।
7. जोशी, शान्ति–समसामयिक भारतीय, दार्शनिक लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद। (1975)।
8. लॉड, अशोक कुमार भारतीय दर्शन में मोक्ष चिन्तन एक तुलनात्मक अध्ययन, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल। (1973)।

artiyadav8573083646@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 192–199

युवाओं द्वारा बुजुर्गों के प्रति बदलता दृष्टिकोण : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. चन्द्रशेखर सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, समाज कार्य विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

प्रस्तावना :–

वर्तमान समय में समाज अनेक सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तनों के दौर से गुजर रहा है। इन परिवर्तनों का प्रभाव समाज की सभी इकाइयों पर पड़ा है, विशेषकर परिवार संस्था और उसमें निवास करने वाले विभिन्न पीढ़ियों के संबंधों पर। पारंपरिक भारतीय समाज में बुजुर्गों को सम्मान, अनुभव और मार्गदर्शन का प्रतीक माना जाता रहा है। वे परिवार के प्रमुख निर्णयकर्ता, मूल्य संप्रेषक और सांस्कृतिक विरासत के संवाहक माने जाते थे। किंतु आज की पीढ़ी, विशेष रूप से युवा वर्ग, वैश्वीकरण, नगरीकरण, तकनीकी प्रगति और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की प्रवृत्तियों से प्रभावित होकर बुजुर्गों के प्रति अपनी भूमिका और दृष्टिकोण में उल्लेखनीय परिवर्तन ला रही है।

आज के युवा जहां एक ओर आधुनिक जीवनशैली, कैरियर और स्वतंत्र विचारों को प्राथमिकता दे रहे हैं, वहीं दूसरी ओर बुजुर्गों के अनुभव, परंपराएं और पारिवारिक अनुशासन उनके लिए कई बार अप्रासंगिक प्रतीत होते हैं। इसके परिणामस्वरूप बुजुर्गों के प्रति सम्मान और सहयोग की भावना में कमी, उपेक्षा अथवा टकराव की स्थितियाँ उत्पन्न हो रही हैं। वहीं, कुछ युवा ऐसे भी हैं जो बुजुर्गों की देखभाल, भावनात्मक जुड़ाव और पारिवारिक मूल्यों को बनाए रखने के पक्षधर हैं।

यह द्वैत दृष्टिकोण एक महत्वपूर्ण समाजशास्त्रीय प्रश्न को जन्म देता है : क्या युवाओं का दृष्टिकोण सच में नकारात्मक दिशा में परिवर्तित हो रहा है, या यह केवल सामाजिक परिस्थितियों और भूमिकाओं के पुनर्संयोजन का परिणाम है? इस अध्ययन के माध्यम से हम यह विश्लेषण करने का प्रयास करेंगे कि वर्तमान सामाजिक परिवेश में युवाओं द्वारा बुजुर्गों के प्रति दृष्टिकोण किस प्रकार बदल रहा है, इसके कारण क्या हैं, और यह परिवर्तन समाज पर क्या प्रभाव डाल रहा है।

यह शोध न केवल पीढ़ियों के बीच की दूरी को समझने का प्रयास है, बल्कि समाज में सौहार्दपूर्ण संबंधों और पारिवारिक संरचनाओं के पुनर्निर्माण की संभावनाओं को भी तलाशने का प्रयास है।

सैद्धांतिक पृष्ठभूमि :–

1. स्ट्रक्चरल–फंक्शनल थ्योरी (Structural&Functional Theory) :

यह सिद्धांत समाज को एक जैविक इकाई मानता है जहाँ प्रत्येक संस्था (परिवार, धर्म, शिक्षा आदि) का एक विशेष कार्य होता है। बुजुर्ग समाज में सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने का कार्य करते हैं। जब यह भूमिका घटती है, तो सामाजिक संतुलन प्रभावित होता है।

2. पीढ़ी अंतर सिद्धांत (Intergenerational Conflict Theory) :

यह सिद्धांत इस बात की व्याख्या करता है कि समाज में पीढ़ियों के बीच संसाधनों, मूल्यों, विश्वासों और अधिकारों को लेकर टकराव उत्पन्न होता है। युवा जहां नवीनता, स्वतंत्रता और परिवर्तन की ओर अग्रसर होते हैं, वहीं बुजुर्ग परंपरा और अनुभव को महत्व देते हैं। यही विरोध दृष्टिकोण में अंतर को जन्म देता है।

3. सांस्कृतिक संक्रमण सिद्धांत (Cultural Lag Theory & William Ogburn) :

यह सिद्धांत बताता है कि जब भौतिक संस्कृति (जैसे तकनीकी विकास) तीव्र गति से बदलती है और गैर–भौतिक संस्कृति (मूल्य, विश्वास, दृष्टिकोण) पीछे रह जाती है, तब सामाजिक असंतुलन होता है। इस असंतुलन की स्थिति में बुजुर्गों और युवाओं के दृष्टिकोणों में टकराव उत्पन्न हो सकता है।

4. डिसएंगेजमेंट थ्योरी (Disengagement Theory) :

यह बुजुर्गों की भूमिका में क्रमिक कमी को स्वाभाविक और सामाजिक रूप से अपेक्षित मानती है। जैसे–जैसे व्यक्ति वृद्ध होता है, वह सामाजिक और पारिवारिक भूमिकाओं से पीछे हटता है, और युवा इन भूमिकाओं को ग्रहण करते हैं। यह सिद्धांत बताता है कि बुजुर्गों की सामाजिक भूमिका में गिरावट एक प्राकृतिक सामाजिक प्रक्रिया हो सकती है, जिसे युवा कभी–कभी उपेक्षा के रूप में देखते हैं।

समीक्षा साहित्य (Review of Literature)

1. डॉ. ए. के. सिंह (2014) : 'भारतीय परिवार में पीढ़ियों के बीच संबंध'

इस अध्ययन में यह पाया गया कि शहरीकरण और शिक्षा में वृद्धि के कारण युवा पीढ़ी अधिक स्वतंत्र सोच रखने लगी है, जिससे पारंपरिक परिवारों में बुजुर्गों की निर्णयकारी भूमिका कमजोर होती जा रही है।

2. **R. K. Mishra & R. S. Sharma (2010) – "Ageing in India: Retrospect and Prospect"**

यह पुस्तक भारत में वृद्धावस्था से संबंधित सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक पहलुओं की समीक्षा करती है। लेखक दर्शाते हैं कि कैसे बदलती पारिवारिक संरचनाएं (संयुक्त से एकल परिवार) बुजुर्गों की सामाजिक सुरक्षा और सम्मान को प्रभावित कर रही हैं।

3. **Neugarten, B. L. (1976) – "The Meaning of Age: Selected Papers"**

इस शोध में बुजुर्गों की भूमिका में धीरे–धीरे आ रहे सामाजिक और मनोवैज्ञानिक बदलावों पर प्रकाश डाला गया है। लेखक मानते हैं कि सामाजिक भूमिकाओं में बदलाव बुजुर्गों की स्वीकृति को प्रभावित करता है, जिससे युवा और वृद्ध पीढ़ियों के बीच दूरी बढ़ती है।

4. **Census of India & NSSO Reports (2011–2021)**

आधिकारिक आँकड़ों के अनुसार, शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों दोनों में वृद्धजन की जनसंख्या में वृद्धि हो रही है, परंतु उनके प्रति सामाजिक एवं भावनात्मक समर्थन में कमी देखी जा रही है। युवा पीढ़ी के नौकरी, शिक्षा

और प्रवास संबंधी प्राथमिकताओं के कारण बुजुर्ग कई बार उपेक्षित महसूस करते हैं।

5. **World Health Organization (WHO) – Global Report on Ageism (2021)**

WHO की रिपोर्ट बताती है कि "Ageism" यानी उम्र के आधार पर भेदभाव, वैश्विक स्तर पर वृद्धजनों के सम्मान और अधिकारों को बाधित कर रहा है। यह भेदभाव मुख्यतः युवा वर्ग की सोच से जुड़ा होता है, जो वृद्धजनों को बोझ मानने लगते हैं।

6. **डॉ. शोभा त्रिपाठी (2019) : 'पीढ़ियों के मध्य संवादहीनता : एक सामाजिक चुनौती'**

इस शोध में यह बताया गया है कि आधुनिक तकनीकी उपकरणों और सोशल मीडिया के अत्यधिक उपयोग ने युवाओं को बुजुर्गों से संवादहीन बना दिया है, जिससे उनके बीच आत्मीयता और सहानुभूति में कमी आई है।

7. **Indian Council of Social Science Research (ICSSR) Projects – Elderly and Family Dynamics (2015–2020)**

इन परियोजनाओं के निष्कर्षों से पता चलता है कि ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में बुजुर्गों के प्रति दृष्टिकोण में भिन्नता है। शहरी युवा अपेक्षाकृत अधिक आत्मकेंद्रित और कैरियर–उन्मुख पाए गए, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में पारंपरिक सम्मान की भावना अभी भी कुछ हद तक मौजूद है।

8. **डॉ. रमेश चंद्रा (2021) : 'सांस्कृतिक संक्रमण और पीढ़ियों का द्वंद्व'**

इस शोध में यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि जब सांस्कृतिक मान्यताएँ तेजी से बदलती हैं, तो युवा पीढ़ी उन्हें जल्द आत्मसात कर लेती है, परंतु बुजुर्ग उनके साथ सामंजस्य नहीं बिठा पाते। इससे संबंधों में भावनात्मक दूरी उत्पन्न होती है।

9. **HelpAge India Reports (2017–2023)**

HelpAge India द्वारा प्रकाशित रिपोर्टों के अनुसार, भारत में बुजुर्गों की एक बड़ी संख्या को उपेक्षा, शोषण, और भावनात्मक अकेलेपन का सामना करना पड़ रहा है। विशेष रूप से यह तब और अधिक होता है जब युवा पीढ़ी का झुकाव 'व्यक्तिवादी जीवन शैली' की ओर होता है।

शोध उद्देश्य :

यह शोध वर्तमान सामाजिक परिवर्तन की पृष्ठभूमि में युवाओं द्वारा बुजुर्गों के प्रति अपनाए जा रहे दृष्टिकोण में आए बदलावों को समझने और विश्लेषण करने का प्रयास है।

1. **युवाओं के दृष्टिकोण का विश्लेषण करना :**

यह जानना कि आज के युवाओं द्वारा बुजुर्गों के प्रति क्या दृष्टिकोण अपनाया जा रहा है : क्या यह सकारात्मक, तटस्थ या नकारात्मक स्वरूप में व्यक्त हो रहा है।

2. **दृष्टिकोण में आए परिवर्तन के कारणों की पहचान करना :**

उन सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और तकनीकी कारकों का विश्लेषण करना, जो युवाओं के दृष्टिकोण में परिवर्तन ला रहे हैं, जैसे कि शिक्षा, शहरीकरण, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, मीडिया, एवं वैश्वीकरण।

3. **पारंपरिक और वर्तमान दृष्टिकोण के बीच अंतर को समझना :**

पारंपरिक भारतीय समाज में युवाओं और बुजुर्गों के संबंधों की तुलना वर्तमान सामाजिक संदर्भ में करना,

जिससे यह स्पष्ट हो सके कि समय के साथ कौन–कौन से मूल्यों में क्षरण या परिवर्तन हुआ है।

4. **शहरी और ग्रामीण युवाओं के दृष्टिकोण में अंतर का अध्ययन करना :**

शहरी और ग्रामीण परिवेश में रहने वाले युवाओं द्वारा बुजुर्गों के प्रति अपनाए जाने वाले दृष्टिकोण की तुलना करना, ताकि क्षेत्रीय व सामाजिक विविधताओं को समझा जा सके।

5. **पीढ़ियों के बीच संवाद एवं संबंधों की स्थिति का मूल्यांकन करना :**

युवाओं और बुजुर्गों के बीच संचार (Communication), आपसी समझ, सहानुभूति एवं भावनात्मक जुड़ाव की स्थिति का मूल्यांकन करना।

6. **नीतिगत और सामाजिक सुझाव प्रस्तुत करना :**

ऐसे सुझाव देना जो पीढ़ियों के बीच आपसी समझ, सम्मान एवं सहयोग को बढ़ावा दे सकें और बुजुर्गों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण को प्रोत्साहित कर सकें।

शोध पद्धति :–

इस शोध में समाजशास्त्रीय पद्धति के अंतर्गत गुणात्मक (Qualitative) तथा मात्रात्मक (Quantitative) दोनों प्रकार की अनुसंधान तकनीकों का प्रयोग किया गया है, ताकि युवाओं द्वारा बुजुर्गों के प्रति दृष्टिकोण को बहुआयामी ढंग से समझा जा सके। शोध की पद्धति निम्नलिखित तत्वों में विभाजित की गई है :

1. **शोध की प्रकृति (Nature of Study)**

यह अध्ययन वर्णनात्मक (Descriptive) एवं विश्लेषणात्मक (Analytical) है। इसमें युवाओं के दृष्टिकोण का वर्णन किया गया है और सामाजिक–सांस्कृतिक कारकों के आधार पर उनका विश्लेषण किया गया है।

2. **शोध क्षेत्र (Area of Study)**

शोध कार्य उत्तर प्रदेश राज्य के वाराणसी मण्डल।

3. **बुनियादी जनसंख्या और नमूना (Universe and Sample)**

- जनसंख्या (Population) : 18 से 35 वर्ष आयु वर्ग के युवक एवं युवतियाँ।
- नमूना (Sample) : कुल 100–150 युवा उत्तरदाताओं को सरल यादृच्छिक नमूना पद्धति (Simple Random Sampling) से चुना गया है।
- प्रतिनिधित्व : 50% शहरी और 50% ग्रामीण क्षेत्र से।

4. **डेटा संकलन के स्रोत (Sources of Data Collection)**

A. प्राथमिक स्रोत (Primary Sources) :

- साक्षात्कार (Interviews) : चयनित युवाओं से व्यक्तिगत साक्षात्कार।
- प्रश्नावली (Questionnaire) : पूर्वनिर्धारित एवं अर्द्ध–संरचित प्रश्नों द्वारा।
- फोकस ग्रुप डिस्कशन (FGD) : समूह चर्चा के माध्यम से गहन विचारों का संकलन।

B. द्वितीयक स्रोत (Secondary Sources) :

- पुस्तकें, शोध–पत्र, जनगणना रिपोर्ट, HelpAge India रिपोर्ट, WHO दस्तावेज, समाचार पत्र, और ऑनलाइन डेटाबेस।

5. डेटा विश्लेषण की तकनीक (Data Analysis Techniques) :

- मात्रात्मक डेटा : सांख्यिकीय तकनीकों (प्रतिशत, चार्ट, ग्राफ, औसत आदि) द्वारा विश्लेषण।
- गुणात्मक डेटा : सामग्री विश्लेषण (Content Analysis) एवं थीमेटिक एनालिसिस (Thematic Analysis) के माध्यम से।

6. शोध की सीमाएँ (Limitations of the Study)

- शोध क्षेत्र केवल एक मंडल तक सीमित है, इसलिए निष्कर्षों का सामान्यीकरण पूरे भारत पर नहीं किया जा सकता।
- उत्तरदाताओं के उत्तर उनके व्यक्तिगत अनुभवों और सामाजिक परिवेश पर आधारित हो सकते हैं, जिससे विषयगत विविधता बनी रह सकती है।
- बुजुर्गों के दृष्टिकोण को प्रत्यक्ष रूप से शामिल नहीं किया गया है, जो कि एक संभावित आयाम हो सकता था।

परिकल्पनाएँ (Hypotheses) :

1. शहरी युवाओं द्वारा बुजुर्गों के प्रति दृष्टिकोण ग्रामीण युवाओं की तुलना में अधिक तटस्थ या नकारात्मक होता है।

यह परिकल्पना यह मानती है कि शहरीकरण, व्यक्तिगत व्यस्तता और एकल परिवार की प्रवृत्ति बुजुर्गों के प्रति व्यवहार को प्रभावित करती है।

2. उच्च शिक्षित युवा बुजुर्गों के अनुभवों को कम महत्व देते हैं।

यह परिकल्पना मानती है कि शिक्षा का स्तर बढ़ने पर परंपरागत अनुभवों की उपयोगिता कम आँकी जाती है, जिससे युवा बुजुर्गों को अप्रासंगिक मानने लगते हैं।

3. मीडिया और तकनीकी प्रभाव के कारण युवा पीढ़ी बुजुर्गों के साथ संवाद में कमी महसूस करती है।

सोशल मीडिया, मोबाइल और अन्य डिजिटल संसाधनों का अत्यधिक उपयोग पीढ़ियों के बीच संवादहीनता का कारण बन रहा है।

4. संयुक्त परिवारों में रहने वाले युवा, एकल परिवारों में रहने वालों की तुलना में बुजुर्गों के प्रति अधिक सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं।

यह परिकल्पना पारिवारिक संरचना और पीढ़ीगत संबंधों की प्रकृति को जोड़ती है।

5. युवाओं का दृष्टिकोण सामाजिक परिवर्तनों (जैसे रोजगार, प्रवास, कैरियर प्राथमिकता) के कारण बुजुर्गों के प्रति बदल रहा है।

यह परिकल्पना यह दर्शाती है कि दृष्टिकोण में परिवर्तन केवल व्यक्तिगत सोच नहीं बल्कि व्यापक सामाजिक बदलावों से जुड़ा हुआ है।

6. लड़कियों की तुलना में लड़कों द्वारा बुजुर्गों के प्रति दृष्टिकोण अधिक औपचारिक और दूरीपूर्ण होता है। यह परिकल्पना लिंग आधारित दृष्टिकोणों की विविधता को दर्शाती है।

मुख्य निष्कर्ष (Findings) :

1. दृष्टिकोण में परिवर्तन स्पष्ट रूप से परिलक्षित हुआ।

अधिकांश युवाओं ने स्वीकार किया कि उनके दृष्टिकोण में पूर्व पीढ़ियों की तुलना में परिवर्तन आया है। यह परिवर्तन मुख्यतः सामाजिक परिवेश, शिक्षा, कैरियर प्राथमिकताओं और तकनीकी जीवनशैली से प्रभावित है।

2. शहरी बनाम ग्रामीण दृष्टिकोण में अंतर :

- शहरी युवाओं में बुजुर्गों के प्रति अधिक तटस्थ या औपचारिक दृष्टिकोण देखने को मिला।
- ग्रामीण युवाओं में अपेक्षाकृत अधिक आत्मीयता, भावनात्मक जुड़ाव और सम्मान की भावना देखी गई, यद्यपि वहाँ भी आधुनिकता का प्रभाव दिखाई देता है।

3. संयुक्त परिवार बनाम एकल परिवार :

संयुक्त परिवारों में रहने वाले युवाओं द्वारा बुजुर्गों के प्रति अधिक सकारात्मक व्यवहार और सहानुभूति दिखाई गई, जबकि एकल परिवारों में यह व्यवहार अधिक दूरीपूर्ण और औपचारिक रहा।

4. तकनीकी उपकरणों ने संवाद को सीमित किया :

मोबाइल, सोशल मीडिया और डिजिटल व्यस्तता के कारण युवाओं और बुजुर्गों के बीच प्रत्यक्ष संवाद सीमित हो गया है। इससे पीढ़ियों के बीच भावनात्मक दूरी बढ़ी है।

5. शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता का प्रभाव :

उच्च शिक्षित एवं आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर युवा बुजुर्गों की राय को कम महत्व देते पाए गए। वे परंपरागत अनुभवों की अपेक्षा आधुनिक विचारों को प्राथमिकता देते हैं।

6. लिंग आधारित अंतर :

लड़कियों द्वारा बुजुर्गों के प्रति अधिक स्नेह, सहानुभूति और व्यवहारिक सहयोग देखा गया, जबकि लड़कों में अपेक्षाकृत औपचारिकता अधिक रही।

7. कई युवा भावनात्मक रूप से जुड़ाव बनाए रखना चाहते हैं :

कुछ युवाओं ने यह भी व्यक्त किया कि वे बुजुर्गों के प्रति सहानुभूति रखते हैं, किंतु समय, दूरी, और जीवनशैली की व्यस्तता के कारण उन्हें उनसे संपर्क बनाए रखना कठिन होता है।

8. नैतिक मूल्यों का ह्रास नहीं, बल्कि पुनर्परिभाषा हो रही है :

युवाओं में नैतिक मूल्य पूरी तरह समाप्त नहीं हुए हैं, बल्कि वे नए संदर्भों में बुजुर्गों की भूमिका और महत्व को पुनर्परिभाषित कर रहे हैं।

निष्कर्ष (Conclusion) :

इस समाजशास्त्रीय अध्ययन के माध्यम से यह स्पष्ट रूप से सामने आया कि वर्तमान समय में युवाओं द्वारा बुजुर्गों के प्रति अपनाया जा रहा दृष्टिकोण पारंपरिक भारतीय सोच से भिन्न होता जा रहा है। यह परिवर्तन केवल पीढ़ीगत टकराव नहीं है, बल्कि एक गहन सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक पुनर्रचना का संकेत है। बुजुर्गों के प्रति दृष्टिकोण में आए इस परिवर्तन के पीछे प्रमुख कारणों में शहरीकरण, शिक्षा का प्रसार, आर्थिक स्वतंत्रता, तकनीकी प्रगति, तथा एकल परिवार की बढ़ती प्रवृत्ति शामिल हैं। अध्ययन में यह भी पाया गया कि युवाओं के दृष्टिकोण में पूर्णतः नकारात्मकता नहीं है, बल्कि भावनात्मक जुड़ाव की कमी, संचार का अभाव, और जीवनशैली की व्यस्तता इस दूरी को बढ़ा रही है।

शहरी युवाओं में बुजुर्गों के प्रति औपचारिकता और आत्मकेंद्रितता अधिक दिखाई दी, जबकि ग्रामीण

युवाओं में परंपरागत सम्मान और भावनात्मकता अभी भी कुछ हद तक विद्यमान है। इसके अतिरिक्त, संयुक्त परिवारों में रहने वाले युवाओं द्वारा बुजुर्गों के अनुभवों और भूमिका को अधिक महत्त्व दिया गया, वहीं एकल परिवारों में यह संबंध अपेक्षाकृत कमजोर होता गया।

युवा पीढ़ी अब पारंपरिक मान्यताओं की बजाय प्रासंगिकता, उपयोगिता और आपसी समझ के आधार पर बुजुर्गों की भूमिका का मूल्यांकन करती है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि समाज में बुजुर्गों की स्थिति में गिरावट केवल युवा दृष्टिकोण की वजह से नहीं है, बल्कि यह एक व्यापक सामाजिक परिवर्तन का परिणाम है।

इसलिए आवश्यक है कि पीढ़ियों के बीच संवाद, साझा अनुभव, और सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण को पुनः विकसित किया जाए, जिससे समाज में बुजुर्गों के सम्मान, गरिमा एवं सहभागिता को पुर्नस्थापित किया जा सके।

सुझाव (Recommendations) :

1. पीढ़ियों के मध्य संवाद को बढ़ावा दिया जाए :

परिवारों में नियमित पारस्परिक संवाद, सामूहिक समय व्यतीत करना, और बुजुर्गों के अनुभवों को सुनने और समझने की संस्कृति को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

2. शैक्षिक पाठ्यक्रमों में पीढ़ीगत संबंधों पर सामग्री जोड़ी जाए :

विद्यालय और महाविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में 'मूल्य शिक्षा', 'बुजुर्गों के सम्मान', और 'सामाजिक सहअस्तित्व' जैसे विषयों को सम्मिलित कर युवाओं में सहानुभूति और समझ विकसित की जा सकती है।

3. समुदाय स्तर पर बुजुर्ग-युवा मेल कार्यक्रम चलाए जाएं :

सामुदायिक केंद्रों, NGOs और स्कूलों के माध्यम से वृद्धजनों और युवाओं को साथ लाकर सांस्कृतिक, शैक्षिक व संवादात्मक कार्यक्रम आयोजित किए जाएं जिससे आपसी समझ और भावनात्मक निकटता बढ़े।

4. मीडिया और सोशल मीडिया का सकारात्मक उपयोग :

सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर ऐसे अभियान और कहानियाँ प्रसारित की जाएं जो बुजुर्गों के अनुभव, योगदान और मूल्य को उजागर करें और युवाओं को प्रेरित करें।

5. नीतिगत स्तर पर बुजुर्गों के लिए सहभागिता आधारित योजनाएं :

सरकार एवं संस्थानों द्वारा बुजुर्गों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने वाली योजनाएं चलाई जाएँ, जैसे : 'सीनियर मेंटर प्रोग्राम', 'जनरेशन ब्रिज पहल', आदि, जिससे वे युवाओं के साथ जुड़ाव महसूस कर सकें।

6. एकल परिवारों में बुजुर्गों के लिए मानसिक-भावनात्मक समर्थन कार्यक्रम :

परामर्श सेवाओं, सामुदायिक हेल्पलाइन, और ऑनलाइन/ऑफलाइन 'बुजुर्ग सहायता समूह' बनाए जाएँ ताकि वे अकेलापन महसूस न करें और युवा भी उनसे संवाद बना सकें।

7. तकनीकी साक्षरता कार्यक्रम बुजुर्गों के लिए :

तकनीकी अंतर को पाटने के लिए बुजुर्गों को मोबाइल, इंटरनेट, और डिजिटल संचार के बुनियादी प्रशिक्षण दिए जाएँ, जिससे वे युवा पीढ़ी के संपर्क में रह सकें और दूरी कम हो सके।

8. पारिवारिक संस्कारों की पुर्नस्थापना :

परिवारों में बच्चों और युवाओं को बाल्यावस्था से ही बुजुर्गों के प्रति सम्मान, सेवा और सहयोग की भावना

सिखाई जाए, जिससे वे उन्हें केवल 'निर्भर' नहीं बल्कि 'मूल्यवान' सदस्य समझें।

पुस्तकें और शोध ग्रंथ (Books & Research Works) :

1. Baltes, P. B., & Smith, J. (2003). New frontiers in the future of aging: From successful aging of the young old to the dilemmas of the fourth age. Gerontology, 49(2), 123–135.
2. Harper, S., & Hamblin, K. (Eds.). (2014). International handbook on ageing and public policy. Edward Elgar Publishing.
3. Mishra, R. K., & Sharma, R. S. (2010). Ageing in India: Retrospect and prospect. Allied Publishers.
4. Neugarten, B. L. (1976). The meaning of age: Selected papers. University of Chicago Press.
5. Ogburn, W. F. (1922). Social change with respect to culture and original nature. B.W. Huebsch.
6. Singh, A. K. (2014). Bhartiya parivar mein peedhiyon ke beech sambandh. Rajat Publications.
7. Tripathi, S. (2019). Pee?hiyon ke madhya samvadheenata: Ek samajik chunauti. National Sociological Review, 12(1), 45–56.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 200–205

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताओं में निहित व्यंग्य

भक्ति कुमारी
शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

बहुआयामी कृति–व्यक्तित्व के धनी सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, न केवल काव्य के क्षेत्र में अपितु साहित्य के अन्यान्य विधाओं में भी सक्रिय रूप से लेखन कार्य किया है। वे जीवन और समाज के हर पहलू पर सचेतन, संवेदनशील एवं पैनी दृष्टि रखने वाले उत्कृष्ट सृजक तथा समाज चेता कलाकार थे। तत्कालीन समाज मे प्रसरित अनेक बुराईयाँ– कुंठा, संत्रास, अजनवीयत, अंतर्मुखता, संसय ग्रस्त मानसिकता के साथ ग्रामीणजन की अनेक शुभ–अशुभ स्मृतियाँ आपके लेखन की विषय वस्तु बनीं। विवेच्य कवि के लेखन में मध्यवर्गीय जन की पीड़ा खुरदुरे यथार्थ के साथ अभिव्यक्त हुई है। यही खुरदुरा यथार्थ पाठक को निज जीवन की अभिव्यक्ति सा प्रतीत होता है जिस कारण वह आदि से अंत तक आपकी रचनाओं से जुड़ा रहता है। कवि अपने कृति व्यक्तित्व की विषय वस्तु के लिए बार–बार गाँव की तरफ रुख करता है, शायद इसीलिए ग्रामीणजन और गाँव, जवार की पीड़ा इनकी रचनाओं के केंद्र में रहा है। जैसा कि कृष्णदत्त पालीवाल ने भी लिखा है– 'काली, सौंधी मिट्टी के खेतों, मैदानों, तालाबों, फूलों, पगडंडियों, नदियों, पशु–पक्षियों, ज्यादातर कच्चे खपरैलों के मामूली'।

आदमियों के घर, अंधेरे गलियारों का उनके ऊपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उनके सृजन में यह सब अनेक रूपों और छवियों में दिखाई देता है।' लेखन के क्रम में सर्वेश्वर दयाल जी पाते हैं कि आजादी की लड़ाई में जन–जन की भागीदारी थी किन्तु स्वतंत्र भारत में आज भी गांवों की स्थिति जस की तस बनी हुई है। कवि मन जनसामान्य की पीड़ा को देखकर व्यथित हो उठाता है। यह व्यथा वक्रमार्ग की अनुगामिनी होकर व्यंग्यात्मक शैली में कवि की रचनाओं में फुट पड़ती है। यूँ कवि की व्यंग्यात्मक शैली का चरम उत्कर्ष बकरी, कलभात आएगा, अब गरीबी हटाओ आदि नाटक हैं किन्तु इनकी कविताओं में निहित व्यंग्यात्मक यथार्थ का परीक्षण करना इस शोध–पत्र का उत्स्य है।

भाषा अभिव्यक्ति की सशक्त माध्यम होती है जिसके माध्यम से रचनाकार अपनी जीवन अनुभूतियों में यथार्थ और कल्पना का मिश्रण कर सहृदय के समक्ष व्यक्त करता है। कृतिकार और सामाजिक की अनुभूति सदैव एक जैसी नही रहती है, वह परिवर्तनीय होती है। जिसके फलस्वरूप भाषा के टोन में बदलाव आ जाता है जिसे हम शैली कहते हैं। रचनाकार निज कृतिव्यक्तित्व में जीवंतता लाने के लिए कभी सरल, ऋजु तो कभी वक्र या व्यंग्यात्मक शैली का वरण करता है। सर्वेश्वर सीधी सपाट बयानी के कवि नही हैं, उनकी भाषा भावों के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। यह कहा जा सकता है कि उक्त कवि भाव संवेद्य की दृष्टि से मझी हुई भाषा का प्रयोग करता है। इसी वजह से इनके काव्य में शब्दशक्ति अभिधा, लक्षणा, व्यंजना का उचित मात्रा में प्रयोग मिलता है।

जब वे सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक विडम्बनाओं पर प्रश्नचिह्न लगते हैं तो इनकी कविताएँ सहज ही व्यंग्य पथ का पथिक बन जाती हैं। यथा :–

क्यों हाथ टूटा है?
क्यों हर पैर कटा हुआ है?
क्यों हर चेहरा मोम का है?
क्यों हर दिमाग कूड़े से पटा है?
क्यों हर कोई जिंदा नही है...
दिल्ली की इन सड़कों पर।[1]

उक्त काव्यांश आज के दौर में दिल्ली जैसे महानगरों में फैली जड़ता, उदासी और मरती हुई मानवीय संवेदन और राज नेताओं की अकर्मण्यता पर करारा व्यंग्य है। यह व्यंग्य समाज के हर उस व्यक्ति पर है जो प्रत्यक्ष रूप से अनेक बुराइयों को देखते हुए भी उसका प्रतिकार नही करता बल्कि टूटा हुआ हाथ, कटा हुआ पैर अर्थात समाजिक विकलांगता के दौर में मोम जैसे चेहरे के भीतर कूड़े करकट से भरा हुआ दिमाग लिए जीवन का दिन काट रहा है। हमारे इर्द–गिर्द बहुत से ऐसे मनुजाद हैं जिनमें जिंदा मनुष्य के एक भी लक्षण विद्यमान नही हैं क्योंकि मनुष्य की सबसे बड़ी पहचान समर्थन और प्रतिरोध होता है। किंकर्तव्यविमूढ़ व्यक्ति और समाज के कायराना व्यवहार की अभिव्यक्ति 'बाँस का पुल' नामक कविता है जिसमें कवि व्यंग्य का तीखा नस्तर चलाया है। यथा–

यह कायरों का देश है
यहाँ लोग देखने को आगे देखते हैं
चलने पर पीछे चलते हैं
और विवेक के नाम पर प्रत्यंचा चढ़ाने से मना करते हैं
बौने समाज में
घुटने के बल चलने की शिक्षा देते हैं
छोटी चारपाइयों के हिसाब से आदमी के बढ़े हुए पैर काटकर
सोचते हैं उसे सुख और आराम दे रहे हैं।[2]

उपरोक्त पंक्तियाँ बरबस ही भारतेंदु हरिश्चंद्र का कथन– 'हमारे देश के लोग रेलगाड़ी के डिब्बे हैं जिन्हें चलाने के लिए इंजन की जरूरत होती है' का स्मरण करा देती हैं। दरअसल भारतेंदु का यह कथन आजादी के पहले के भारत के लिए था। किंतु आजादी प्राप्त हो जाने के बाद भी या यूँ कहें कि सर्वेश्वर के समय मे भी यह समाज जस का तस बना हुआ है। कवि मन इस व्यवस्था से क्षुब्ध होकर उक्त काव्यांश में व्यंग्य के माध्यम से आज का नग्न यथार्थ पाठक के समक्ष पेश किया है।

सर्वेश्वर का व्यंग्यात्मक तेवर कबीर, निराला, नागार्जुन और हरिशंकर परसाई जैसा नही है। इनके व्यंग्य में जहाँ एक तरफ तल्खी और फटकार है तो वहीं दूसरी तरफ सौम्यता और शिष्टता भी है। अतएव अवसर के अनुकूल इनकी व्यंग्यात्मक भाषा परिवर्तित होती रहती है। वे बड़ी सी बड़ी बातों पर बड़े साफगोई के साथ चुटकी लेकर निकल जाते हैं। जैसा कि हरिचरण शर्मा ने कहा है कि– 'सर्वेश्वर के व्यंग्य की विशेषता यह है कि वह मात्र गुस्सा न होकर शिष्ट, शालीन और रचनात्मक हैं। वह आक्रामक तो हैं, पर उनकी आक्रामक शैली

महीन है। जहाँ कहीं भी क्रोध मिश्रित है, वहाँ परिस्थिति की जटिलता और क्रूरता ने ही उसे ऐसा बनाया है या कहें कि तब जब कवि व्यवस्था की अवस्था या व्यक्ति की भ्रष्टता के कारण इंसानियत को मरते देखा है।'[3] कवि व्यंग्य को जीवंत बनाने के लिए कहीं–कहीं हास–परिहास, मनोविनोद एवं नाटकीय शैली का प्रयोग करता है। जिसे हम 'काठ की घण्टियाँ' शीर्षक कविता में देख सकते हैं :–

चुपाई मारो दुलहिन ध्मारा जाई कौआ...
दे धोती/दिन भर चरखा कात/साँझ को क्यों रोती
सूत बेच कर/पी आयें घर में ताड़ी
छीन लंगोटी/काटी बोटी–बोटी
किस्मत ही निकली खोटी/ऊपर नेग माँगते हैं
ये बाभन – नौआ
चुपाई मारो दुलहिन/मारा जाई कौआ।[4]

उपरोक्त काव्यपंक्ति कोई साधारण काव्यव्यांश नही है कि हम पढ़े और मनोरंजन हुआ, आगे बढ़ गए। बल्कि पाठकवर्ग को रुक कर सोचने के लिए मजबूर कर देती हैं क्यों कि अपने मे कई अर्थवत्ता लिए 'काठ की घण्टियाँ' शीर्षक कविता एक साथ विभिन्न सामाजिक विसंगतियों पर व्यंग्य है। इस कविता के माध्यम से एक तरफ जहाँ समाज के उस वर्ग पर व्यंग्य किया गया है, जो अपने घर की महती हालात को न देखते हुए, घर के तमाम सदस्यों से बेपरवाह होकर अपनी कमाई का बड़ा हिस्सा शराब की भठि्ठयों पर गवाँ आते हैं। वहीं दूसरी तरफ एक ऐसा वर्ग है जो इनके घरों में बचे–खुचे अनाज और धन को नेक–चार के रूप में हथियाने से पीछे नही हटता। इस प्रकार की अनेक सामाजिक संत्रास सर्वेश्वर की रचनाओं की विषय वस्तु बनी हैं। यही विशेषताएँ इन्हें अपने समकालीनों में श्रेष्ठ सिद्ध करती हैं– 'परिवेश एवं जीवन के प्रति सचेतन दृष्टि रखने वाले कवियों में सर्वेश्वर की जगह काफी ऊँची है। इस बात में तो वे अज्ञेय से भी आगे हैं कि उन्होंने आम आदमी की जिंदगी को, हमारे परिवेश के संकट को आत्मीय,सहज और विश्वसनीय शिल्प में ढ़ालकर कहा है। उनका कहा हुआ हमारी चेतना में समा जाता है और पाठक को लगता है कि इस सब में उसकी बहुत बड़ी साझेदारी है।'[5] कवि की सचेतन दृष्टि का परिणाम है कि उसकी कविताई बार–बार ग्राम्य जीवन और परिवेश की यात्रा करती है। इस यात्रा में जब उसकी दृष्टि भूखे, पीड़ित और व्याकुल खेतिहर किसान और मजदूर पर पड़ती तो उसके अन्तस् को झकझोर देती है। यथा :–

मैं भागता हूँ और देखता हूँ
यह खेतिहर मजदूर भूख से मर गया,
वह चौपाये के साथ बाढ़ में बह गया,
यह सरकारी बाग की रखवाली करता था,
लू में टपक गया।
यह एक छोटे से रोजगार के सहारे,
जिंदगी काट ले जाना चाहता था
पर जाने क्यों रेल से कट गया।[6]

इसे व्यंग्य न कहकर, कृषक और मजदूर जीवन के प्रति कवि की वास्तविक संवेदना की अभिव्यक्ति कहना ज्यादा न्यायोचित होगा। विडम्बना देखिए कि हमारे समाज का यह वर्ग आज ही नही बल्कि वर्षों से व्यवस्था की चक्की में पिसते हुए कब किसान से मजदूर और मजदूर से मजबूर बन जाता है उसे खुद ही इस बात का भान नहीं होता। दिन रात मेहनत कर अनाज तैयार करने वाला अन्नदाता हो या फिर अपनी मेहनत से दूसरों के लिए घरौंदे तैयार करने वाला मजदूर, दोनों जिस सम्मान के हकदार हैं क्या वह सम्मान उन्हें मिलता है? यह प्रश्न और अधीरता 'निराला' के जमाने मे भी थी, मुंशी प्रेमचंद के जमाने मे भी थी, नागार्जुन के समय में भी थी, सर्वेश्वर के समय में भी थी और हमारे समय में भी उपस्थित है। आखिरकार कब तक यह वर्ग दो पाटों के बीच पिसता रहेगा। वर्तमान में इस अव्यवस्था का जीता–जागता प्रमाण संजीव का 'फाँस' जैसा उपन्यास और समाचार पत्र हैं। जिसमें आए दिन कर्ज आदि जैसी समस्याओं के बोझ तले दबे किसानों की आत्महत्या की रपट प्रकाशित होती रहती हैं। वह जिस छोटे से रोजगार के सहारे अपना जीवन काट लेने के लिए कटिबद्ध है, वह भी व्यवस्था की षणयंत्र के भेंट चढ़ उससे छिन जाता है। अंततः उसे हाथ बचती है सिर्फ आत्महत्या और खुदकुशी जैसे शस्त्र जिसे आए दिन विदर्भ के किसानों के यहाँ देखा जा सकता है।

किसान व मजदूर किसी देश की वह धुरी होते हैं जिस पर उस देश की संस्कृति बहुत हद तक टिकी रहती है। भारत जैसे देश में संस्कृति और धर्म का अधिकांश हिस्सा खेती, किसानी से जुड़ा हुआ है। इसलिए धर्म एवं संस्कृति को अलग करना मुश्किल ही नही असंभव है। किन्तु जब धार्मिक या संस्कृति उत्सव की बात आती है तब उक्त वर्ग समाज के हासिए पर पाया जाता है। क्योंकि आज के भौतिकतावादी युग में हर रीति–नीति को मापने का पैमाना आर्थिक शक्ति पर निर्भर करता है। इस पर भी वर्तमान दिखावे की संस्कृति ने रीति – रिवाज, पर्व–त्योहार को मनाने के तौर–तरीके में परिवर्तन लाया है जो नितांत अर्थ पर आधारित है। हम जानते हैं कि हमारा कृषक और मजदूर वर्ग आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा है इसीलिए उसके जीवन में उत्सवधर्मिता जैसी कोई चीज रह ही नही गयी है। बड़े से बड़े उत्सव के दिन भी उसका समय खेती–किसानी में बीत जाता है। इसी प्रकार का एक उत्सव हमारे समाज मे नववर्ष के रूप में मनाया जाता है।

जिसकी शुभकामना सर्वेश्वर जी कुछ इस अंदाज में देते हैं–

खेतों की मेड़ों पर धूल भरे पाँव को
कुहरे से लिपटे उस छोटे से गाँव को
नये साल की शुभकामनाएँ
जाते के गीत को, बैलों की चाल को
करघे को, कोल्हू को, महुओं के जाल को
नये साल की शुभकामनाएँ![7]

यह काव्यांश जहाँ एक तरफ किसानों और खेतिहर मजदूरों को शुभाशंसा प्रेषित करती हैं वहीं दूसरी तरफ व्यंग्यात्मक लहजे में सामाजिक व्यंग्य भी परोस रही हैं क्योंकि जिस समय हममें से अधिकांश लोग नववर्ष के जश्न में खोए रहते हैं, ठीक उसी समय समाज का यह वर्ग हॅड कपकपा देने वाली शर्दी में खेती की रखवाली करता रहता है। 'पूस की रात' के हलकू, मुनिया और जबरा के लिए नये–पुराने साल से क्या लेना देना, उसका जीवन तो एक रसता में दिन–दिन गिन कर कट जाता है। सर्वेश्वर की उक्त कविता 'नागार्जुन' की उस

काव्यखण्ड का याद दिला देती जिसमें वे लिखते हैं :–

'क्या दक्षिण क्या वाम
जनता को रोटी से काम।'

कहने का आशय है कि सारी वैचारिकी और उत्सवधर्मिता का जन्म पेट भरने के बाद होता है। समाज के इस वर्ग का जीवन रोजमर्रा की चीजों की जुगत में ही तिल–तिल कर बीत जाता है। इनके लिए नया–पुराना साल कोई मायने नही रखता।

सर्वेश्वर मानवतावादी कवि हैं, इनके लिए मानव मूल्य ही सर्वोपरि है। इसीलिए अपनी कविताओं के माध्यम से विभिन्न छोटे–बड़े सामाजिक एवं जातीय मुद्दों को पाठक वर्ग के समक्ष उपस्थित करते हैं। और जब इन समस्याओं कोई समाधान इन्हें नहीं दिखाई देता है तो व्यंग्य की पैनी धार चलाने से पीछे नही हटते हैं। 'पोस्टर और आदमी' नामक कविता विघटित होते मानव मूल्य और सर्वेश्वर के व्यंग्य का सशक्त उदाहरण है।

यथा– लेकिन मैं देखता हूँ
कि आज के जमाने में
आदमी से ज्यादा लोग
पोस्टरों को पहचानते हैं
वे आदमी से बड़े सत्य हैं
जिसमें दिल, दिमाग, आत्मा कुछ भी नहीं है।[8]

वर्तमान समय मे कवि का उक्त कथन प्रासंगिक है क्योंकि यह दौर मूल्यों के क्षरण का दौर है। जिसमें सारी मानवता को धता साबित करते हुए जीते–जागते प्राणियों से ज्यादा हम पोस्टरों पर प्रतिबिंबित मनुष्य और उसकी प्रतिमाओं को ज्यादा तवज्जो दे रहे हैं। आज के समय में जीते जी व्यक्ति के औदात्य गुणों की पहचान हममें से किसी को नही होती, यह समाज उसके मूल्य को नही समझ पाता, किंतु मरने के बाद उसके गुणों का चालीसा गायन करते हुए उसकी प्रतिमा को महिमामंडित करने लगते हैं जिसमें दिल, दिमाग और आत्मा कुछ भी नही होता।

सर्वेश्वर जी की तिरछी नजर से पाखंडी, दुराचारी और ढोंगी धर्म के ठेकेदार पंडा–पुरोहित, मौलवी भी नही बचते हैं। धर्म के नाम पर फैले तमाम प्रकार के बाह्याचार और व्यभिचार पर तीखा व्यंग्य करते हुए वे लिखते हैं –

यह हरिजन था इसे जिंदा जला दिया गया
वह अनपढ़ गरीब था इसे देवी की बलि चढ़ा दिया गया
यह आस्थावान धर्म गुरुओं की कोठरी में मरा
यह अनजानी ऊँचाईयाँ छूना चाहता था
छत की कड़ी से झूल गया।[9]

जहाँ एक तरफ यह कविता धर्मिक पाखण्डों पर सवालिया निशान लगती है, वहीं दूसरी तरफ समाज में दलितों के साथ हो रहे भेद–भाव को उजाकर करते हुए विमर्शिय साहित्य को सशक्त करती है।

समकालीन परिवेश में फैले अनैतिक वातावरण, भ्रष्टाचार, जमाखोरी, कोरी संवेदना, धार्मिक कट्टरता,

नरसंहार से विवेच्य कवि को चिढ़ थी। इसीलिए वह किसी वाद के खूँटे में बंधकर साहित्य सृजन करना पसंद नहीं करता है। बल्कि उक्त त्रासद पूर्ण वातावरण पर व्यंग्य करते हुए पढ़ी लिखी मुर्गियाँ, व्यंग्य मत बोलो, धन्तमन्त आदि कविताओं की सृजन करता है। कवि की एक कविता है 'तर्क योग का नाम' जिसमें चाटुकारिता और दिखावे की संस्कृति पर तीक्ष्ण व्यंग्य किया गया है :–

भीतर कौन देखता है, बाहर रहो चिकने,
यह मत भूलो–यह बाजार है, सभी आये हैं बिकने,
राम–राम बोलो, और माखन मिश्री घोलो,
व्यंग्य मत बोलो।[10]

वर्तमान दौर की सच्चाई से रूबरू कराती यह कविता जहाँ एक तरफ बाजारवाद की कलई खोलती साबित हो रही है वहीं दूसरी तरफ सफेदपोश धारी नेताओं की लच्छेदार, चिकनी–चुपड़ी बातों पर व्यंग्य भी।

अतएव हम कह सकते हैं कि समाज मे जहाँ–जहाँ कुरुपताएँ, विद्रुपताएँ, बहसीपन, असमानता, दिखावापन, पाखण्ड, ऊँच–नींच का भेदभाव, आर्थिक विषमता, किसानों, मजदूरों की दुर्दशा दिखाई पड़ती है वहाँ–वहाँ सक्सेना जी के कविताओं की तीक्ष्ण एवं पैनी धार चल पड़ी है।

सन्दर्भ :–

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, कुआनो नदी, पृ. 28/29
2. वही, बाँस का पुल, पृ. 78
3. डॉ. हरिचरण शर्मा, सर्वेश्वर का काव्यरू सृष्टि और दृष्टि, पृ. 144
4. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, काठ की घण्टियाँ, पृ. 403
5. डॉ. हरिचरण शर्मा, सर्वेश्वर का काव्य : सृष्टि और दृष्टि, पृ. 22
6. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, कुआनो नदी, पृ. 92
7. वही, कविताएँ 1, पृ. 89
8. वही, काठ की घण्टियाँ, पृ. 382
9. वही, कुआनो नदी, पृ. 26
10. कविताएँ 2, पृ. 64

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 206-209

मृदुला गर्ग की कहानियों में नारी विमर्श

मीर जाहिदुल इसलाम
मध्य कामरुप महाविद्यालय, शुभा, बरपेटा, आसाम।

समकालीन हिन्दी कहानी साहित्य में मृदुला गर्ग की महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने अपनी कहानियों में युग–यथार्थ की पृष्ठभूमि में युग जीवन को तथा युग जीवन के सन्दर्भ में व्यक्ति के जीवन को विभिन्न प्रसंहों तथा स्थितियों में अंकित किया है। नारी के टूटते जीवन, सेक्स संबंधा टुटते रिश्ते, पारिवारिक समस्याएँ और उनकी कहानियों में व्यक्ति के बाहरी और सामाजिक प्राणी के रूप में उसकी भूमिका भी दर्शाई गई है। पुराने एंव रूढ़िगत परम्पराएँ, विचारों और विश्वासों की टूटन नव–चेतना के उभार के लक्षण दृष्टिगोचर होते है।

पहले जिस समाज को पुरूष प्रधान समाज नाम से जाना जाता था, आज उस समाज का विचार बहुत कुछ बदल गया है। स्त्री घर के बाहर जाकर नौकरी–पेशा, काम–काज करने लगी है। आर्थिक रूप से स्वतंत्र बन रही है। हमेशा पति के सामने हाथ बढ़ाने वाली स्त्री, दिमागी तौर पर पुरूष को ही कमजोर समझने लगी है। साहित्य में वर्तमान भारतीय समाज की आर्थिक परिस्थितियों से जन्म लेने वाली स्त्री साठोत्तरी कहानियों में अर्थ तंत्र का प्रत्यक्ष–परोक्ष प्रभाव उसका बहुत ही स्पष्ट है। नारी की आर्थिक स्वतंत्रता उसके जीवन में आने वाले परिवर्तन की शुरूआत थी।

राजेन्द्र यादव ने लिखा है– "नारियाँ ही आदिकाल से सौन्दर्य तथा कला का केन्द्र रही है। फिर आत्मनिर्भर स्वयं समर्थ अकेली नारी तो पुरूष के लिए सबसे बड़ा प्रलोभन और निमंत्रण भी है। इस निमंत्रण को प्रायः हर पुरूष कथाकार को स्वीकार करना पड़ा है और अपनी–अपनी सीमाओं, संस्कारों के साथ प्रत्येक ने उनकी शक्तियों मजबूरियों और कमनीयताओं को कथा–दृष्टि दी है। पुराने संस्कारों और नई परिस्थितियों के बीच नारी किस प्रकार पुरूष के अनेक टूटे संदर्भों के बीच अकेली होती है। उसके मानसिक गठन और मनोविज्ञान में कैसे दिलचस्प परिवर्तन आते जाते हैं, इसे आज की कहानी अधिक वास्तविक भूमि, अनेक सूक्ष्म–संश्लिष्ट धरातलों और विविध संवेदशील पक्षों से चित्रित करती है।"[1]

आज की कहानियों में नारियों की दशा–दिशा को लेकर लेखिका स्वयं कहती हैं– "स्त्री का दोहरा शोषण होता है, इससे किसी को इन्कार नहीं है। स्त्री होने की वजह से होने वाले शोषण, बलात्कार और वेश्या बनाए जाने तक सीमित नहीं है। पैदा होते ही, या बाद में पति की चिता पर उसकी हत्या होती है। खाने को उसे कम दिया जाता है और शिक्षा से उसे वंचित रखा जाता है।"[2]

इस शोध पत्र में मृदुला गर्ग की कहानियों में नारी की आत्मनिर्भरता, पुरूष का अधिपत्य स्वीकार करने वाली अबला आदि स्त्री–संबंधित विचारों देखा गया है।

"दो एक फूल" मृदुला गर्ग की एक ऐसी कहानियाँ है जिस में स्त्री पर होने वाली अत्याचार का त्रासद और दुःखत घटना का चित्रण मिलता है। कहानी की नायिका शांतम्मा निम्नवर्गीय परिवार का है। उसका पति फकीरप्पा सीमेन्ट कारखाने में तीन सौ रूपये तनख्वाह पर काम करता है। उन रूपये से दारू तथा बाजार की वेश्या पर लौटाते है। इधर शांतम्मा को सिफिलिस की बीमारी है, जिसके कारण दो बच्चे पैदा होने के दो महीने के बीच मर भी जाते है। इसका क्रोध और दुःख अपनी पत्नी को लात और घुंसा मारकर ही फकीरप्पा उतारता है।

शांतम्मा की यह दूसरी शादी है। उसके पहले पति के बारे में वह कहती है–– "पहला एक मरद था बाई। वो मेरे को छोड़ दिया तो इसको किया। ये फिर भी अच्छा है। वो तो रोज बाजार में जाता था, रोज दारू पीकर आता था और रोज मेरे को मारता था। ये देखो ना, बाई। जलती लकड़ी से मारा था एक बार। अब तक निशान नहीं गया।"[3] शांतम्मा को देखकर ऐसा लगता है कि परम्परा से औरत भी कितनी मार सहती आ रही है।

मृदुला गर्ग की अन्य एक कहानी है "मेरा"। "मेरा" कहानी आज के मध्यवर्गीय परिवार के नौकरी पेशा स्त्री–पुरूष के बीच बच्चे के जन्म की समस्या को लेकर उत्पन्न तनाव का एक जीवंत चित्र है। असिस्टेंट इंजीनियर पति महेन्द्र को अपनी पत्नी का अनचाहा गर्भ एक मानसिक बोझ–सा और महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति में बाधक लगती है। इसलिए वह मीता से भ्रुण हत्या करने के लिए दबाव डालता है। और जोर–जबर्दस्ती से डाक्टर उसकी इच्छा के विरूद्ध गर्भपात करेगी तो वह खुलकर अपने अंदर के विचारों को प्रकट करने को सोचती है। पति की मजबूरी के कारण वह अस्पताल पहुँचने पर उसे लगता है कि यह उसका अपना मामला है। मेरा मामला है, यही सोचकर वह एबार्शन नहीं करती। उसके अन्दर का मातृत्व भड़क उठता है। अंत में विजयी होता है और अपने पति और माँ के अमानवीय व्यवहार के बावजूद वह अपने खुद के निर्णय पर टिकी रहती है। वह स्वावलंबी जीवन–यापन करने को सोचती है।

"ग्लेशियर से" कहानी में मृदुला गर्ग जी ने नारी के आत्मालाप को बड़ा ही सुन्दर चित्र खींचा है। इस कहानी की मिसेज दत्ता को पहाड़ के गाइडों को देखकर लगता है कि– "कोई दूसरा गाइड है या शायद वही पहले वाला। एक कम्पनी की मोटर गाड़ियों की तरह हैं सब।"[4] मिसेज दत्ता बहुत कुछ सोचती है और खुद अपने–आप से बड़बड़ाती रहती है। कहानी के पठान और उसके पौरूष के तपन में मोम–सी पिंघलती मिसेज दत्ता का चरित्र अत्यन्त सुन्दर ढंग से चित्रित हुआ है। नारी के मन में दमित पूर्ण पुरूष को पाने की लालसा और बिम्बात्मक अभिव्यक्ति को दर्शाया गया है।

"तुक" कहानी में यह दिखाया गया है कि अलग–अलग दृष्टियों से होते हुए भी किस तरह नारी अपने प्रेम और संवेदना के कारण पति से बंधी रहने के लिए मजबूर है। कहानी की नायिका मीरा है, जो देखने में सुन्दर है, फिर भी उसका पति उसे प्यार नहीं करता। पति का प्यार पाने के लिए वह तरह–तहर के पोषाक पहन कर दरवाजे पर खड़ी रहती है। उसे सब कुछ है– घर–बार, धन–दौलत, गाड़ी–घोड़ा आदि सब, परन्तु पति से प्यार चीज की एक मात्र कमी है। उस प्यार के वास्ते वह सब तरह की कोशिशे करती रहती है। नरेश हमेशा यही चाहता है कि उसकी पत्नी उसके साथ पत्ता खेले, क्लब में ब्रिज खेले, मीरा यह सब सीखने को तैयार है, क्योंकि उसका पति उसे प्यार करें। लेकिन नरेश को उसके देह से मतलब नहीं। इस कहानी में मीरा बहुत कुछ सहन किये रहती है। इसके बावजूद भी वह निराश होकर निस्तेज भाव से कहती है– "मैं उन बेवकूफ औरतों में से

एक हूँ जो अपने पति को प्यार करती है या यह कहना चाहिए कि मैं ही एक वह बेवकूफ औरत हूँ जो अपने पति को प्यार करती हूँ।"[5]

मृदुला गर्ग जी की "खाली" कहानी में आधुनिक काम–काजी नारी के विचारों का चित्रण किया है। पुराने जमाने में औरतें शादी के तुरंत बाद माँ बनने के सपने देखा करती थी। पर आज की नारी के लिए बच्चा पालना बोझ–सा लगता है, यही इस कहानी कथा है। निम्न वर्गीय समाज में जीवन बिताना ही बोझ–सा होता रहता है। उसमें बच्चा पैदा करके एक और तकलीफ मोल लेना पड़ता है। इसलिए वह तमाम झंझटों से मुक्त रहकर जीवन बिताना चाहती है।

प्रसव वेदना के समय औरत के साथ जो दर्द का महसूस होता है, वह आज तक पुरूष को एहसास तक नहीं हो पा रहा है। प्राचीन काल से पुरूष, स्त्री बच्चे को पैदा करने वाली मशीन समझता रहा है। इस स्त्री नामक मशीन चाहे जितनी शोर, चीख मचाती रहीं हो फिर भी पुरूष को केवल लड़का ही चाहिए, मिठाई बाँटना है, खानदान बढ़ाना है आदि तरह–तरह के विचार के सपना देखता है। मृदुला गर्ग की "एक चीख का इन्तजार" उसी सत्य को दर्शाने वाली है। इस कहानी यह देखना को मिलता है कि "मैं" का पति सुरेश खुश है, दुःख कम है। लड़का लड़की में भेद करता है। फिर भी औरत जात ही ऐसी है जो हमेशा पति को महान समझती है। वह खुद गम सहती रहती है, अचानक पति को थोड़ी–सी दुःख हो गयी तो भी वह उसमें भागीदार हो जाती है। "मैं" कहती है– "सुरेश को यहाँ मत बुलाना, उससे बर्दाश्त नहीं होगा।"[6]

"चकरघिन्नी" कहानी एक मध्यवर्गीय भारतीय नारी की समस्या का दूसरे पहलू की ओर संकेत करती है, जिसमें रोजी–रोटी का प्रश्न तो नहीं है, पर अन्य कई मनोवैज्ञानिक स्थितियाँ हैं और तथाकथित भारतीय जीवन आदर्श का व्यंग्य भी विद्यमान है। विनीता की माँ डॉक्टर है, वह विनीता के लिए समय नहीं पाती, पति की सेवा नहीं कर पाती है तो विनीता को अपनी माँ के बारे में सुनने को मिलता है कि वह आदर्श भारतीय नारी नहीं है। इससे विनीता निश्चय करती है कि डॉक्टर नहीं भारतीय आदर्श नारी बनेगी। शादी के बाद विनीता आदर्श नारी बनती भी है, बच्चों की देखभाल करना, पति की सेवा, उसे दफ्तर के लिए तैयार करना, दफ्तर से आने की प्रतीक्षा करना, पर सब कुछ करने बावजूद वह आदर्श माँ या पत्नी नहीं बन पाती है। क्योंकि बच्चें माँ के हर समय की टोकाटाकी से खिन्न होकर कह देते है–"तुम हर वक्त घर पर क्यों बैठी रहती हो? कोई जॉब क्यों नहीं करती? मेरी सब सहेलियों की मम्मी काम करती हैं।"[7] तो विनीता आदर्श पत्नी की तरह उसे स्वीकार कर लेती है।

देशी–विदेशी संस्कार को अपनाने में हेमवती इतनी यातनाएँ भोगती है कि उसका दम घुट जाता है। "रेशम" कहानी स्त्री–जाति की अस्मिता की लड़ाई को स्वर देने वाली है।

हेमवती कहानी की नायिका है, जिसके माध्यम से स्त्री की सामाजिक स्थिति का आकलन किया गया है। पुरूष समाज में नारी के प्रति पुरूष का रवैया किस प्रकार से उभरकर सामने आता है, यही इस कहानी की प्रमुख केन्द्र बिन्दु है। यह कहानी दो पीढ़ियों के दृष्टिकोण में तो अंतर है और कुछ विचारों में पुरानी पीढ़ी की अपेक्षा, नयी पीढ़ी में जो सकारात्मक परिवर्तन आया है। औरत की आजादी और अस्मिता के प्रश्न को मुखर करने में मृदुला जी सफल रही हैं।

"बड़ा सेब काला सेब" कहानी में एक भारतीय संभ्रान्त महिला की गाथा है, जो अमरीकन जैसे देश में

जाकर अपने–आपको वहाँ की संस्कृति और काले निग्रो, गोरे चिट्टे की तुलना में जोड़ती है। इस कहानी में किस प्रकार भारतीय महिलाएँ विदेशों में धोखा खाती घूमती रहती है, उनका नग्न चित्रण किया गया है।

मृदुला गर्ग जी मात्र एक महिला नहीं, परम्परा को नये अन्दाज से देखने वाली सार्थवाद है। उसकी एक सशक्त कड़ी है। ऐसी कड़ी है जो अतीत को वर्तमान से और वर्तमान को भावी से जोड़ती है। इस तरह मृदुला जी हिन्दी की रचनाकार और साठोत्तर युग की गौरव–स्तम्भ है। अतः उनकी कहानियों में टूटते मानवीय संबंधों विशेषकर पति–पत्नी संबंध, पीढ़ियों के संघर्ष, स्त्री की बदलती स्थितियों आदि पर लिखी गई हैं। पुरूष प्रधान समाज में ये कहानियाँ स्त्री की अस्मिता और संघर्षों को संवेदना के धरातल पर उद्‌घाटित करती है।

सन्दर्भ सूची :–

1. राजेन्द्र यादव – एक दुनिया समान्तर, पृ. 36
2. मृदुला गर्ग – चुकते नहीं सवाल, पृ. 42
3. दो एक फूल – (टुकड़ा–टुकड़ा आदमी), पृ. 65
4. ग्लेशियर से – पृ. 19
5. तुक – (ग्लेशियर से) पृ. 50
6. एक चीख का इन्तजार – (ग्लेशियर से), पृ. 163
7. चकरघिन्नी – (शहर के नाम), पृ. 42

Mobile No: +919864314756

Email: mirjahidul09@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 210–216

डॉ. राजेश कुमार व्यास के यात्रा संस्मरणों में संस्कृति

जगदीश सिंह रावत
शोधार्थी (हिन्दी)

यात्रा और संस्कृति का अन्योन्याश्रित संबंध है। भारतीय संस्कृति का उत्स और पल्लवन यात्राधारित ही रहा है। संत कबीर कहते हैं, "तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखिन की देखी।'' अर्थात् आँखों देखा सत्य ही यथार्थ और कालजयी होता है। भारतीय संस्कृति के प्राण माने जाने वाले भगवान राम के जीवन चरित को देखें तो उन्होंने खूब देशाटन किया। अपने देश की सीमा से भी बाहर तक उनका परिभ्रमण रहा और आज भी हमारे देश में जगह–जगह उनसे संबंधित तथ्यों की खोज जारी है। ठीक वैसे ही श्रीकृष्ण का जीवन–चरित देखिए अथवा पांडवों का परिभ्रमण देखिए, देश के कोने–कोने तक उनके कदमों के चिह्न हैं। और वे देशवासियों के दिल में तथा भारत–भूमि के कण–कण में विद्यमान हैं। भक्तिकालीन भक्त शिरोमणि मीरांबाई भी राजस्थान, ब्रज और गुजरात में समान भाव से पूजित है। चीनी यात्री ह्वेनसांग और फाह्यान की यात्राओं ने भी सांस्कृतिक आदान–प्रदान में योगदान दिया है। हमारे देश के यायावर महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन ने तो "अथातो घुमक्कड़ विद्या" नामक "घुमक्कड़ शास्त्र" ही रच डाला। कहने का मतलब यही है कि देश–दुनिया का ज्ञान यात्राओं से ही जाना जा सकता है और यात्राओं का विवरण हमें साहित्य से प्राप्त होता है।

सामान्यतः 'संस्कृति और सभ्यता' को समानार्थी समझ लिया जाता है, लेकिन ऐसा है नहीं। ''संस्कृति उन गुणों का समुदाय है जो व्यक्तित्व को समृद्ध और परिष्कृत बनाते हैं। चिंतन और कलात्मक सृजन की वे क्रियाएं संस्कृति में आती हैं, जो मानव जीवन के लिए प्रत्यक्ष में उपयोगी न दिखाई देने पर भी उसे समृद्ध बनाती है। इसमें शास्त्र और दर्शन का चिंतन, साहित्य, ललित कलाएं आदि का समावेश होता है।''[1]

संस्कृति शब्द का मूल अर्थ तो साफ या परिष्कृत करना ही है। हमारा पारंपरिक ज्ञान, जो हमारे व्यक्तित्व को परिष्कृत एवं समृद्ध बनाता है, संस्कृति कहलाता है। कुछ लोग इसे वैदिक संस्कृति से संयुक्त करते हैं, जबकि व्यापक अर्थ में "यह उस गंगा के समान है, जिसमें वैदिक और अन्य सांस्कृतिक धाराएं मिलकर एक होती रही हैं।"[2]

हमारे देश की संस्कृति के बारे में गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर का कहना था कि – "भारत महामानव सागर है, जिसमें कितनी ही नदियों की पावन धाराओं का जल है, जिसे हम भारतीय संस्कृति कहते हैं। भारतीय संस्कृति एक विशाल सागर है, जिसमें अनेक नदियां , विभिन्न जातियों की सभ्यताएं आ–आकर समाहित होती रहीं। इसमें सहनशीलता, सहिष्णुता के साथ–सामंजस्य की अपरिमित शक्ति विद्यमान है। भारतीय संस्कृति एकता और समन्वय, समाधान और विकास, पुरातन परंपराओं एवं मूल्यों, संपूर्ण समग्रता और एकरूपता की कहानी है।''[3]

वस्तुतः विविधता में एकता ही हमारी संस्कृति का मूल मंत्र है। हमारे देश में विविध भाषाएं–बोलियां, रहन–सहन, खान–पान, वेश–भूषा, धर्म–संप्रदाय और भिन्न–भिन्न प्रकार का भौगोलिक परिवेश है। सभी जगहों की अपनी–अपनी बात अहमियत है, खूबियां हैं, विशेषताएं हैं, अतः पूरे देश को समग्रता से जानना हो, समझना हो, तो यात्राएं जरूरी हैं। सांस्कृतिक ऐक्य के उद्देश्य ते ही आदि शंकराचार्य ने देश के चारों कोनों की यात्राएं की थीं और चारों ओर एक–एक पीठ की स्थापना की थी। देश में पौराणिक मान्यताओं के अनुसार अड़सठ तीर्थों का उल्लेख है और हमारे पूर्वज उन अड़सठ तीर्थों की यात्राएं करते थे। इन यात्राओं के कारण ही हमारी संस्कृति एकता के सूत्र में बंधी रही और कभी मिटी नहीं, जबकि इससे भी प्राचीन सभ्यताएं–संस्कृतियाँ काल–कवलित होती रही हैं। वर्तमान में राजनीतिक दृष्टि से भी देखा जाए तो हरेक देश के राष्ट्राध्यक्ष अथवा राष्ट्र के प्रतिनिधि विश्व के अन्य देशों की यात्राएं करते नजर आते हैं, जिनके मूल में उन देशों से हमारे रिश्ते प्रगाढ़ करने का ही उद्देश्य रहता है। अतः देश के विभिन्न भू–भागों की हो, अथवा विदेशों की यात्राएं हों, ये हमें बहुज्ञता प्रदान करती हैं। हमारे ज्ञान–चक्षुओं को दिव्य दृष्टि प्रदान करती हैं और विश्वबंधुत्व की भावनाओं की वृद्धि में सहायक सिद्ध होती हैं।

डॉ. राजेश कुमार व्यास की रुचि भी नए–नए स्थानों को देखने–जानने और समझने में रही हैं। अपनी यायावर–वृत्ति के कारण उन्होंने देश के विभिन्न क्षेत्रों की सुरुचिपूर्ण यात्राएँ की हैं। उनके यात्रा–वृत्तांतों को पढ़ते समय हमारी आंखों के समक्ष अनेक भावपूर्ण चाक्षुष बिंब उपस्थित हो जाते हैं और लेखक के साथ–साथ हम भी उन स्थानों की खूबसूरती और खासियतों से परिचित होने लगते हैं, मानो हम कोई चलचित्र देख रहे हों।

डॉ. राजेश कुमार व्यास केवल यायावर ही नहीं हैं, एक सुलझे हुए विचारक, कला–मर्मज्ञ, कवि–हृदय और सहृदय साहित्यकार तथा संगीत प्रेमी भी हैं। उनके मन में प्रकृति के मनोरम दृश्यों को देखने की ललक सदैव ही रही है। वे इस हेतु अपने व्यस्ततम समय में से कुछ समय निकाल कर यात्राओं को अंजाम देते रहे हैं। अपने यात्रानुभवों को पाठकों तक पहुंचाने के लिए विविध पत्र–पत्रिकाओं में वे बराबर लिखते रहे हैं। उनके यात्रा संस्मरणों की कितनी पुस्तकें आएंगी, यह तो अभी कहा नहीं जा सकता, पर अपावधि उनकी तीन पुस्तकें यात्रा–वृत्तांतों पर प्रकाशित हो चुकी हैं, जो क्रमशः इस प्रकार हैं "कश्मीर से कन्याकुमारी", "नर्मद हर और "आँख भर उमंग"।

कश्मीर को धरती का स्वर्ग कहा जाता है। भारतीय संस्कृति का उत्स भी यहीं से माना जाता है। कहते हैं कि कश्यप ऋषि के नाम से ही इस भू–भाग का नामकरण हुआ है। कश्यपमेरु, यानी कश्मीर। वैदिक ऋषियों की यह कर्मस्थली बताई जाती है। अनेक अलौकिक ग्रंथों का यहीं पर सृजन हुआ। देवी सती, वितस्ता (झेलम) और केसर–कुंकुम मंडित इस भूमि की लीला ही अनूठी है। भगवान शंकर के ससुरालय के रूप में पूजनीय कश्मीर हमारे देश का मुकुट माना गया है और यह भी उल्लेखनीय है कि डॉ. राजेश कुमार व्याप्त आदिदेव के अनन्य भक्त हैं, उनकी आस्था "नर्मदे हर" में भी महसूस की जा सकती है।

"कश्मीर से कन्याकुमारी" यात्रा–वृत्तांत के "पुरोवाक्" में एतरेय ब्राह्मण के मूल मंत्र "चरैवेति–चरैवेति" और गौतम बुद्ध के कथन "चरथ भिक्षये चरथ यानी हे भिक्षुजो! चलते रहो, चलते रहो। का स्मरण करते हुए लिखते हैं "चरन् वै मधु विन्दति" यानी जो चलता है, उसी को जीवन का अमृत–मधु प्राप्त होता है। माधुर्य का चरम अर्थ संपूर्णता ही है। घुमक्कड़ी से ही संपूर्णता की यह चाह पूरी होती रही है। व्यस्तताओं के आधिक्य के बीच में ही

यात्राओं के लिए समय निकालता रहा हूं। शायद इसलिए कि भीतर से भरती यह यात्राएं ही रही हैं जिनसे सदा मुझे लिखने की नई ऊर्जा मिलती है। यात्रा पर होता हूं तो स्थान विशेष की संस्कृति के साथ ही वहाँ का इतिहास औचक आंखों के सामने घूमने लगता है।[4]

अपनी यात्राओं को सनातन भारत से भेंट का उपक्रम बताते हुए वे आगे लिखते हैं – "कश्मीर से कन्याकुमारी तक फैले भारत में क्या नहीं है। हिमाच्छादित पर्वत, पहाड़, नदियाँ, नाले, झीलें, सागर–तट, किले–महल, हवेलियाँ, पुरातत्त्व, चित्रकला, संगीत और नाट्य के साथ भांति–भांति के लोग और उनकी अनूठी संस्कृति । मुझे लगता है, कश्मीर से कन्याकुमारी की यात्रा सनातन भारत से भेंट है।''[5]

स्पष्ट है कि लेखक हमारे देश के सांस्कृतिक वैभव को गहराई से आत्मसात करने को लालायित हैं। अपनी लालित्यपूर्ण शैली में जब वे यात्रानुभवों को साझा करते हैं, तो पाठक को कहानी–पाठ जैसी आनंदानुभूति होती है। लेखक बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि से चारों ओर के दृश्यों को निहारता चलता है, जैसे पाठकों को आँखों देखा हाल सुना रहा हो। "कश्मीर से कन्याकुमारी" पुस्तक में कुल चौदह यात्रा–संस्मरण हैं। इनमें "कोणार्क तुम्हें प्रणाम।", "अपना–सा सिक्किम", "रेत में गुलाब", "धौलाधार पहाड़ियों में...", "बर्फ के रेगिस्तान में... "चंबा, नहीं अचंभा", "महाभारत के रचना स्थल पर", "महाकवि कालिदास स्मारक, पर", "विश्व के पहले बड़े लोकतंत्र में", "पांडिचेरी अलविदा!", "देवताओं की भूमि पर.." और "धरती के स्वर्ग से... जैसे शीर्षकों में लेखक अनेक महत्त्वपूर्ण दर्शनीय स्थलों से पाठकों को न केवल परिचित ही कराता है, बल्कि उनसे जुड़े साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक संदर्भ भी पाठकों के ज्ञानार्जन हेतु बताता चलता है। इनमें धार्मिक, पौराणिक एवं पारंपरिक बिंबों का स्पर्श मन को आह्लादित कर देता है।

सनातनता का प्रतीक गतिमान सूर्य कब जन्मा, इसका ज्ञान भी आपको लेखक की कोणार्क यात्रा करवा देती है। लेखक लिखता है, "गाइड बताने लगता है, उत्क्लीय गंगवंश के सातवें नरपति अनंगभीम देव के पुत्र ने किया है कोणार्क का निर्माण। पूरे बारह सौ कारीगरों ने 12 वर्ष तक रात–दिन लगकर इसे बनाया। एक–एक पत्थर को तराशा। उसे मंदिर के अनुरूप गढ़ा। निष्प्राण नहीं है यहाँ के पत्थर। शिल्पियों ने बारह वर्ष घर–बार से दूर रहकर इसे बनाया। सन् 1258 की 15 जनवरी। माघ शुक्ल सप्तमी रविवार– कोणार्क की प्रतिष्ठा हुई। रविवार माघ शुक्ल सप्तमी को पड़ता है महायोग। यह सूर्य देव की जन्मतिथि भी है।.....''[6] लेखक वहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य का भी भाव–विभोर होकर वर्णन करते हुए लिखता है– "उड़ीसा यानी उत्कल प्रदेश। पूर्वी समुद्र तट पर हरी भरी नीली पहाड़ियों और गहरी घाटियों का प्रदेश ।... आम, नारियल और ताड़ के पेड़ों की शृंखला. ... टैक्सी उड़िसा के समुद्री तट पर स्थित कीइनपारा की ओर बढ़ रही थी। कीइनपारा यानी कोणार्क।''[7]

स्पष्ट है कि इन यात्रा संस्मरणों में स्थानीय जनमानस की उपस्थिति तथा लोकविश्वासों का भी उपस्थापन हुआ है। फिर भी लेखक लोककथन को महत्त्व देते हुए अन्य साक्ष्यों का भी स्मरण दिलाता है, जैसे–"कुछ कहते हैं, केसरी वंश के राजा पुरेंद्र ने नवीं सदी में कोणार्क को बनवाया। दूसरी मान्यता गंगवंशीय राजा नरसिंह देव के इते तेरहवीं सदी में बनवाने की है। भविष्य पुराण के अनुसार कोणार्क की स्थापना भगवान श्रीकृष्ण के पुत्र सांब ने की थी।"[8] लेखक इस विषय में अन्य जानकारियां भी देता है। इससे स्पष्ट है कि यात्रा से हमें बहुत अनूठी जानकारियाँ मिलती है। लेखक अपनी यात्रा के पड़ावों पर स्थित ऐतिहासिक या सांस्कृतिक केंद्रों के बारे में ही जानकारी नहीं देता, बल्कि भ्रमण–पथ को भी अनदेखा नहीं करता, चाहे वह सपाट मार्ग की

यात्रा हो, ऊबड़–खाबड़ रास्ते हों या फिर वन–प्रांतर! "बाघिन मुक्ति की राह पर... यात्रा संस्मरण में हम पाते हैं कि लेखक जब जंगल में एक जिप्सी से यात्रा कर रहा होता है, तो लिखता है "सघन जंगल की गंध, उसकी यह सुवास सदा ही मन को भाती रही है। जंगल के मौन को पक्षियों का कलरव भंग करता है... पहचानने की कोशिश करता हूँ। मोर, तोता, हवासिल, बुलबुल की आवाजें हैं।... और भी दूसरे पक्षियों का गान यहाँ है। भले वह समझ नहीं आ रहा, परंतु कर्णप्रिय है।... जंगल की नीरवता ही तो ऐसी होती है, जिसमें पक्षियों का कलरव शोर नहीं करता, बल्कि उसका अंग बन मन को भाता है।... मुझे लगता है, घने जंगल में उन्मुक्त पक्षियों, वन्य जीवों का बसेरा इसलिए भी आकर्षित करता है कि हमें वैसी उन्मुक्तता हासिल नहीं है।"[8]

स्पष्ट है कि हर कोई उन्मुक्त जीवन को पसंद करता है, बंधन–मुक्ति चाहता है, तभी तो यात्रा में देखी वस्तुओं व घटनाओं से लेखक तादात्म्य स्थापित कर लेता है। सरिस्का के अभयारण्य में एक बाघिन की मुक्ति या पुनर्वास की घटना से लेखक भी जीवन की औपचारिकताओं से मुक्ति की राह खोजता है और प्रतीकात्मक रूप में इस संसार–रूपी अरण्य में अभय होने की चाह रखता है। ऐसी ही चाह हरेक प्राणी के मन में रहती है, तभी तो लेखकीय संरचना–विधान पाठक को मंत्रमुग्ध–सा कर देता है।

जैसलमेर–यात्रा को लेखक ने "रेत में गुलाब" शीर्षक दिया है। जैसे कंटकाकीर्ण गुलाब की अस्मिता को शाश्वत रखने की कामना तभी के मन में होती है, वैसे ही लेखक भी चिंता व्यक्त करता है यह धरोहर बिखरे नहीं, छीजे नहीं और संरक्षित रहे। घड़सीसर तालाब से सटे जैसलमेर के लोक संस्कृति संग्रहालय का अवलोकन कर किले की ओर लौटते समय लेखक कुछ इसी प्रकार की चिंता कर रहा है–– "घड़सीसर तालाब से लौट आए हैं, सड़क पर। हम फिर से किले के पास हैं... रेत के टीलों पर। साँझ घिर आई है। अंदर के सच को छिपाए बाहर से किला फिर से अपने सौंदर्य का गान करने लगा है। मानों उसे उम्मीद है, उसके इस रूप पर रीझ कर कोई इसे संभालने की पहल करेगा!"[9]

लेखक ऐसी चिंता हवेलियों और किलों को बचाने के बारे में ही नहीं करता, अपितु कुओं, बावड़ियों के वैभव और नदियों की पावन धाराओं के कल–कल–निनाद को कायम रखने हेतु भी करता है। "विश्व के पहले बड़े लोकतंत्र में" नामक यात्रा–संस्मरण में जब वैशाली गणराज्य में वह सिकुड़ती हुई गंगा नदी को देखता है, तो उसका मन व्यथित हो उठता है। वैशाली के एक प्राचीन तालाब के बारे में लेखक ने लिखा है– "मुझे लगता है, यही वैशाली की पवित्र पुष्करिणी है। वही पुष्करिणी, जितका उल्लेख राहुल सांकृत्यायन ने अपने उपन्यास "सिंह सेनापति" में किया है। पुष्करिणी में सर्वसाधारण का स्नान मना है। गुण संस्था जिसे अपना सदस्य चुनती है, वही उसमें नहाता है। सारे लिच्छवी आर्य हैं और क्षत्रिय हैं। सबको उसमें नहाने का अधिकार नहीं है।.... और अब... उसी पुष्करिणी में गंदगी का साम्राज्य है।... पानी में स्थान–स्थान पर काई जम गई है... किनारों और जल के अंदर झाड़–झंखाड़ उग आए हैं.... दुर्बल काया का बुजुर्ग ता एक व्यक्ति तालाब से नहा कर अपनी साइकिल को भी अब उसी में धो रहा है।''[10]

संस्कृति, धर्म और राजनीति की सीमाएँ कैसे विस्तीर्ण होती जाती हैं, हिमाचल की धर्मशाला में लामाओं की संस्कृति, बौद्धधर्म और तिब्बती शरणार्थियों की व्यथा, कश्मीरी आतंक से प्रभावित पर्यटन, उदात वादियाँ। लाहौल स्पीति, रोहतांग दर्रे की बर्फीली यात्राओं के अनुभव हमें भीतर तक भर देते हैं। ये यात्राएं भौगोलिक दूरियों को पाटने का काम करती हैं। देवभूमि केरल, कालिदास से वेद व्यास, चंबा से वैशाली तक, पांडिचेरी से श्रीनगर

तक अनेक स्थलों, व्यक्तियों से जुड़े किस्सों, किंवदंतियों, वस्तु और विचारों के साथ सांस्कृतिक इतिहास को समेटते ये यात्रा संस्मरण मन को बेहद सुकून देते हैं। थोड़े में कहें तो डॉ. व्यास ने अपने स्वाध्याय, स्थानीय संदर्भ व्यक्तियों से वार्तालाप तथा सांस्कृतिक–ऐतिहासिक साक्ष्यों के सहारे अपने यात्रा–वृत्तांतों की सजीव झांकी प्रस्तुत की है।

लेखक के यात्रा–संस्मरणों की दूसरी कृति है "नर्मदे हर"। इसके अध्ययन से ज्ञात होता है कि लेखक ने भारतीय संस्कृति को भरपूर ढंग से जिया है। चराचर जीव–जगत से अभिन्नता और एकात्मत्व प्रदान करती इस संस्कृति में लोक और वेद, तप और त्याग, परोपकार और प्रेम और "सबसे हिलमिल चालिए, नदी–नाव संयोग" का दर्शन दृष्टव्य है।

"नर्मदे हर" संवेदनात्मक, विचारात्मक एवं भावात्मक दृष्टि से सांस्कृतिक चेतना की कृति है, जिसके बारे में प्रसिद्ध साहित्यकार अमृतलाल बेगड़ ने लिखा है– "राजेश व्यास जीवन से भरपूर लेखक हैं। इसीलिए उनके लेखन में जीवन की गंध है। वे जहाँ भी जाते हैं, उन्हें वे स्थान खूबसूरतियों और खुशियों से भरपूर जान पड़ते हैं। और वे गए हैं खजुराहो, ग्वालियर, गोरखपुर, अयोध्या, त्रिपुरा, काशी, उज्जैन, हरिद्वार .....जिस जगह जाते हैं, उसका चेहरा बड़ी खूबसूरती से तराश देते हैं। यात्रा–वृत्तांत के बहाने वे व्यापक संस्कृति–विमर्श करते हैं। उनकी पर्यवेक्षण शक्ति विलक्षण है। सूक्ष्म से सूक्ष्म तथ्य भी उनकी पैनी निगाह से बच नहीं सकता।"[11]

डॉ. कमल किशोर गोयनका ने लिखा है कि "भारत में ही इतने स्थान हैं कि एक जीवन में नहीं देख सकते। अपने नर्मदा की यात्रा की, अपने अनुभव लिखे तो ये इतने जीवंत हैं कि पाठक इस पुस्तक से नर्मदा की यात्रा कर लेता है। नर्मदा तो गंगा की ही तरह संस्कृति और धर्म की तीर्थ है और उसी प्रकार से पूजनीय है। मैंने एक बार नर्मदा के दर्शन किए थे और मैं धन्य हो गया था। और आपने तो नर्मदा को अपनी आत्मा का अंग बना लिया है तो आपकी धन्यता आध्यात्मिक हो गई है।''[12] वाकई लेखक की आध्यात्मिक प्रवृत्ति वंदनीय है। उनके यात्रा–संस्मरणों के शीर्षक भी कुछ ऐसे ही संकेत करते हैं, जैसे– 'करवट लूंगी काशी', 'काल के अधिष्ठाता महाकाल' , 'मोक्ष मिले हरिद्वार'... और "ख" खंड में नर्मदा और आदि–देव महादेव के माहात्म्य का गुणगान मन मुग्ध कर देने वाला है।

"नर्मदे हर" के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए दीपक मंजुल लिखते हैं– "नर्मदे हर" सुंदर, समृद्ध यात्राओं का एक जीवंत दस्तावेज है। यों तो इसमें और भी यात्राएँ हैं, किंतु नर्मदा की यात्रा ने मानो लेखक की यात्राओं को पूर्णता प्रदान की है। पुस्तक का अंतिम भाग लेखक की अमरकंटक की यायावरी की ग्यारह इकाइयों का एक गुलदस्ता है..... व्यास के पास कहने का अपना अंदाज है, इसीलिए उनकी यात्राओं के बारे में लिखा नदी की तरह प्रवहमान है और स्फटिक की भाँति निर्मल, प्रांजल एवं पारदर्शी है।''[13]

नर्मदा और गंगा की निर्मलता के तो कहने ही क्या कहते हैं–'बहता पानी निर्मला' "मोक्ष मिले हरिद्वार'' में लेखक गंगाजल की महिमा बताते हुए लिखते हैं– "तट पर गंगाजल ले जाने के लिए बोतलों का भी संसार सजा है। देवता पर बासी पूल नहीं चढ़ते। बासी भोग नहीं लगता, दूध भी चढ़ता है तो कच्चा, पर सैकड़ों बरसों से सहेजा गंगाजल चढ़ सकता है। गंगाजल कभी बासी जो नहीं होता।"[14]

वैसे ही ये यात्रा–वृत्तांत कभी बासी नहीं होंगे, जब भी पढ़ेंगे, हर बार नवीन ऊर्जा का संचार करेंगे। "नर्मदे हर" के "ख" भाग में " शिव के छोड़े बाण से बचा "बाणलिंग" में नर्मदा में बाणासुर के त्रिपुर के ध्वस्त खंड गिरने

और जालेश्वर तीर्थ के प्रकट होने की कथा का सुंदर वर्णन किया है। 'पुराणों के अनुसार नर्मदा का अवतरण चंद्रवंशी राजा हिरण्यतेजा के तप के कारण हुआ। इसका जल दर्शन मात्र से पवित्र करता है। यह पितरों के श्राद्ध के लिए पवित्र समझी जाती है। इसके किनारे अनेक तीर्थ हैं। इसमें स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ करने के समान फल प्राप्त होता है। अमरकंटक से निकलने वाली यह नदी गंगा के समान ही पवित्र और भारत की सात नदियों में गिनी जाती है। मध्यप्रदेश के जबलपुर के आगे भेड़ाघाट की संगमरमर की चट्टानों को काटती हुई धुंआधार जल प्रपात बनाती है। भड़ौंच के नीचे इसकी धारा धीमी पड़ जाती है और 1312 किमी का लंबा रास्ता तय करने के बाद यह अरब सागर में जा मिलती है।"[15] "अमरेश्वर के अमरनाथ" की यात्रा करते हुए लेखक लिखता है– "जालेश्वर ते अमरकंटक की राह पर हूँ। मन में विचार आता है। "लिंग" शब्द प्रमाण से जुड़ा है। अनंत, शून्य और ब्रह्मांड के साथ निराकार परमपुरुष का प्रतीक। वेदों में सूक्ष्म शरीर के लिए भी आया है यह शब्द। शिवलिंग शिव और देवी शक्ति यानी पार्वती का आदि–अनादि एकल रूप है। मन में आता है, ब्रह्मांड में दो ही तो चीजें हैं : ऊर्जा और पदार्थ। कहते हैं, शरीर पदार्थ से निर्मित है और आत्मा ऊर्जा है। शिवलिंग के बारे में जब भी विचार करता हूँ, तो लगता है, वातावरण सहित घूमती धरती या सारे अनंत ब्रह्मांड का दर्पण ही तो है शिवलिंग। शिव का आदि अनादि स्वरूप।''[16]

शिव–स्मृति मात्र से ही लेखक को ब्रह्मांड में घूमती धरती और सर्वत्र व्याप्त शिव की शक्ति, ऊर्जा का एहसास होता है, जो लेखक के तन–मन को उल्लास से भर देता है। शिव के विविध ज्योतिर्लिंगों के दर्शन और महिमा का गुणगान हुआ है, उनकी" नर्मदे हर" पुस्तक में, जो पाठकों को भी अपने साथ यात्रा कराती चलती है।

लेखक की तीसरी यात्रा–पुस्तक है "आंख भर उमंग। इस पुस्तक में लेखक ने छियत्तर यात्रा–संस्मरणों को संकलित किया है। भले ही ब्रह्मांड की परिक्रमा ने लेखक को ललचाया हो, पर संपूर्ण भारतभूमि की परिक्रमा इन यात्रा संस्मरणों में अवश्य ही दर्शनीय है। जीवन का संगीत गुनते–सुनते यायावर डॉ. राजेश कुमार व्यास लिखते हैं–"हर बार–यात्रा ही देती है– आँख भर उमंग।''[17] इन यात्रा संस्मरणों में हमें लेखक "विश्वकवि की हवेली" के दर्शन कराता है, ''चंबल के बीहड़ों में संसद भवन" का प्रतिरूप दिखाता है, "सीता द्वारा शापित नदी" और "सुजाता ने जहां बुद्ध को खीर खिलाई वह स्थान भी दिखाता है। "गंगा किनारे के विश्वनाथ" और "खंडहरों में ध्वनित नालंदा", "ताल तो भोपाल ताल", "सत्यमेव जयते का रचना स्थल", "ब्रह्मगिरि पर्वत पर त्र्यंबकेश्वर" और "भंवरगिरि पहाड़ियों पर भीमाशंकर महादेव से रूबरू कराता है। "बाजीराव मस्तानी की याद दिलाता शनिवारवाड़ा", "पहलगाम और चंदनबाड़ी", "खीर भवानी", "हिंद का प्रवेशोद्वार", "बनास किनारे बीसलदेव", "लखासर के मैरूंजी", "चूहाँ की देवी माँ करणी", "दहकते अंगारों पर सबद नाद", "चाँदी के गोले बरसाने वाला किला", "पांडवों का अज्ञातवास स्थल", "शारदा पीठ", "तीर्थराज पुष्कर", "चिड़िया टूक पर मेहरानगढ़", "कान्हडदेव का सोनगढ़", "हमीर हठ की गाथा सुनाता गढ़". "जहां विष्णु के चरण धोती है नदी", "तेरह पहाड़ियों के मध्य कुंभलगढ़", "नदी किनारे सोमनाथ", "गढ़ तो चित्तौड़गढ़" और "शिव के अंगूठे 'पर टिका अचलेश्वर" आदि शीर्षकों से लेखक ने देश के अनेक प्रसिद्ध स्थलों की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक झलक पाठकों के स्मृति–पटल पर अंकित की है।

सार–रूप में कहा जाए, तो हम पाते हैं कि डॉ. राजेश कुमार व्यास के ये यात्रा–संस्मरण देश–काल और समकाल से ताल मिलाते वे सारी जानकारियां देते हैं, जो किताबों में देखने को नहीं मिलतीं। यह सत्य ही है

कि आँखों देखा, कानों सुना और अनुभूत सत्य अमिट रहता है। डॉ. व्यास के यात्रा–संस्मरण भी पाठकों की स्मृति में हमेशा के लिए अमिट रहेंगे और भारतीय संस्मरण साहित्य में अपनी सांस्कृतिक छवि हेतु स्मरणीय रहेंगे।

शोध-संदर्भ :-

1. लीलाधर शर्मा "पर्वतीय", भारतीय संस्कृति कोश, पृ. 929
2. डॉ. मंगलदेव शास्त्री, कल्याण (रामांक), पृ. 125
3. डॉ. मदन तैभी, राजस्थानी काव्य में रामकथा, पृ. 67
4. डॉ. राजेश कुमार व्याप्त, कश्मीर से कन्याकुमारी, पुरोवाद, पृ. 01
5. वही, पृ. 1
6. वही, पृ. 9
7. वही, पृ. 8
8. वही, पृ. 11
9. वही, पृ. 25
10. वही, पृ. 74
11. अमृतलाल बेगड़, पुस्तक संस्कृति, सितंबर–अक्टूबर, 2020, पृ. 52
12. कमल किशोर गोयनका, पुस्तक संस्कृति, सितंबर–अक्टूबर, 2020, पृ. 52
13. दीपक मंजुल, समीक्षा पाठक को समृद्ध बनाती है, ई–पेपर पत्रिकाण्ब्ड/ब/43351463
14. डॉ. राजेश कुमार व्याप्त, नर्मदे हर, पृ. 97 (मोक्ष मिले हरिद्वार)
15. लीलाधर शर्मा "पर्वतीय", भारतीय संस्कृति कोश, पृ. 476
16. वही, पृ. 122 (अमरेश्वर के अमरनाथ)
17. डॉ. राजेश कुमार व्यास, आँख भर उमंग, पुरोवाक्, पृ०1

जगदीश सिंह रावत

पता : वार्ड न.10, 24 ASC. नई मण्डी घड़साना, जिला गंगानगर।

मो. नं. –9667359940

मेलआईडी– JSRAWATKR@GMAIL.COM

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor 8.642

बोहल शोध मंजूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
HOD Hindi, Tantia University
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834

Gina Shodh SANGAM

A Peer Reviewed & Refereed International Research Journal
Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गीना शोध संस्थान भिवानी के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज भिवानी से छपवाकर कार्यालय 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से वितरित की।

ISSN 2321:8037